रामचरितमानस में रोग तथा उनकी चिकित्सा

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

की

पी-एच0 डी0 उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोधप्रबन्ध

निर्देशक :-

डा0 कान्ताप्रसाद शुक्ल, पी-एच० डी०

रीडर–कायचिकित्सा,

चिकित्सा विज्ञान संस्थान

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सह–निर्देशक :-

डा0 विजयपाल सिंह, एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत),

पी-एच० डी०, डी० लिट्०

आचार्य एवं अध्यक्ष-हिन्दी विभाग,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रस्तुतकर्त्ता

सुदामा दूबे

शोधछात्र

हिन्दी विभाग

पंजीयन संख्या १५४७१२

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

१९८३

रामचरितमानस में रोग तथा उनकी चिकित्सा

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

की

पी-एच० डी० उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोधप्रबन्ध

निर्देशक :-

डा० कामताप्रसाद शुक्ल, पी-एच० डी०

रीडर-कायचिकित्सा,

चिकित्सा विज्ञान संस्थान

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सह-निर्देशक :-

डा० विजयपाल सिंह, एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत),

पी-एच० डी०, डी० लिट्०

आचार्य एवं अध्यक्ष-हिन्दी विभाग,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सुदामा दूबे

प्रस्तुतकर्त्ता

सुदामा दूबे

शोधछात्र

हिन्दी विभाग

पंजीयन संख्या १५४७१२

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

१९८३

प्रमाणित किया जाता है कि श्री सुदामा दुबे, शोधछात्र, हिन्दी विभाग ने पी- एच० डी० को आर्डिनेंस की धारा १ के अन्तर्गत पूर्णसमय तक शोधकार्य करते हुए अपना शोधप्रबंध पूरा कर लिया है। शोधछात्र के रूप में इनका अनुसंधान तथा निष्कर्ष, व्यक्तिगत परिश्रम एवं अनुशीलन पर आधृत है।

निर्देशक

आचार्य एवं अध्यक्ष

सह-निर्देशक

भू मि का :-

वर्तमान समय में मानसिक रोगों का प्रचार- प्रसार अधिक तीव्रगति से हो रहा है। समस्त विश्व के निवासी विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों द्वारा ग्रसित हो रहे हैं। संभवत: आधुनिक पश्चिमी सभ्यता एवं नवीन सामाजिक परिवर्तनों के प्रभाव से मानसिक रोगों की अभिवृद्धि दिनोंदिन होती जा रही है। नवीन अनुसंधानों एवं खोजों के द्वारा ज्ञात हुआ है कि केवल नगरों के ही निवासी नहीं वरन गांव में रहनेवाले भी मानस रोगों द्वारा समान रूप से आक्रान्त हो रहे हैं। मानसरोग निरोधी उपायों का आधुनिक मानस रोगचिकित्सा विज्ञान में प्राय: अभाव खटकता है। इसके निमित्त सहकौथिरेपी तथा मण्टल हाइजीन आदि कुछ विधियां विकसित हुयी हैं, किन्तु वे मानस रोगों को रोकने में असफल सिद्ध हुयी हैं तथा वे हमारे देश के लिए पूर्णतया अनुपयोगी प्रतीत होती हैं।

रामचरितमानस एक ऐसा अद्भुत ग्रंथ है जिसका प्रचार-प्रसार विश्वविद्यालयों के विद्वानों एवं गाँव के निरक्षर व्यक्तियों तक में समान रूप से समादृत है। प्रत्येक भारतीय इसके द्वारा अपने जीवन के विभिन्न आयामों में प्रेरणा ग्रहण करता रहा है। इस दृष्टि को ध्यानावस्थित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने अनेक मानसिक रोगों का वर्णन अपने इस महा ग्रंथ में किया है। इन मानसिक रोगों से बचने के उपाय और उन रोगों से आक्रान्त होने पर उनकी सर्वसुलभ चिकित्सा का भी उन्होंने सम्यक् विवेचन किया है। मानस में वर्णित मानसिक रोगों की यह चिकित्सा अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी है। इसका प्रयोग उच्चशिक्षित एवं निरक्षर व्यक्तियों, नगर के निवासी एवं ग्रामीणों तथा सभी वर्ग के व्यक्तियों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ है।

इस प्रबंध का मूल उद्देश्य यही रहा है कि इस अद्भुत ग्रंथ में वर्णित विश्लेषित मानसिक रोगों की चिकित्सा के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की जाय जिससे मानस रोगों द्वारा प्रताड़ित समस्त विश्व के लोग इसके द्वारा पर्याप्त लाभ उठा सकें एवं महान् मानसिक कष्टों से मुक्त हो सकें।

प्रस्तुत शोधप्रबंध को अध्ययन-मनन की दृष्टि से सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रस्तुत शोधप्रबंध के प्रथम अध्याय में मानस रोगों की अवधारणा का सम्यक् विवेचन विश्लेषण किया गया है। मानस रोगों का भी क्षेत्र आयुर्वेद ही है। अतः प्राचीन एवं नवीन आयुर्विज्ञान में प्राप्य शोध सामग्री का अध्ययन कर उसकी विस्तृत व्याख्या की गयी है।

शोधप्रबंध के द्वितीय अध्याय में मानसिक रोगों का वर्गीकरण एवं उनके स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा-

विज्ञान में वर्णित लक्षणों की भी विवेचना की गयी है।

शोधप्रबंध के तृतीय अध्याय में रामचरितमानस में वर्णित मानसिक रोगों की अवधारणा एवं उसके स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए विस्तारपूर्वक व्याख्या की गयी है जिसके अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य, ईर्ष्या, अहंकार आदि पर सविस्तार विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में रामचरितमानस से इतर तुलसी-साहित्य यथा-दोहावली, कवितावली, विनय पत्रिका, गीतावली, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, आदि ग्रंथों में वर्णित मानसिक रोगों की व्याख्या करते हुए पूर्व वर्णित रोगों जैसे - चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, भय, लोभ, उत्तेजना, तनाव आदि कारण मानव शरीर के अंगों एवं ग्रन्थियों में हलचल पैदा कर देते हैं जिससे मानव की रक्तवाहिनियों में कई प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं और फिर नये-नये रोगों का जन्म हो जाता है। इसके अन्तर्गत आनेवाले समस्त अवधारणाओं की विधिवत संपुष्टि प्रस्तुत की गयी है।

पंचम अध्याय में संत प्रवर गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा वर्णित मानस रोगों की चिकित्सा की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

षष्ठ अध्याय में रामचरितमानस में आये मानसिक रोगों एवं उनकी चिकित्सा की तुलना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एवं आयुर्वेद में वर्णित चिकित्सा विधियों के साथ प्रस्तुत की गयी है।

सप्तम अध्याय में प्रबंध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है जिसमें उपर्युक्त विवेचन के आधार पर मानस में वर्णित मानस रोगों की चिकित्सा के महत्त्व का विधिवत प्रतिपादन सम्पन्न किया गया है। अन्त में परिशिष्ट के रूप में सहायक साहित्य प्रस्तुत किया गया है।

रामचरितमानस विश्व का एक ऐसा अप्रतिम एवं अनूठा ग्रंथ है जिसके अध्ययन से विश्व के समस्त प्राणी मानसिक एवं आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। काशी विद्यापीठ से एम० ए० करने के पश्चात् मेरे मन में गोस्वामी जी के इस महान् ग्रंथ पर शोधकार्य सम्पन्न करने की महती उत्कंठा उत्पन्न हुयी। डा० देवव्रत चतुर्वेदी प्रवक्ता दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मार्गदर्शन एवं हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ समीक्षक एवं साहित्य विशेषज्ञ तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० विजयपाल सिंह की महती कृपा से मुझे शोधकार्य करने की अनुमति प्राप्त हुयी। आपने मेरे शोधकार्य में सतत् मार्ग दर्शन कर एवं अनेक कठिनाइयों को दूर कर मेरा अतीव उपकार किया है। अत: मैं इनका सदैव आभारी रहूँगा।

डा० कामताप्रसाद शुक्ल, रीडर कायचिकित्सा विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, मानस रोगों के विशेषज्ञ हैं। प्रस्तुत शोधप्रबंध की रूपरेखा तैयार करने के साथ ही सतत् निर्देशन द्वारा आपने मेरी अतीव सहायता की। अत: आपके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। योग एवं तन्त्र सम्राट श्री चन्द्रबिन्दु जी महाराज ने इस शोधप्रबंध की प्रस्तुति में जो अमूल्य सहायता प्रदान की है उसके लिये मैं उनका सदैव ऋणी रहूँगा। डा० शंकर चतुर्वेदी ने इस शोधप्रबंध के सम्पन्न होने में उत्पन्न विभिन्न कठिनाइयों को दूर करने में अपूर्व तत्परता दिखायी है। अत: उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत शोधकार्य को सम्पन्न करने में मुझे अपने परिवार के सदस्यों का भी अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ। मेरे पिता श्री रमापति दूबे एवं माता श्रीमती मेधावती देवी का आशीर्वाद एवं उनकी शुभ कामनायें सदैव मेरे साथ रहीं। मेरी पत्नी श्रीमती सुशीला देवी ने भी पारिवारिक चिन्ता से मुक्ति देकर अमूल्य सहायता एवं सहयोग प्रदान किया, मैं अपने परिवार के समस्त सदस्यों के प्रति कृतज्ञ हूँ।

आत्मानुरूप पुत्र गणेशदत्त का भी विशेष आभारी हूं जो स्वाध्याय में निमग्न मुझे देखकर अपने "बालक बन्दर एक सुभाऊ" वाले सिद्धान्त के प्रतिकूल ही मौन धारणकर वातावरण को अनुकूल बनाये रखने में पूर्ण सहयोग देता था ।

मित्रों में मुडकुड़ा इण्टर कालेज गाजीपुर में विज्ञान के प्रवक्ता श्री सिद्धिसर्जन सिंह, काशी विद्यापीठ के डा० परमानन्द सिंह, प्रवक्ता इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सक डा० राणागोपाल सिंह एवं उनकी धर्मपत्नी डा० ऊषा सिंह आदि लोगों का आभारी हूं ।

हिन्दी के मनस्वी विद्वान् एवं अक्खड़ व्यक्तित्व सम्पन्न पं० श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इसे पूरा कराने की प्रेरणा दी । काशी के लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्ति माँ संकठा के अनन्य भक्त श्री मुरारीलाल जी केडिया भी समय समय पर इस को सम्पन्न कराने में सहयोग प्रदान करते रहे । अतः इन लोगों का हृदय से आभारी हूं ।

मानस सम्राट श्री रामकिंकर जी उपाध्याय, डा० श्रीनाथ जी व्यास का भी समय समय पर सहयोग प्राप्त होता रहा है जिसका मैं ऋणी हूं । श्री शिवनारायण जी व्यास, श्री नामवर जी व्यास, मानस कोकिल श्रीनाथ जी व्यास एवं आध्यात्मिक प्रतिभा सम्पन्न पिता तुल्य श्री सूर्यनाथ जी मिश्र आदि महानुभावों का आभारी हूं । हनुमत चरित्र के लोक विश्रुत आचार्य संत छोटे जी व्यास ने मेरा कृपापूर्ण दिशा निर्देश किया, जिनका मैं आभारी हूं ।

वाणी वितान के संचालक, श्री गिरीशचन्द्र मिश्र, साधुवेला संस्कृत महाविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री जगदम्बिका प्रसाद त्रिपाठी एवं वकील श्री बलराम उपाध्याय तथा अन्त में उन सभी रामकथा विशेषज्ञों का ऋणी हूं जिनके प्रवचन, उपदेश एवं रचनाओं से शोध प्रबंध को पूरा करने में सहायता प्राप्त हुयी है ।

सुदामा दूबे
(सुदामा दूबे)

अ नु क्र म

पृष्ठ संख्या :-

मानस रोगों की अवधारणा सम्बद्ध क्षेत्र एवं महत्व :-

गान्धर्व सत्व, सत्वादि प्रकृतिवालों को
सुखादि का अनुभव, राजस प्रकृतियों में भेद,
तामस प्रकृतियों के भेद, आधुनिक मनोविज्ञान में
मानस प्रकृति ।

६९-११३

द्वितीय अध्याय :-

मानस रोगों का वर्गीकरण :-

मनोस्नायु विकृति, मनोविकृति, मानसिक दुर्बलता, समाज विरोधी व्यक्तित्व, आयुर्वेद के अनुसार मानसिक रोगों का वर्गीकरण (रज एवं तम की विकृति के कारण मानसिक रोग) वात, पित्त, कफ एवं रज तथा तम के कारण उत्पन्न मानसिक रोग, उन्माद, अपस्मार, अपतंत्रक, अतत्वाभिनिवेश, अनिद्रा, भ्रम, तन्द्रा, क्लम, मद, मूर्च्छा, सन्यास, मदात्यय, मदोद्वेग, संत्रास, रज एवं तम की विकृति के कारण मानसिक रोग :- काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान, मद, शोक, चिन्ता, उद्वेग, भय, हर्ष, आधिव्याधियां अथवा मनोदैहिक रोग, शोक ज्वर, काम ज्वर, भयज अतिसार, तमकश्वास, प्रकृति विकारजन्य मानस रोग, सत्वहीनता, अमेधता, विकृत सत्वता, प्रकृति विकार जन्य मानसिक रोग ।

तृतीय अध्याय :-

११४-१३५

रामचरितमानस में वर्णित मानस रोगों का स्वरूप :-

गोस्वामी जी द्वारा उल्लिखित मानस रोग, मोह, काम, क्रोध, ममता, ईर्ष्या, हर्ष, विषाद, दाय, दुष्टता,

----

प्रथम अध्याय

मानस रोगों की अवधारणा : सम्बद्ध क्षेत्र एवं महत्त्व

आयुर्वेद में रोग आश्रयभेद से दो प्रकार के माने गये हैं — मानसिक एवम् शारीरिक। मन को विकृत करने वाले विकारों को मनोविकार अथवा मानस रोग एवम् शारीरिक कारणों से उत्पन्न एवम् शरीर को प्रभावित करने वाले विकारों को शारीरिक रोग कहते हैं। मानस रोग भी कुछ केवल मन के आश्रय में रहते हैं और कुछ मन एवम् शरीर दोनों के आश्रित होते हैं। आयुर्वेद के अनुसार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मद, चिन्ता आदि शुद्ध मानसिक रोग हैं जिनमें संवेगों की विकृति होती है एवं रज तथा तम इनकी उत्पत्ति के मुख्य कारण हैं। शोकातिसार मदात्यय आदि में शारीरिक एवम् मानसिक दोनों प्रकार के लक्षण होते हैं और इनकी उत्पत्ति में मानसिक दोष रज, तम के अतिरिक्त शारीरिक दोष, वात, पित्त एवम् कफ भी उत्तरदायी होते हैं।

मानस रोग से पीड़ित व्यक्ति में विकृत मानसिक क्रियायें, असामान्य व्यवहार एवम् विकृत संवेग के लक्षण मिलते हैं। बहुत से रोगियों में तो ये लक्षण इतने स्पष्ट होते हैं कि साधारण व्यक्ति भी मानसिक रोगियों को पहचान लेते हैं, किन्तु कुछ रोगियों में इनका निदान करने में कुशल चिकित्सकों को भी कठिनाई होती है।

मानस रोगों के निदान एवम् चिकित्सा के लिए जिस शास्त्र को विकसित किया गया है, उसे मनोविकार विज्ञान कहते हैं। यह आज आयुर्विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा बन चुकी है। इसका विकास आयुर्विज्ञान एवम् मनोविज्ञान के सम्मिलित योगदान द्वारा हुआ है।

मन में उत्पन्न होनेवाले विकारों अर्थात् मानस रोगों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन मनोविकार विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है । मानसिक स्वास्थ्य के विश्वकोश में मनोविकार विज्ञान को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है – " मनोविकारविज्ञान आयुर्विज्ञान की वह शाखा है जो मानसिक तथा संवेगात्मक व्याधियों का अध्ययन, उनके उपचार तथा निराकरण का प्रयास करती है ।" यहां मानसिक से संवेगात्मक शब्द का अलग उल्लेख कर के उसके विशेष महत्त्व को प्रदर्शित किया गया है । पाश्चात्य मनोविकारवेत्ता पहले संवेगों को अधिक महत्त्व नहीं देते थे, किन्तु इस परिभाषा के अनुसार अब उन्होंने भी इनके महत्त्व को स्वीकार कर लिया है । आयुर्वेद तो इन विकृत संवेगों अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मद, चिन्ता, भय, हर्ष आदि को ही शुद्ध मानस रोग मानता है जिनकी उत्पत्ति रज एवम् तम के विकार के कारण होती है । वह उन्माद, अपस्मार आदि मानसिक रोगों की उत्पत्ति में शरीर दोष – वात, पित्त, कफ एवम् मानसिक दोष रज एवं तम दोनों को उत्तरदायी मानता है ।

पूर्व कथनानुसार असामान्य व्यवहार एवं असामान्य मानसिक क्रिया युक्त व्यक्ति को मानस रोगों से आक्रान्त माना जाता है । अत: मानस रोगों के निदान के लिये व्यक्ति के व्यवहारों एवं उसके व्यक्तित्व का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है । इसका कारण यह है कि शारीरिक रोगों की भांति प्रयोगशालीय एवं एक्स-रे आदि साधनों से मानसिक रोगों के निदान में कोई सहायता नहीं प्राप्त होती ।

असामान्य व्यक्तित्व एवम् व्यवहार की पहिचान गम्भीर मानसिक रोगियों में तो सहज है किन्तु अनेक मानसिक विकारों में यह कठिन समस्या होती है । किस प्रकार के व्यवहार को सामान्य और किसे असामान्य कहा जाय इसकी सीमा का निर्धारण एक कठिन कार्य है । व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में विभिन्न व्यक्ति एक समान नहीं होते । सामान्य कहे जाने वाले सभी संवेगात्मक, चारित्रिक एवम् बौद्धिक गुणों का उनमें समान वितरण भी नहीं होता । असामान्यता की दिशा भी केवल

किसी गुण विशेष की निम्नता, अभाव, विकृति अथवा न्यून विकास की ओर ही नहीं होती, वरन् इन गुणों की श्रेष्ठता एवं अत्यधिक उपस्थिति की दिशा में भी हो सकती है । अत: सामान्य गुणों के इन दोनों छोरों पर यह असामान्यता दिखाई पड़ती है । फिर भी हमारे अध्ययन के लक्ष्य मानसिक रोग के क्षेत्र में विकृत लक्षण ही होते हैं, क्योंकि व्यवहार में अभियोजन सम्बन्धी समस्या प्राय: इन्हीं में हुआ करती है ।

उपर्युक्त कारणों से असामान्यता के स्वरूप की व्याख्या विभिन्न दृष्टि-कोणों से निम्नलिखित आधार पर की गई है :-

सांख्यकीय आधार

इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी भी जनसंख्या के अधिकांश व्यक्ति सामान्य श्रेणी में आते हैं । ऐसे व्यक्ति जो बुद्धि, व्यक्तित्व-स्थिरता अथवा सामाजिक अनुकूलन की औसत मात्रा और क्षमता से युक्त होते हैं, उन्हें सामान्य, जिनमें इन गुणों की मात्रा औसत से कम होती है उन्हें असामान्य और जिनमें औसत से अधिक होती है उन्हें श्रेष्ठ कहते हैं ।

अभियोजनात्मक आधार

इस सिद्धान्त के अनुसार हम किसी व्यक्ति को उसी सीमा तक सामान्य कह सकते हैं जिस सीमा तक वह नैतिक-सामाजिक वास्तविकता के प्रति अभियोजित अथवा उनके अनुकूल है । इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार मानसिक असामान्यता का निर्णय मुख्यरूप से सामाजिक प्रतिमानों और नैतिक सांस्कृतिक मान्यताओं के अनुसार किया जाता है ।

जैव रासायनिक सन्तुलन और मानसिक असामान्यतायें

मानसिक रोगों के क्षेत्र में जैव-रासायनिक संतुलन जैसे प्रतिमान उपलब्ध न होने के कारण असामान्य मानसिक प्रतिक्रियाओं के स्वरूप के सम्बन्ध में अत्यधिक मतभेद

और संदेह है । मानसिक स्वास्थ्य को शरीर के जैव रासायनिक संतुलन के अतिरिक्त कुछ और भी तत्त्व प्रभावित करते हैं । यथा – आर्थिक सुरक्षा, सामाजिक स्तर, व्यक्तिगत अभीष्ट धार्मिक विश्वास, हीनभावना, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, संवेदनात्मक सुरक्षा आदि । अत: मानस रोगों के निदान एवं चिकित्सा के क्षेत्र में मानसिक असामान्यता का निर्णय करने के लिये ' जैव रासायनिक सन्तुलन ' जैसे किसी विचार का आश्रय लेकर किसी ' सामान्य संस्कृति ', ' सामान्य सामाजिक स्वरूप, ' अथवा ' सामान्य रीतिरिवाज ' अथवा ' सामान्य धर्म ' आदि को उसी रूप में आधार नहीं बना सकते जिस प्रकार कि शरीरशास्त्रवेत्ता सामान्य शारीरिक प्रतिमानों को बना लेते हैं ।

सर्वांशवादी आधार

दैहिक रोगों की भांति जब तक मानसिक रोगों के स्वरूप निर्धारण का कोई निश्चित् आधार नहीं बन जाता तब तक सर्वांशवादी दृष्टिकोण अपनाना अधिक उचित होगा । मानसिक रोगों के स्वरूप के सम्बन्ध में उपर्युक्त दृष्टिकोण सम्बन्धी मतभेदों को देखते हुये किसी एक मत को मानना ठीक नहीं है । अत: मानसिक रोगों के स्वरूप निर्धारण में विभिन्न मतों के आवश्यक तथ्यों को सम्मिलित करना अधिक उपयुक्त होगा । इसे सर्वांशवादी दृष्टिकोण कहा जा सकता है ।

इस दृष्टिकोण से मानसिक प्रक्रिया के आधार पर ' सामान्य, ' श्रेष्ठ ' और ' असामान्य ' व्यक्तित्वों का निरूपण निम्नोक्त प्रकार से कर सकते हैं ।

सामान्य

किसी जनसंख्या का अध्ययन किया जाय तो उसमें लगभग ८० प्रतिशत व्यक्ति इस सामान्य कोटि के मिलते हैं । इनके जीवन इतिहास का अध्ययन करने पर एक प्रकार की समानता दृष्टिगोचर होती है । ये बहुसंख्यक लोग प्राय: अपनी पढ़ाई में औसत या मध्यम श्रेणी के होते हैं । अपने कार्यक्षेत्र में इनकी क्षमता सन्तोषजनक होती है । इनकी आय भी प्राय: सीमित और भरणपोषण के लिए पर्याप्त होती है । ये प्राय: कानून की मर्यादा को मानते हैं और सामाजिक परम्पराओं को स्वीकार करते हैं । ये सभी व्यक्ति सामान्य जीवन का निर्वाह करते हैं, अर्थात् बचपन में

अध्ययन करना, खेलना, बड़े होकर विवाह करना, सन्तानोत्पत्ति, गार्हस्थ्य जीवन बिताना, व्यवसाय करना आदि । व्यक्तित्व विशेषता की दृष्टि से ये एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं किन्तु इनमें से कोई असाधारण उत्तेजनशील, एकाकी, विषादयुक्त, सन्देही अथवा अत्यधिक प्रभावशाली नहीं होता । इसका कारण यह है कि इनमें सभी गुण औसत मात्रा में ही वर्तमान होते हैं । कठिन परिस्थितियों को धैर्यपूर्वक सहन करने की क्षमता इनमें होती है । यह समाज में अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध बनाये रखने में भी प्रायः सफल होते हैं । इन्हें औसत या सामान्य व्यक्तियों की श्रेणी में रखा जाता है । आयुर्वेद में इन्हें मध्यम सत्व का व्यक्ति माना गया है ।

श्रेष्ठ

सम्पूर्ण जनसंख्या में एक अल्पसंख्यक वर्ग हुआ करता है जिनका औसत लोगों की अपेक्षा बौद्धिक स्तर, व्यक्तित्व, सामाजिक अभियोजन और सामाजिक परिपक्वता उच्च एवं श्रेष्ठ होती है । सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा ये अधिक सफल, श्रेष्ठ और उच्च स्तर का जीवन व्यतीत करते हैं । कभी कभी अपने नवीन विचारों, अवधारणाओं एवं व्यक्तित्व से ये सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं और देश एवम् समाज के सदस्यों को सुख और समृद्धि प्रदान करने में सहायक होते हैं । इस श्रेणी में महान् व्यक्तित्व वाले नेता, समाजसुधारक, महात्मा, वैज्ञानिक, साहित्यकार, कलाकार आदि होते हैं । किसी जनसंख्या में लगभग १० प्रतिशत व्यक्ति इस श्रेणी के होते हैं । आयुर्वेद में इन्हें प्रवर सत्व की श्रेणी में रखा गया है । ये सर्वोत्तम मानसिक स्वास्थ्य युक्त होते हैं ।

असामान्य

किसी भी जनसंख्या में सामान्य लोगों से भिन्न कुछ व्यक्तियों का एक अन्य अल्पसंख्यक वर्ग भी होता है जिसे असामान्य कहा जाता है । श्रेष्ठ व्यक्तियों से विपरीत गुणयुक्त ये लोग होते हैं । इनमें निम्न, प्रतिकूल एवं अस्वस्थ मानसिक प्रक्रियाएं होती हैं । इनकी बुद्धि सीमित, संवेग अस्थिर, व्यक्तित्व असंगठित और चरित्र दूषित होते हैं । इनका अधिकांश जीवन निम्न, हेय, समाजविरोधी तथा समाज के लिए भारस्वरूप होता है । इनकी संख्या भी किसी जनसंख्या में लगभग

१० प्रतिशत हुआ करती है । आयुर्वेद में इन्हें अवरसत्वयुक्त कहा गया है । यही व्यक्ति मानस रोगों से पीड़ित हुआ करते हैं ।

मानसरोग

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि समाज के असामान्य वर्ग के व्यक्ति प्राय: मानस रोगों से पीड़ित हुआ करते हैं, किन्तु श्रेष्ठ एवं सामान्य वर्ग के व्यक्ति भी मानसिक रोगों से ग्रस्त हो सकते हैं । आधुनिक मानसरोगवेत्ताओं ने समस्त मानस रोगों को प्राय: चार श्रेणियों में विभाजित किया है । यथा –

१- मनोस्नायुविकृत,
२- मनोविकृत,
३- मानसिक अथवा हीन बुद्धि, एवं
४- समाज विरोधी ।

प्राचीन भारतीय चिकित्साशास्त्र में भी मानस रोगों को १- रज एवं तम जन्य, २- वात, पित्त, कफ तथा रज एवं तम जन्य, ३- सत्वहीनताजन्य तथा आधि-व्याधिजन्य माना गया है ।

मानस रोगों का निदान रोगी के इतिहास, रोगोत्पत्तिक्रम, उपस्थित लक्षणों एवम् रोगी के आचार-व्यवहार आदि का अध्ययन करके निश्चित् किया जाता है । अत: इन रोगों का निदान मनोवैज्ञानिक, मानसरोग चिकित्सक, एवं मानस रोगों में प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता मिलकर निश्चित् करते हैं । इस कार्य में कभी कभी चिकित्साशास्त्र की अन्य शाखाओं के विशेषज्ञों की भी सहायता लेनी पड़ती है ।

मानस रोगों की चिकित्सा औषधियों एवं औषधिरहित मानसोपचार प्रक्रियाओं द्वारा अर्थात् दोनों प्रकार से की जाती है । कुछ मानसिक रोगों यथा उन्माद, अपस्मार आदि में औषधियां पर्याप्त प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं और वे इन

रोगों की चिकित्सा में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुई हैं। किन्तु अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), चित्तोद्वेग, संत्रास एवं क्लम आदि मनोस्नायुविकृतियों में इनका प्रभाव प्रायः नगण्य होता है। अतः इन रोगों की चिकित्सा में मानसोपचार की अन्य विधियों का प्रयोग किया जाता है। इन विधियों में सामूहिक मानसोपचार, निर्देश, सदुपदेश, सम्मोहन, मनोविश्लेषण, विश्राम और वातावरण परिवर्तन तथा आघात चिकित्सा आदि मुख्य हैं।

आयुर्वेद के अनुसार मानस रोगों की चिकित्सा में तीन मुख्य विधियों का प्रयोग होता है। ये हैं—

१) युक्तिव्यपाश्रय,

२) दैवव्यपाश्रय, तथा

३) सत्वावजय।

युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा में विभिन्न औषधियों एवं आहार द्रव्यों की समुचित योजना द्वारा चिकित्सा की जाती है। पंचकर्म आदि विधियों का प्रयोग एवं मानसिक तथा शारीरिक आघात आदि का प्रयोग भी इसके द्वारा होता है। स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य, अंजन, धारा आदि प्रक्रियाएं इसके अन्तर्गत सम्मिलित हैं। दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के अन्तर्गत बलि, मंगल, होम, मणिधारण, मन्त्र, तीर्थाटन, यम, नियम एवं ईश्वर प्रणिधान आदि विविध विधियों का प्रयोग होता है। सत्वावजय का अर्थ है मन पर विजय। धैर्य, स्मृति तथा समाधि आदि के द्वारा मन पर नियन्त्रण प्राप्त करना इसकी मुख्य प्रक्रिया है।

मानस रोग और सम्बद्ध क्षेत्र

मानस रोगों के निदान एवं चिकित्सा में अन्य क्षेत्रों के अनुसन्धान परिणामों से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है। मानसोपचार शास्त्र के विकास में इन क्षेत्रों में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों ने अमूल्य योगदान किया है। यह क्षेत्र निम्नलिखित हैं—

१) चिकित्सा विज्ञान

पहले सभी मानसिक रोगों की चिकित्सा सामान्य शारीरिक रोग चिकित्सकों द्वारा की जाती थी । अब इसकी एक विशिष्ट शाखा बन गई है जिसे मानसोपचार शास्त्र या साइकिएट्री कहते हैं । इन चिकित्सकों को मानसोपचारशास्त्री कहते हैं । मस्तिष्क, सुषुम्ना आदि से सम्बन्धित मानस रोगों को स्नायुविक मनोविकृति (न्यूरो साइकिएट्रिक व्याधियां) कहते हैं । मनोविश्लेषण भी मानसोपचारशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है जिसके अन्तर्गत मनोविश्लेषण द्वारा निदान एवं उपचार किया जाता है ।

२) मनोविज्ञान

यह शास्त्र मुख्यत: मानव की सामान्य मानसिक प्रक्रियाओं एवं उसके व्यवहार का अध्ययन करता है । असामान्य मनोविज्ञान इसका एक उपविभाग है जिसके अन्तर्गत मानसिक रोगियों के व्यवहारों एवं उनकी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है ।

३) समाजशास्त्र

इसके अन्तर्गत समूह, जाति, अथवा समाज के व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है । समाज के सदस्यों की मनोरचना और व्यवहारों को समझना समाजशास्त्र के लिए आवश्यक है । अत: इसका मनोविज्ञान एवं मानसोपचारशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

४) विधिशास्त्र

मानसिक रोगियों के लिए विधि शास्त्र में निश्चित् कानून बने हुए हैं । इनके सामाजिक अधिकारों का निर्णय विभिन्न देशों में बने हुवे कानून करते हैं । इनके अनुसार मानसिक रोगियों विशेषरूप से विक्षिप्तों को नागरिकता, मतदान अथवा सार्वजनिक पद आदि ग्रहण करने के अधिकार नहीं होते । कानून जब तक

इन्हें स्वस्थ नहीं घोषित कर देता, ये अधिकार इन्हें वापस नहीं मिल सकते। इसके लिए कानून को मानसरोग चिकित्सा-विज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है।

शिक्षा

यदि शिक्षक विद्यार्थियों के सामाजिक, संवेगात्मक, और व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास पर समुचित ध्यान दें तो इस व्यक्तित्व निर्माण के प्रारम्भिक काल में अनेक मानसिक विकारों के उत्पत्ति सम्बन्धी कारणों से बचा जा सकता है। अत: निरोधी उपाय के रूप में मानसिक रोगों के क्षेत्र में शिक्षा का विशेष महत्त्व है।

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान अब मानस रोग-चिकित्सा विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। यह मुख्यत: एक प्रशिक्षणात्मक विज्ञान है। इसके दो मुख्य उद्देश्य हैं, यथा –

१) जीवनयापन की स्वस्थ मनोवैज्ञानिक स्थिति का निर्माण करना जिससे मानसिक रोग उत्पन्न न हो सके और साधारण विकृतियों का उनके आरम्भिक काल में ही उपचार करना वह विकसित न हों, और

२) मानसरोग से पीड़ित व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति एवं मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के प्रति विधेयात्मक भावना का निर्माण करना।

धर्म

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के विकास के साथ ही मानसिक रोग सम्बन्धी धार्मिक मत का महत्त्व कम होने लगा। मानसिक रोगियों की चिकित्सा वैज्ञानिक ढंग से होने लगी। फिर भी एक परिष्कृत रूप में आज भी धर्म और मानसोपचार-

शास्त्र का घनिष्ठ सम्बन्ध बना हुआ है । कभी कभी विशेष परिस्थितियों में मानसिक सन्तुलन और आन्तरिक शान्ति सुरक्षित रखने के लिए आधुनिक चिकित्सक भी रोगियों को ईश्वरोपासना और धर्म में आस्था उत्पन्न करने का निर्देश करते हैं । मानसिक रोगियों की सहायता करने के लिए योरोप में अनेक धर्मगुरुओं और पुरोहितों ने मानसरोग विज्ञान एवं असामान्य मनोविज्ञान की विशेष शिक्षा प्राप्त की है । वहां अनेक स्थानों पर ऐसे मानसिक उपचारगृहों की स्थापना हुई है जहां चिकित्सा के साथ साथ रोगी को धर्मोपदेश देने का प्रबन्ध है । आधुनिक मानसोपचार शास्त्रियों में कुछ धार्मिक भावना उत्पन्न करना चिकित्सा का एक आवश्यक अंग मानते हैं ।

रामचरितमानस एवं मानस रोग

रामचरितमानस एक लोकप्रिय महाकाव्य है । भारतवर्ष के हिन्दी-क्षेत्र में एवं विदेशों में भी जहां भारतीय वंशज बसे हुए हैं, यथा - मारीशस, लंका, नेपाल आदि में रामचरितमानस को प्रमुख धर्मग्रन्थ के रूप में माना जाता है । सन्तकवि गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम के चरित्र का वर्णन करते हुए धर्म, दर्शन, चिकित्सा आदि के सिद्धान्तों की विशद् व्याख्या प्रस्तुत की है । राम के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करते हुये उन्होंने अनेक सहायक चरित्रों को भी उपस्थित किया है । इनमें भरत, हनुमान, लक्ष्मण, वशिष्ठ जैसे उदात्त चरित्रों के साथ ही, रावण, मेघनाद, कुम्भकरण, शूर्पणखा आदि अभिमानी, नीतिविरोधी, ईर्ष्यालु, कामुक एवं समाजविरोधी चरित्रों की भी सृष्टि की है । सीता जैसी पतिव्रता, कौशिल्या जैसी साध्वी स्त्री पात्रों के साथ कैकेयी जैसी स्वार्थी एवं मंथरा जैसी परदुख में सकरूप से दुःखी होनेवाली नारियों के व्यक्तित्व को भी प्रस्तुत किया है ।

मानव चरित्र, उसकी प्रवृत्तियों एवं मानसिक स्थितियों का इतना स्वाभाविक वर्णन गोस्वामी जी ने किया है कि ऐसा प्रतीत होता है, मानों मनोविज्ञान का उन्होंने अत्यधिक गहन अध्ययन किया हो । क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, मोह, मान, मद आदि संवेगों एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त चरित्रों का चित्रण उन्होंने कुशल मनोवैज्ञानिक चितेरे के रूप में प्रस्तुत किया है ।

मानस रोगों में रामचरितमानस का महत्त्व

आयुर्वेद में जिन मानसिक संवेगों को मानसरोग कहा गया है, गोस्वामीजी ने उन्हीं का वर्णन रामचरितमानस में मानस रोगों के रूप में किया है। इन मानस रोगों की चिकित्सा किसी औषधि से नहीं की जा सकती। आधुनिक मनोवैज्ञानिक एवं मानसोपचारशास्त्री इन रोगों का उपचार मनोवैज्ञानिक चिकित्सा विधियों, यथा - सामूहिक मानसोपचार, निर्देश, सदुपदेश, सम्मोहन, मनोविश्लेषण, विश्राम एवं वातावरण परिवर्तन आदि द्वारा करते हैं। रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने इन मानसरोगों की चिकित्सा में राम की भक्ति एवं उनके प्रति श्रद्धा, विश्वास एवं आत्मसमर्पण को प्रमुख उपाय माना है। राम की भक्ति एवं उनकी कृपा द्वारा प्राणी में विमल विवेक एवं ज्ञान की उत्पत्ति होती है। अतः काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं माया आदि स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। इसके लिए उन्होंने कुशल चिकित्सक की आवश्यकता का उल्लेख किया है। यह कुशल चिकित्सक उन्होंने श्रेष्ठ गुरु को माना है। वही उचित दिशा-निर्देश द्वारा प्राणी में ईश्वर के प्रति विश्वास एवं निर्मल ज्ञान की उत्पत्ति में सक्षम है। ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास की उत्पत्ति के परिणामस्वरूप मानसिक अस्थिरता, चिन्ता, सन्त्रास एवं मानसिक द्वन्द्व आदि दूर हो जाते हैं।

आधुनिक चिकित्सक जो कार्य सामूहिक मानसोपचार, मनोविश्लेषण, सम्मोहन, निर्देश, सदुपदेश एवं विश्राम आदि द्वारा करते हैं, रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने ब्रह्मरूपी राम की भक्ति एवं विश्वास तथा आत्मसमर्पण द्वारा वही परिणाम प्राप्त होने की सम्भावना का उल्लेख किया है। निर्मल ज्ञान एवं विवेक इसके लिए आवश्यक हैं और इसकी प्राप्ति में योग्य गुरु सहायक होता है। अतः यहां गुरु की तुलना गोस्वामीजी ने मानस चिकित्सक के साथ की है। मानसरोगों की चिकित्सा में भी योग्य मानसोपचारशास्त्री की आवश्यकता होती है।

भारत ऐसे विकासशील देश में योग्य मानसोपचारशास्त्रियों की अभी बहुत कमी है। यहां की जनता इस महंगी चिकित्सा का व्ययभार भी उठाने में असमर्थ है।

इस आधुनिक मानसोपचार में समय भी बहुत अधिक लगता है और सभी रोगियों में सफलता भी नहीं मिलती । भारत की अधिकांश जनता साक्षर न होने से साइकोथिरेपी चिकित्सा के उपयुक्त भी नहीं है । अत: मनोरोगग्रस्त जनसंख्या का अधिकांश भाग आधुनिक मानसोपचार के उपयुक्त नहीं है । इसके विपरीत रामचरितमानस एक सर्वसुलभ ग्रन्थ है । विश्वविद्यालय के उच्च अध्यापक एवं सामान्य निरक्षर ग्रामीणजन सभी समानरूप से इससे लाभ उठाते हैं । इसकी अनेक उक्तियों को भारतीय जन धर्मशास्त्र के वाक्यों के समान मानते हैं एवं उनका आदर करते हैं । भारतीयों के जीवन में इन उक्तियों ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है । मानस का पाठ भारतीय जन व्यक्तिगत एवं सामूहिकरूप से करते हैं । अत: इनमें निर्दिष्ट उपदेशों का प्रयोग बालकों की शिक्षा एवं उनके चरित्र निर्माण सम्बन्धी प्रशिक्षण में किया जा सकता है । इससे राष्ट्र के भावी नागरिकों के व्यक्तित्व का उचित विकास होगा और वे अपने संवेगों, भावनाओं एवं मानसिक स्वास्थ्य को सामान्य बनाये रखने में सफल होंगे । ऐसे नागरिक नीति, धर्म एवं सामाजिक मर्यादाओं का पालन करेंगे और उनमें मानसिक रोगों की उत्पत्ति की सम्भावना भी कम हो जायगी ।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि मानसिक रोगों के निरोध में और मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में रामचरितमानस का विशेष महत्त्व है ।

मानस रोगों को समझने के लिये आयुर्वेद एवं भारतीय दर्शन ग्रन्थों में वर्णित मन एवं उसके स्वरूप, मानस रोगों के कारण, रोगों की अवधारणा एवं मानस प्रकृतियों आदि का ज्ञान आवश्यक है ।

मन एवं उसका स्वरूप

मानस रोग को समझने के लिए मन के स्वरूप को समझना आवश्यक हो जाता है । प्राय: सम्पूर्ण भारतीय विचारक मन को जड़ मानते हैं । सांख्य-दर्शन में मन को प्रकृति से उत्पन्न माना गया है । भारतीय दर्शन एवं आयुर्वेद में मनस्तत्त्व

का विचार जितनी गम्भीरता से हुआ है उतना कदाचित् किसी अन्य दर्शन प्रस्थान में नहीं हुआ है । परन्तु यह विचार आज के मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कितना उपादेय है यह बतलाने की जरूरत नहीं है । भारत में मन के सूक्ष्म रूपों तथा उसकी क्रियाओं का विश्लेषण अन्तर्दर्शन के माध्यम से हुआ है । भारत के विचारकों ने जो बातें अन्तर्दर्शन के माध्यम से ढूढ़ निकाली थी वे आज प्रयोगशाला की सीमा में उपलब्ध नहीं हो सकती । यही कारण है कि सभी मानवीय शास्त्रों के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण आधुनिक दृष्टिकोण से भिन्न है ।

मन की व्याख्या करते हुए भारतीय शास्त्रकारों ने कहा है – मन्यते बुध्यते इति मनः, अर्थात् जो मनन करने का सोचने समझने का साधन है वही मन है । मन, सत्व और चेतस् का आयुर्वेद में पर्याय के रूप में प्रयोग हुआ है ।[१] मनस् सूक्ष्म शरीर का एक अंग है ।[२] आयुर्वेद के अनुसार मन सर्व कर्तृत्व और सर्वज्ञत्व है । परन्तु यह जड़ है ।[३-४] मन द्रव्य है[५-६] चरक और काश्यप संहिता में मन को नवद्रव्यों में से एक माना गया है ।

भारतीय दार्शनिक वाङ्मय में मन के स्वरूप के सम्बन्ध में काफी मतभेद है । इस सम्बन्ध में जो प्रश्न चर्चित हैं, वे ये हैं –

१- क्या मन इन्द्रिय है ?

२- क्या एक शरीर में एक ही मन होता है ?

१- चरकसंहिता, सूत्रस्थान, ८।४

२- वही, १।७४

३- चरकसंहिता, विमानस्थान, [illegible]।२६

४- वैशेषिकसूत्र, १।१-५

५- चरक, सूत्र, १।४८

६- काश्यप संहिता, शारीरस्थान, पृ०६७ ।

३- मन का क्या परिमाण है ?

४- क्या वह अविनाशी है ?

यह एक चर्चित प्रश्न है कि मन इन्द्रिय है या नहीं । क्या मन इन्द्रिय है ? आयुर्वेद इस प्रश्न[१] का विध्यात्मक उत्तर देता है । चरकसंहिता में मन को षडिंद्रिय कहा गया है । मन ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों है । इन्द्रियां अपने विषयों को मन की अनुपस्थिति में ग्रहण नहीं[२] कर सकती मन के द्वारा प्रेरित होने पर ही वे अपने विषय को ग्रहण करती है । आयुर्वेद में मन को अतीन्द्रिय कहा गया है[३] । चरक ने मन को अतीन्द्रिय मानने के निम्नलिखित कारण बतलाये हैं -

१) मन अन्य इन्द्रियों की तरह केवल बाह्य विषयों का ही कारण नहीं बल्कि आन्तरिक विषयों का भी कारण है ।

२) मन सम्पूर्ण इन्द्रियों का अधिष्ठायक है ।

३) सम्पूर्ण इन्द्रियार्थों को मन के द्वारा ग्रहण किया जाता है । लेकिन मन को किसी भी इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता । अष्टांग-संग्रह में ऐसा ही विचार आता है ।

सांख्य के विचारक भी मन को इन्द्रिय मानते हैं । उनका कहना है कि ग्यारह इन्द्रियों में मन दोनों ही प्रकार का अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय भी है क्योंकि मन से संयुक्त होकर चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियां तथा वाक् इत्यादि कर्मेन्द्रियां अपने अपने विषय में प्रवृत्त होती हैं । अन्यथा नहीं[४] । नैयायिक भी मन को इन्द्रिय मानते हैं । लेकिन स्मृति, बाह्य तथा प्रत्यक्ष अनुमान में वह इन्द्रिय का

१- षडेन्द्रियप्रसादने ।
चरकसंहिता, सूत्र स्थान, २६।४३

२- मनःपुरःसराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहण समर्थानि भवन्ति ।
चरकसंहिता, सूत्र, ८।७

३- अतीन्द्रियं पुनर्मनः । चरकसंहिता, सूत्र, ८।४

४- सांख्यतत्वकौमुदी प्रभा, डा०आद्याप्रसाद मिश्र, श्लो०२७, पृ० ३ ।

कार्य सम्पन्न नहीं करता । वेदान्त में मन को इन्द्रिय स्वीकार नहीं किया गया है ।[१] भगवद्गीता में चरक के सदृश मन को छठीं इन्द्रिय के रूप में स्वीकार किया गया है ।[२]

क्या एक शरीर में एक ही मन होता है ? चरक का कथन है कि प्रत्येक शरीर में एक एक मन है ।[३] तब यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि एक शरीर में एक ही मन है तो यह अनेक कैसे प्रतीत होता है ? इसके उत्तर में चरक का कथन है कि मन में तीन गुण पाए जाते हैं — सात्विक, राजसिक, तामसिक । यदि मन में सत्व की प्रधानता है तो उसे सात्विक कहा जाता है । यदि रज की प्रधानता हो तो उसे राजसिक कहते हैं और यदि तम की प्रधानता है तो उसे तामसिक नाम से अभिहित किया जाता है ।

आयुर्वेद में मन को सत्व भी कहा जाता है ।[४] आयुर्वेद में दो प्रकार के सत्व का वर्णन आया है । एक गर्भपिण्ड की दृष्टि से तथा दूसरा वर्द्धमान व्यक्ति की दृष्टि से । ये दोनों मनोमय स्तर के दो उपभेद हैं । आधुनिक मनोवैज्ञानिक विचारक डा०युंग ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव की मनोमय गुहा बहुत गहरी है । प्रायः केवल बाल्य की मर्यादा तक मन की गहराई का पता लगा सके हैं । युंग ने कलेक्टिव या रेशियल तक मन की गहराई को सिद्ध किया है । किन्तु प्राचीन भारतीय चिकित्सकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मन की गहराई पूर्व जन्म तक पहुंचती है । चरक का स्पष्ट कथन है कि गर्भ में पूर्वजन्म का मन सूक्ष्म शरीर और

१- वेदान्त परिभाषा, प्रत्यक्ष प्रकरण, पृ०११ ।

२- मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।
   गीता, अध्याय,१५।७

३- अणुत्वमथचैकत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ ।
   चरकसंहिता, शारीर, १।१९

४- चरकसंहिता, सूत्र ८।४

जात्मा के सहित प्रविष्ट होता है ।[१] यह मन जिस जाति का होगा उसी प्रकार की गर्भ की मानस प्रकृति का निर्माण होगा । पहले ही हम कह चुके हैं कि सात्विक, राजसिक, तामसिक ये तीन ही मन के प्रकार हैं । पूर्वजन्म के ब्राह्म, ऐन्द्र, वारुण, कौबेर, गान्धर्व, आर्ष याम्य ये सात सात्विक तरीके आसुर, राक्षस, पैशाच, सार्प, प्रेत, शाकुन ये छह राजसिक तरीके,[२] और पाशव, मत्स्य तथा वानस्पत्य ये तीन तामसिक तरीके हुआ करते हैं ।

न्याय में भी प्रति शरीर में एक ही मन को स्वीकार किया गया है । वात्स्यायन का कथन है कि शरीर में एक ही मन होना चाहिए, क्योंकि अनेक ज्ञान युगपद् उत्पन्न नहीं हो सकते (ज्ञानयौगपद्यादेकं मनः) यदि यह मान लिया जाय कि प्रति शरीर में अनेक मन है तो उनका सम्बन्ध एक ही साथ सम्पूर्ण इन्द्रियों से होगा और एक ही साथ सम्पूर्ण इन्द्रियों का ज्ञान होने लगेगा । परन्तु ऐसा होता नहीं । इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक शरीर में एक ही मन है ।

मन के परिणाम को लेकर भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय में अनेक चर्चायें हुई हैं । चरक ने मन को ~~अणुक~~ अणु माना है[३] । किन्तु भाट्ट और योग सम्प्रदाय के अनुयायी मन को विभु मानते हैं । चरक का कथन है कि[४] मन इतना सूक्ष्म है कि एक समय में एक ही वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, दो या दो से अधिक नहीं । यही कारण है कि मन को विभु माना जा सकता है ।[५] यदि मन को विभु मान लिया जायगा तो एक ही समय सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान हो जायगा लेकिन ऐसा होता नहीं । उदाहरणार्थ, भोजन करते समय एक ही साथ उसके स्वाद, गंध, रंग आदि का ज्ञान नहीं होता बल्कि क्रमशः होता है । ऐसा

१- भूतैश्चतुर्भिः सहितः सुसूक्ष्मैर्मनोजवो देहमुपैति देहात् ।
कर्मात्मकत्वान्न तु तस्य दृश्यं दिव्यं विना दर्शनमस्ति रूपम् ।।
चरकसंहिता, शारीर, २।३१

२- चरकसंहिता, शारीर, ४।३७, ३८, ३६ ।

३- अणुत्वमथ - - -
चरकसंहिता, शारीर, १।१६

४- वही ।

५- वही ।

प्रतीत होता है कि एक ही साथ हो रहा है। आयुर्वेद में एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण आता है कि यदि कमल के सैकड़ों पत्तियों को एक साथ रखकर सुई से छेदा जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण पत्तियां एक ही साथ छिद गयीं लेकिन वास्तविकता तो यह है कि एक के बाद दूसरी पत्तियां छिदती हैं। अपने अणुत्व के कारण मन की गति अत्यन्त तीव्र होती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही साथ कई कार्य होते हैं।

चरक के अनुसार मन अणु है। मन का त्वचा से समवाय सम्बन्ध रहता है। स्पर्श इन्द्रिय ही एक ऐसा इन्द्रिय है जो हर इन्द्रियों में विद्यमान है। चूंकि त्वचा सारे शरीर में व्याप्त है इसलिए अणुमन भी सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है।[1]

न्याय-वैशेषिक के अनुसार भी मन अणु है। इसके मतानुसार मन विभु नहीं हो सकता क्योंकि विभु द्रव्य में गति नहीं होती। चूंकि विभु गति में असमर्थ है इसलिए वह सम्पूर्ण वस्तुओं से संयुक्त ही रहता है। इसलिए यदि मन विभु हो तो वह सभी इन्द्रियों से सदा संयुक्त ही रहेगा और तब एक ही समय अनेक ज्ञान घटित होगा। परन्तु ऐसा नहीं होता।[2]

वेदान्त का मन के परिमाण के सम्बन्ध में अपना एक विशिष्ट मत है। वेदान्ती मन को मध्यम परिमाण मानते हैं। अणुत्व का खण्डन करते हुए शंकराचार्य का कथन है कि 'अणु अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे एक दीपक का प्रकाश एक स्थान पर ही रखे जाने पर भी वहां से सारे कमरे में फैल जाता है। इसके उत्तर में शंकराचार्य का कथन है कि गुण द्रव्य के परे नहीं जा सकता। दीपक की ज्वाला तथा उसका प्रकाश परस्पर द्रव्य तथा गुण के रूप में सम्बद्ध नहीं हैं। दोनों ही अग्निमय द्रव्य हैं। केवल ज्वाला में अ अधिक एक-दूसरे के निकट है। किन्तु प्रकाश में वे अधिक दूरी पर एक दूसरे से पृथक् पृथक् रूप में हैं।

१- चरक संहिता, सूत्र स्थान, ११।३८

२- न्यायसूत्र, ३।२,८

विभुत्व का खण्डन करते हुए वेदान्तियों का कथन है कि यदि मन विभु होता तो कोई भी व्यक्ति किसी भी समय किसी भी वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकता लेकिन ऐसा नहीं होता है । इससे सिद्ध होता है कि मन विभु भी नहीं है । इस प्रकार की चर्चा पाश्चात्य जगत् में नहीं हुई है । इसका कारण यह है कि वहां पर मन को जड़ नहीं माना गया है । किन्तु भारत के प्राय: विचारक इसे जड़ मानते हैं । इसी कारण इसके आकार के सम्बन्ध में अनेक मत प्रस्तुत किए गए हैं ।

मन भौतिक है या अभौतिक ? यह प्रश्न बड़ा ही जटिल है । चरक ने अथवा आयुर्वेद ने स्पष्टत: यह कहीं भी नहीं कहा है कि मन भौतिक है या अभौतिक । किन्तु फिर भी कुछ प्रमाणों के आधार पर यह तो कहा ही जा सकता है कि मन भौतिक है । मन की गणना चरक ने इन्द्रिय के रूप में की है, और प्राचीन भारतीय चिकित्सा में इन्द्रियों को भौतिक माना गया है ।[1] अत: इस आधार पर मन को भौतिक माना जा सकता है । दूसरा आधार यह है कि सुश्रुत संहिता में एक स्थल पर वर्णन आया है कि पांच तत्त्वों अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, अग्नि और वायु के संयोग से ही सम्पूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति होती है ।[2] इस तर्क के आधार पर भी मन को भौतिक माना जा सकता है । इस मत की पुष्टि श्रुति के द्वारा भी होती है । श्रुति का कहना है कि जैसा अन्न खाओगे वैसा ही मन बनेगा ।

नैयायिक मन को अभौतिक मानते हैं । उनका कथन है कि मन अणु होने के कारण अनन्त है, निरवयव है । वेदान्त में मन को भौतिक माना गया है । अपने मत की पुष्टि में श्रुति प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । मन की उत्पत्ति अन्न(पृथ्वी) से हुयी है, प्राण की जल से और वाक् की उत्पत्ति तेज से हुयी है । इससे सिद्ध होता है कि मन भौतिक ही है ।

१- भौतिकानिचेन्द्रियाणि आयुर्वेद वर्ण्यन्ते ।
सुश्रुत संहिता, शारीर स्थान, १।१४

२- सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थानम्, ४१।३

मानस रोगों की अवधारणा

मनोविकार चिकित्सक विभिन्न मानसिक रोगों की मनोविश्लेषण के आधार पर चिकित्सा करते हैं। मानसिक रोग मुख्यत: अतिरिक्त काम कुण्ठा के कारण उत्पन्न होते हैं। इच्छाओं की यदि समयानुसार पूर्ति होती रहेतो सम्भवत: मानसिक रोगों का शिकार न होना पड़े। पारिवारिक उपेक्षा अपने निकटस्थ व्यक्ति की अवहेलना और आत्महीनता के कारण भी इन रोगों की उत्पत्ति होती है। प्रभाव की दृष्टि से रोगों को दो वर्गों में विभक्त किया गया - साध्य एवं असाध्य। साध्य वे रोगहैं जिनको विभिन्न प्रकार की औषधियों एवं उपचारों से ठीक किया जा सकता है और असाध्य वे हैं जिन्हें किसी भी स्थिति में नहीं ठीक किया जा सकता।

आश्रय की दृष्टि से भी रोगों को दो प्रकार का माना गया है - शारीरिक एवं मानसिक। शरीर के आश्रय में रहने वाले रोग शारीरिक और मन के अथवा मन और शरीर दोनों के आश्रय में रहने वालेरोग मानसिक कहलाते हैं। आयुर्वेद में मानसिक रोगों को कायचिकित्सा में भी अन्तर्भूत माना है। उनके पृथक् वर्गीकरण का कोई उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी जो सामग्री उपलब्ध है उसके आधार पर इन्हें भी दो प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकता है -- निज एवं आगन्तुक। निज मानसिक रोग वे हैं जो शारीरिक एवं मानसिक दोनों में विकृति के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

आयुर्वेद में दो प्रकार के रोग माने गए हैं :- शारीरिक एवं मानसिक। वात, पित्त एवं कफ की विषमावस्था को शारीरिक रोग कहते हैं तथा मन में रज एवं तम की प्रधानता से उत्पन्न होने वाले विकारों को मानसिक रोग कहते हैं। दोनों का आपस में घनिष्टतम संबंध है। मन शरीर के ऊपर आश्रित है और शरीर मन के ऊपर।[१] प्राय: व्यवहार में भी देखा जाता है कि शारीरिक रोग मन को तथा मानसिक रोग शरीर को प्रभावित करते हैं। पैर में जब कांटा चुभता है तो मन कष्ट का अनुभव करने लगता है इसी प्रकार जब मनुष्य मानसिक विकारों

१- चरक संहिता, शारीर स्थान, ४।३६

जैसे क्रोध, चिन्ता आदि से ग्रसित रहता है तो शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जब व्यक्ति क्रोधित होता है तो उसकी आंखें लाल हो जाती हैं, मारने दौड़ता है तथा इसी प्रकार के अन्य असामान्य व्यवहार करता है, ये उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि मानसिक विकार शरीर को नाना प्रकार की असामान्य व्याधियों से ग्रसित कर देते हैं।

आयुर्वेदिक विचारकों का कहना है कि कोई भी रोग शारीरिक और मानसिक प्रभावों के सम्बन्ध के बिना प्रगति नहीं कर सकते। प्राचीन आ साहित्य में रोगों का वर्गीकरण (१) असात्म्य इन्द्रियार्थ संयोग, (२) प्रज्ञापराध एवं (३) परिणाम के रूप में किया गया है। इनमें से प्रज्ञापराध का मन और शरीर से घनिष्ठतम संबंध है। चरक का कथन है कि जब मनुष्य की बुद्धि, धृति और स्मृति में भ्रम उत्पन्न हो जाता है तो उसे प्रज्ञापराध कहते हैं।[१] असात्म्य-इन्द्रियार्थ संयोग और परिणाम विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं। मानसिक रोग जैसे काम, भय, शोक, ईर्ष्या, क्रोध, चिन्ता, मनोग्लानि, नैराश्य, सत्वहानि एवं मानसिक श्रम विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करने में महत्त्व-पूर्ण भूमिका अदा करते हैं। मानसिक और शारीरिक संवेग जिसको चरक अधर्म के नाम से अभिहित करते हैं, भी रोगों का महत्त्वपूर्ण कारण है।[२] हर्ष और विषाद भी मनुष्य के मनोदैहिक तंत्र में नाना प्रकार के आंतरिक एवं बाह्य परिवर्तन करते रहते हैं। संवेग की तीव्रता के अनुरूप ही यह उथल पुथल कम भी हो सकती है तथा अधिक भी हो सकती है।

संवेगों के अनेक प्रकार हो सकते हैं। 'गिलफोर्ड' के अनुसार 'संवेगात्मक कही जाने वाली अवस्थाओं को पृथक् पृथक् नामकरण में अंग्रेजी भाषा में कई सौ शब्दों की आवश्यकता होगी।[३] मानसिक स्वास्थ्य के विश्वकोश के अनुसार,

१- चरक, शारीर, १।१०२

२- चरक, विमान, ३।२०

३- गिलफोर्ड, जैनरल साइकोलाजी, पृ० १७१।

'संवेगों के उतने ही प्रकार हो सकते हैं जितने प्रकार के लोग हैं, चीजें हैं, जिनके प्रति भिन्न भिन्न रूपों में हम आकर्षण या विकर्षण का अनुभव करते हैं।'[१]

आयुर्वेद के अनुसार शरीर में तीन तत्त्व हैं, तेज, जल, एवं वायु। जब ये साम्यावस्था में रहते हैं तो शरीर स्वस्थ रहता है और जब विषमावस्था में रहते हैं तब शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।[२] इसी तरह मन का निर्माण भी तीन तत्त्वों से हुआ है - सत्त्व, रज और तम। जब ये साम्यावस्था में रहते हैं तो मन स्वस्थ रहता है और[३] जब विषमावस्था में आ जाते हैं तो अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रज और तम मन के दोष हैं। जब मन में इनकी प्रधानता हो जाती है तो मन में नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और हर्ष आदि।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि आयुर्वेद में दो प्रकार के दोष होते हैं, शारीरिक एवं मानसिक। शारीरिक दोष वात, पित्त, और कफ की विषमावस्था का नाम क कफ है तथा मानसिक दोष सत्त्व, रज, तम की विषमावस्था को कहते हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा के सम्पूर्ण मौलिक एवं व्यवहार्य भाग उसके त्रिदोष सिद्धान्त पर आधारित हैं। जो स्वयं में मनोदैहिक पहुंच है। आयुर्वेद के अनुसार, स्वस्थ पुरुष उसे कहते हैं जिसकी आत्मा, मन एवं इन्द्रिय प्रसन्न हो जिसके दोष धातु अग्नि और मल क्रम में हों।

मानसिक रोगों को - एकदेशीय मानसिक रोग तथा उभयाश्रित मानसिक रोग दो वर्गों में बांटा जा सकता है। एकदेशीय मानसिक रोगों में भारतीय चिकित्सा के संस्थापक चरक ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, शोक, चिन्ता, भय, तथा हर्ष आदि की गणना की है।[४] आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में इन्हीं को संवेग कहते हैं। चरक ने इन्हें रोग भी माना है और अन्य रोगों का लक्षण भी।

१- इनसाइक्लोपीडिया आफ मेण्टल हेल्थ, पृ० ५८४।

२- अष्टांग संग्रह सूत्र, १।४३

३- अष्टांग हृदय सूत्र, १।४४।

४- चरक विमान, ६।५

जैसे क्रोध एवं तंत्ररोग भी है और पित्तज उन्माद का एक प्रधान लक्षण भी । इस संबंध में एक बात और ध्यान में रखने की है कि संवेग ही मानव जीवन का रस है । संवेग न हों तो मानव पूर्णतः रस हीन हो जाए । आयुर्वेद का उद्देश्य ही है सुखायु और हितायु की प्राप्ति ताकि प्राणी धर्म, अर्थ, काम का समुचित मात्रा में उपभोग कर सके । ऐसी हालत में आयुर्वेद संवेग मात्र को रोग नहीं मान सकता । इस संदर्भ में इनका अर्थ है इनके (संवेगों के) अस्वाभाविक एवं विकृत रूप । काम मात्र रोग नहीं है । काम की पूर्ति के लिए ही तो आयुर्वेद के वाजीकरण तन्त्र की अवतारणा हुई है । हां, विकृत काम अथवा काम का विभागीकरण अवश्य रोग है ।[1]

उभयाश्रित मानसिक रोगों का कायचिकित्सा के अन्तर्गत ही, अन्य रोगों के साथ ही विवरण प्रस्तुत किया गया है । इन्हें अलग नहीं रखा गया है। उभयाश्रित होने के कारण आयुर्वेद ने इन्हें कायचिकित्सा में ही अन्तर्भूत मान लिया है । इनमें से प्रमुख निम्न हैं - भ्रम, तन्द्रा, क्लम, मद, मूर्छा, सन्यास, अपतंत्रक, अतत्वाभिनिवेश, अपस्मार और उन्माद । इनमें भ्रम से सन्यास तक प्रथम क्र: मनोविका स्वतन्त्र रोगों के रूप में भी लिए गए हैं और अन्य मानसिक रोगों के लक्षणों के रूप में भी । इनके अलावा मदात्यय को भी इसी कोटि में रखा जा सकता है ।[2]

कभी कभी मानसिक रोगों का कारण वंशपरम्परागत भी होता है । इनमें विषाद विक्षिप्ति तथा अन्तरावन्ध आदि प्रधान मानसिक रोग हैं । इसप्रकार के रोगों का कारण यह है कि वंशपरम्परागत आने वाले विशिष्ट तत्त्व एक प्रकार के जैव रसायनिक पदार्थ के रूप में होते हैं जो कि रोगी के विशिष्ट प्रकिण्व तंत्र के द्वारा ही रोगी पर प्रभाव डालते हैं । इसका कारण व्यक्ति में पूर्व से प्रदर्शित होने लगता है । जैसे, अत्यधिक चिन्ता, निराश वृत्ति, उत्साह आदि मानसिक अवस्थाएं पूर्व रूप में दिखाई देने लगती हैं । इसी तरह व्यक्ति में अत्यधिक संवेदनशीलता, अन्तरावन्ध नामक रोग के पूर्व में दिखाई देती है ।

१- डा० अयोध्याप्रसाद अचल, प्राचीन भारतीय मनोविकार विज्ञान, पृ० १०३ ।
२- वही, पृ० १०३ ।

संवेगों के शरीर पर होने वाले प्रभाव के विषय में वर्तमान में प्राप्त ज्ञान उपलब्ध हुआ है । समान निरीक्षक भी इतना तो जानते ही हैं कि क्रोध, भय, शोक, काम आदि के आवेशों का शरीर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। आवेगों का प्रभाव शरीर के बाह्य अवयव तथा भीतरी अवयवों पर प्रत्यक्ष पड़ता है, हृदय पर उसका विशेष प्रभाव पड़ता है । सम्भवतः इसी कारण से आयुर्वेद में चेतना का स्थान हृदय को माना है । हृदय के अतिरिक्त आवेगों का प्रभाव आंख, स्वर,यंत्र, श्वासोच्छ्वास, हृदय और रक्तवाहिनी, सम्पूर्ण महास्रोत, मूत्र: संस्थान, स्वेदग्रन्थियों, त्वचारोम, प्रजननसंस्थान एवं मांसपेशियों पर विविध रूप में पड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है ।

क्रोध की चर्चा करते हुए आयुर्वेद का कहना है कि क्रोध प्राय: राक्षस, दानव और उद्धत मनुष्यों में देखा जाता है । स्त्रियों का अपमान देश, जाति, सम्बन्धी लोग, विद्या और कर्म की निन्दा, अपमान, असत्यभाषण, उपघात, अपशब्द, द्रोह, मात्सर्य, आदि कारणों से मनुष्य में तीव्र क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोध के कारण व्यक्ति की आंखों में लालिमा हो जाती है, शरीर से पसीना छूटने लगता है, आंखें चौड़ी होने के कारण उसकी त्योरियां ऊपर को खिंच कर मिल जाती है, वह दांतें और ओंठ पीसता है। क्रोध से विवश हुए मनुष्य में इसीप्रकार के कार्य दृष्टिगोचर होते हैं । यह उसकी चेष्टाओं की बात हुई । व्यक्ति के मन में क्रोध के साथ और भी कुछ क्षणिक भाव उत्पन्न होते हैं, उदाहरणत: हृदय में क्रोध की आग जलती रहने के कारण नींद नहीं आती है, उसका चित्त अत्यधिक चपल और अस्थिर हो जाता है । इतने भयंकर क्रोध के बाद भी जब वह अपने उद्देश्य को सिद्ध नहीं कर सकता तब वह क्रोध से कांपता है एवं उसके रोएं खड़े हो जाते हैं, इत्यादि ।

इसीप्रकार शोक के प्रभाव से मनुष्य रोता है तथा अपने आपको या तकदीर को धिक्कारता है । उसका मुख सूख जाता है । वह पाण्डु वर्ण हो जाता है । उसका शरीर शिथिल हो जाता है तथा वह बार बार नि:श्वास छोड़ता है । उसकी स्मृति नष्ट हो जाती है किन्तु उसके मन में शोक के साथ अन्य भी भाव उत्पन्न होते हैं । उदाहरणत:, शोकाकुल व्यक्ति का चित्त निर्वेद, ग्लानि और चिन्ता से युक्त हो जाता है । इन मानसिक व्यापार को चेष्टा प्रधान कहा गया है क्योंकि इनमें मन किसी न किसी कार्य में फंसा रहता है ।

मानस शास्त्र जैसे गहन विषय के संबंध में हमारे यहां प्राचीन काल से ही विचार होते चले आ रहे हैं । इस बात को आज के वैज्ञानिक भी धीरे धीरे स्वीकार करने लगे हैं । हमारा प्राचीन आस्तिक दर्शन आत्मवादी है , वे मन को स्थिर आत्मा कार्यसाधन रूप मानते हैं, दूसरी ओर पाश्चात्य विचारक पुरुष के चैतन्य अंश को मन के नाम से भेद करते हैं । प्राचीन भारतीय दर्शन में इसी कारण आत्मा की अपेक्षा मन का स्थान गौढ़ है और मानस शास्त्र की चर्चा का आत्मज्ञान की चर्चा में अन्तर्भाव हो जाता है । लेकिन पाश्चात्य दार्शनिक इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते । वहां मानसशास्त्र आत्मवादी तत्त्वज्ञान से अलग हो कर अपने स्वतन्त्र रास्ते पर जा रहा है और कुछ एक को छोड़ कर अधिकांश मानसशास्त्री प्राचीन बौद्धों की तरह स्थिर आत्मा को नहीं मानते । उनके मतानुसार, मन का अर्थ मनोवृत्तियों का समूह है । इस समूह की सहायता से ही शारीरिक एवं मानसिक व्यापारों की व्याख्या करते हैं । जिस प्रकार भारत में विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदाय हैं उसी प्रकार पाश्चात्य जगत् में भी मन एवं उसके व्यापारों को समझाने वाले भिन्न भिन्न मानसशास्त्र के दर्शन हैं ।

सम्पूर्ण आयुर्वेदिक वाङ्मय में यह स्पष्टत: उल्लिखित है कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का मानवीय मन के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है । आयुर्वेदिक विचारकों का उद्देश्य यह रहा कि मन और शरीर को स्वस्थ रखते हुए मनुष्य को सांसारिक दु:खों से भी छुटकारा मिल सके इसलिए वे इस तथ्य पर पहुंचे कि बाह्य वातावरण का प्रभाव मानवीय मन पर पड़ता है और इससे शरीर भी प्रभावित हो जाता है । भारतीय चिकित्सा के संस्थापक चरक ने मन और शरीर को स्वस्थ रखने पर विशेष जोर दिया है, ताकि मनुष्य पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कर सके ।

चरक संहिता में यह वर्णित है कि मन और शरीर दोनों एक ही तत्त्व से उत्पन्न हैं ।[१] इन दोनों में अन्तर इतना ही है कि मन सूक्ष्म मूर्तों के अन्तर्गत आता

१- चरक संहिता, १।६६

है जबकि शरीर स्थूल भूतों के अन्तर्गत आता है। भौतिकवादी और व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक भी मन को जड़ से उत्पन्न मानते हैं लेकिन वे आयुर्वेद की तरह किसी नित्य आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते । आयुर्वेद में मन और शरीर दोनों को आत्मा के अधीनस्थ माना गया है । मन और शरीर दोनों जड़ हैं जब तक आत्मा का अपना प्रकाश उनके ऊपर नहीं पड़ता तब तक वे कार्य करने में अक्षम हैं। जब आत्मा का प्रकाश उनके ऊपर पड़ता है तब वे क्रियाशील हो जाते हैं ।[१]

इसप्रकार हम देखते हैं कि आयुर्वेद में मन और शरीर के बीच कोई द्वैत नहीं है । यत: दोनों एक ही तत्त्व से उत्पन्न हैं । मन और शरीर स्वतन्त्र तत्त्व नहीं हैं वे एक दूसरे से सम्बन्धित हैं ।[२] मन शरीर के ऊपर आश्रित है और शरीर मन के ऊपर ।

आयुर्वेद के अनुसार कोई भी रोग बिना शरीर और मन के संयोग से उत्पन्न नहीं हो सकता । प्राचीन आयुर्वेद के साहित्य में रोग को ती भागों में बांटा गया है :-

(१) असात्म्य इन्द्रियार्थ संयोग,
(२) प्रज्ञापराध, तथा
(३) परिणाम ।[३]

इनमें प्रज्ञापराध का सम्बन्ध सीधे मन और शरीर से है । चरक का कथन है कि जिस व्यक्ति की बुद्धि, धृति, स्मृति नष्ट हो जाती है वह अनिश्चित कार्यों की ओर तत्पर होता है , इसे प्रज्ञापराध कहते हैं, जो रोगों को उत्पन्न करता ।[४] इस प्रकार मानसिक उलझन रोगों की ओर अग्रसरित होती है । दासगुप्ता[५] के अनुसार, प्रज्ञापराध को अनुचित कार्य के रूप में परिभाषित किया है जिसके द्वारा

१- चरक शारीर, १।७५-७६ ।

२- वही, ४।३६

३- चरकसूत्र, ११।४३

४- चरकशारीर, १।१०२

५- एस०एन०दासगुप्ता, ए हिस्ट्री आव् इण्डियन फिलासफी, भाग २, पृ०४१६ ।

धी, धृति, स्मृति, विभ्रंश हो जाता है और यह सम्पूर्ण दोषों को प्रकुपित कर देता है । इसीप्रकार असात्म्य इन्द्रियार्थ संयोग और परिणाम भी विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं तथा मन और शरीर को प्रभावित करते हैं । मानसिक संवेग यथा काम, भय, शोक, ईर्ष्या, क्रोध, चिन्ता, मनोग्लानि, नैराश्य, सत्वहानि और मानसिक श्रम विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मानसिक और शारीरिक संवेग को चरक ने परिभाषित करते हुए कहा है कि अधर्म भी रोगों का मुख्य कारण है ।[1] मानसिक संवेग जैसे हर्ष और विषाद[2] की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शोक भी शरीर को क्षीण बनाता है । प्रज्ञापराध को परिभाषित करते हुए चरक ने पुनः कहा है कि यह विषम विज्ञान है जो अयथार्थ ज्ञान प्रदान करता है । इससे नैतिक अवनति, अस्वास्थ्यवर्धक आदतें और आकस्मिक दुर्घटनाएं इसके अन्तर्गत घटती हैं ।[2]

चरक ने प्रज्ञापराध के अन्तर्गत धर्म और अधर्म दोनों को सन्निहित किया है । सम्पूर्ण दुःखों का कारण अनित्य को नित्य समझना एवं आत्मनियन्त्रण की इच्छा है । इसप्रकार दासगुप्ता के अनुसार चरक ने प्रज्ञापराध के अन्तर्गत अन्य भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के द्वारा वर्णित अज्ञान को भी इसमें समाहित कर लिया है । यद्यपि चरक का विचार है कि दर्शन में वर्णित अज्ञान अधर्म को उत्पन्न करता है फिर भी वह प्रज्ञापराध के विस्तृत रूप में वर्णन करते हैं । जिसके अन्तर्गत अनेक प्रकार के अयथार्थ निर्णय समाहित हो जाते हैं ।[4] चरक मनोविज्ञान और नैतिकता से भौतिक जीवन को पूर्णतः पृथक् नहीं करते । शारीरिक रोगों को केवल औषधि के द्वारा ही ठीक नहीं किया जा सकता । मानसिक रोगों का उपचार वस्तुओं का यथार्थ एवं उचित ज्ञान तथा आत्मनियन्त्रण के द्वारा किया जाता है । इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय विचारकों ने मन और शरीर के बीच घनिष्ठतम संबंध माना है । महाभारत में भी यह वर्णित है कि

१- चरक विमान, ३।२०

२- चरक सूत्र, २५।४०

३- एस०एन० दासगुप्ता, ए हिस्ट्री आव् इण्डियन फिलासफी, भाग २, पृ०४१६ ।

४- वही, पृ०४१६ ।

शरीर से बाह्य मानसिक रोग के प्रति होती है और मन से बाह्य शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं।[१] आयुर्वेद का कथन है कि शरीर में तीन प्रकार के तत्त्व हैं, उसे वह वात, पित्त, कफ नाम से अभिहित करता है। उनकी साम्यावस्था शरीर को स्वस्थ रखती है और विषमावस्था इनमें नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है।[२] इसीप्रकार मन का भी निर्माण सत्त्व, रज, तम से हुआ है। जब ये साम्यावस्था में रहते हैं तब मन स्वस्थ रहता है और जब ये विषमावस्था को प्राप्त होते हैं तो मन में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।[३] रज और तम को मानसिक दोष माना गया है। ये मन में नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, जैसे काम, क्रोध, लोभ, मद और हर्ष, वात, पित्त और कफ जब विषमावस्था को प्राप्त होते हैं तो ज्वर, अतिसार, शोथ क्षय, शोथ कुष्ट आदि रोग उत्पन्न होते हैं। ये शारीरिक और मानसिक रोग असात्म्य संयोग, प्रज्ञापराध एवं परिणाम के अन्तर्गत आते हैं।[४] मानसिक रोग जैसे रागादि और शारीरिक रोग जैसे ज्वर आदि एक दूसरे का अनुकरण करते हैं। चक्रपाणि विमान स्थल ६।८ पर आलोचना करते हुए चार प्रकार की संभावनाएं व्यक्त किये हैं -

१- शारीरिक रोग दूसरे शारीरिक रोग को भी प्रभावित करते हैं।
२- मानसिक रोग दूसरे मानसिक रोग को प्रभावित करते हैं।
३- मानसिक रोग शारीरिक रोग को प्रभावित करते हैं।
४- शारीरिक रोग मानसिक रोग को प्रभावित करते हैं।[५]

चरक की स्पष्टत: घोषणा है कि मानसिक संवेग शरीर पर प्रभाव डालते हैं। काम, भय और शोक चित्त को प्रभावित करते हैं और इसप्रकार शरीर में रोग को उत्पन्न करते हैं। इसीप्रकार कुछ संवेग भी रोगों को प्रभावित करते हैं जो

१- महाभारत, शान्तिपर्व, १६।६
२- अष्टांग संग्रह सूत्र, १।४३
३- अष्टांग हृदय सूत्र, १।४४
४- चरक विमान, ६।६
५- चरक विमान, ६।८, चक्रपाणि आलोचना।

निम्नलिखित हैं :-

१- विषादोरोगवर्द्धनानां,
२- दौर्मनस्यं अवृष्यानां,
३- शोकशोषणानां,
४- निवृत्तिपुष्टिकारणं ।[1]

मूर्च्छा, प्रलाप, भ्रम, अरति, ग्लानि, मोह, मद, तन्द्रा, क्षोभ, बुद्धिभ्रम, ईर्ष्या, मानसिक क्षोभ और मानसिक शैथिल्य इत्यादि मानसिक रोग के अन्तर्गत आते हैं । कामज, भयज और शोकज रोग कई कारणों से उत्पन्न होते हैं ।

सारिणी - १

मानसिक कारण	शारीरिक परिणाम
काम	मूर्च्छा
भय	प्रलाप
शोक	भ्रम
ईर्ष्या	वैचित्य
क्रोध	अरति
चिन्ता	ग्लानि
मनोग्लानि	मोह
नैराश्य	मद
सत्त्वहानि	तन्द्रा
मानसिक श्रम	उद्वेग
	क्षोभ
	बुद्धिभ्रम

१- चरक सूत्र. २५।४०

सारिणी - २

मानसिक कारण	शारीरिक परिणाम
१- भय	अतिसार
	अजीर्ण
	अरोचक
	तृष्णा
	गद उद्वेग
२- शोक	अतिसार
	अपस्मार
	अरोचक
	गदोद्वेग
३- इर्ष्या	अजीर्ण
४- क्रोध	अजीर्ण शुलादि
५- मनोग्लानि	अजीर्ण
६- चिन्ता	अजीर्ण अपस्मार
७- मानसिक श्रम	अजीर्ण अपस्मार
८- नैराश्य	गदोद्वेग
९- सत्वहानि	गदोद्वेग
१०- काम	अतिसार

सारिणी - १

मानसिक कारण	शारीरिक परिणाम
१- वैचित्त्य	ज्वर
२- अरति	ज्वर
३- ग्लानि	ज्वर
४- मूर्च्छा	क्षीण श्वास
	छर्दि
	तृष्णा
	वातरक्त
	शूल
	पैत्तिक
	हृद्रोग
	मूत्रघात
	उदररोग
	सद्योव्रण
	मसूरिका
	असृग्दर
	शिरोरोग
५- मनोविभ्रम	उन्माद
६- स्मृतिभ्रम	अपस्मार
७- प्रलाप	तृष्णा
८- मोह	शूलादि
९- भ्रम	उदर रोग
	शोथ
	सद्योव्रण
	विसर्प

मानसिक कारण	शारीरिक परिणाम
१०- मद	आवृगदर
	शोथ
११- तन्द्रा	आवृगदर
१२- बुद्धि विभ्रम	छर्दि

साधक पित्त का निवास स्थल हृदय है। सुश्रुत, वाग्भट्ट, चक्रपाणि और डल्हण का कथन है कि मानसिक संवेग साधक पित्त के द्वारा वश में किया जाता है। इनके अनुसार साधक पित्त मानसिक और भावुक संवेगों के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है। संवेग जैसे भय, क्रोध, हर्ष, मोह, शौर्य, प्रसाद, अग्नि द्वारा उत्पन्न होते हैं।[1] सुश्रुत का भी कहना है कि साधक पित्त का निवास स्थल हृदय है।[2] इसे साधक अग्नि भी कहते हैं।

मानसिक संवेगों का सम्बन्ध हृदय से है। हृदय बुद्धि का निवास स्थल है।[3] मेल का भी यही विचार है और उनका कहना है कि बुद्धि का कारण चित्त है।[4] वाग्भट्ट का भी कथन है कि साधक पित्त हृदय में निवास करती है जिसका कार्य बुद्धि, मेधा और अभिमान को उचित रूप में संचालित करना है।[5]

१- चरक सूत्र, १२।११

२- सुश्रुत सूत्र, २१।६

३- चरक सिद्धि, ६।४

४- मेल, ६।४८

५- अष्टांग हृदय सूत्र, १२।१३

चरक संहिता में हृदय और मानसिक रोगों का घनिष्टतम संबंध बताया गया है।[१] मानसिक रोग जैसे उन्माद, अपस्मार, प्रलाप आदि का हृदय से घनिष्टतम संबंध है।

चरक संहिता का कहना है कि तन्द्रा और मूर्च्छा का हृदय के साथ घनिष्टतम संबंध है।[२,३] मद्य भी मानसिक रोगों को उत्पन्न करता है और हृदय को अत्यधिक रूप में प्रभावित करता है।[४]

सुश्रुत संहिता में यह उल्लेख है कि मानसिक रोगों का शिर से गहरा संबंध है।[५] जब शिर में चोट लगती है तो मानसिक रोग उत्पन्न होता है। मेल के अनुसार, उन्माद रोग का सम्बन्ध शिर एवं हृदय दोनों से है। उन्माद रोग का वर्णन करते हुए उनका कथन है कि शिर के दोष मन को प्रभावित करते हैं और उससे हृदय प्रभावित होता है तथा बुद्धि का नाश होता है, उसके बाद उन्माद रोग की उत्पत्ति होती है।[६,७,८,९] मद्य का वर्णन करते हुए सुश्रुत ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि इससे शिर और हृदय प्रभावित होते हैं।

शारीरिक ज्वर मन में उष्णता पैदा करता है। यह मानसिक प्रसन्नता और आनन्द का नाश करता है।[१०] शारीरिक दोष वात, पित्त और कफ तथा

१- चरक सिद्धि, ९।६

२- वही, ९।२१-२२

३- वही, ९।२३

४- चरक चिकित्सा, २४।३६

५- सुश्रुत शरीर, ६।२७

६- मेल उन्माद चिकित्सा, १० ।

७- चरक चिकित्सा, ९।४-७

८- सुश्रुत उत्तर, ६२।३

९- अष्टांग हृदय उत्तर स्थान, ६।४-६

१०- चरक निदान, १।३५

मानसिक दोष रज और तम इन दोनों को रोगों का कारण माना गया है। रोगों का प्रकोप उन व्यक्तियों पर नहीं होता जो शारीरिक और मानसिक दोषों से मुक्त हैं।[1] ज्वर का स्थान मन सहित सम्पूर्ण शरीर है।[2] शरीर एवं मन दोनों रोगों का निवास स्थान हैं। शारीरिक रोग सर्वप्रथम स्वयं को प्रभावित करता है तब मन को, इसी प्रकार मानसिक रोग सर्वप्रथम मन को प्रभावित करता है बाद में शरीर को। मूर्च्छा, चिन्ता, काम आदि मानसिक रोगों के चिह्न हैं। जब इन्द्रियां अपने विषयों को ग्रहण नहीं करतीं तो इसका तात्पर्य है कि वे रोगों से आक्रान्त हैं।[3] ज्वर स्थूल शरीर में प्रविष्ट कर मनुष्य के सम्पूर्ण स्थूल एवं सूक्ष्म अंगों को प्रभावित कर देता है। मानसिक दोष जैसे क्रोध शारीरिक तथ्य पित्त को प्रभावित करता है इसके बाद पित्त ज्वर की उत्पत्ति होती है। सुश्रुत का कहना है कि क्रोध, दुःख, भय, प्रकुपित पित्त के कारण हैं, और क्रोध प्रकुपित रक्त का कारण है।[4] आयुर्वेद के अनुसार शारीरिक रोग में दो धातु मन में निराशा उत्पन्न करता है।[5] शारीरिक वात पैत्तिक ज्वर मूर्च्छा मिरगी आदि को पैदा करता है।[6] कफ और पित्त के संयोग से उत्पन्न रोग मन में मोह को पैदा करता है।[7] पित्तकफोल्वणहीनवात रोग पित्तोल्वणं कफवातहीन एवं कफोल्वणवातपित्तहीन सन्निपात ज्वर मन में मोह, मूर्च्छा और तंद्रा उत्पन्न करते हैं।[8,9,10,11]

१- चरक चिकित्सा, ३।१२

२- वही, ३।३०

३- वही, ३।३६-३७

४- सुश्रुत सूत्र, २१।२०-२४

५- चरक चिकित्सा, ३।६७

६- वही, ३।८५

७- वही, ३।८५

८- वही, ३।९३

९- वही, ३।९४

१०- वही, ३।९५

११- वही, ३।९६

अभिसंग ज्वर मनुष्यों में काम, शोक, भय एवं क्रोध को उत्पन्न करता है। शारंगधर का कथन है कि भय, शोक और क्रोध क्रमश: भयज्वर, शोकज्वर एवं क्रोधज्वर उत्पन्न करते हैं।[१] कामज्वर दीर्घश्वास और सात्म्य चिन्ता को उत्पन्न करता है। शोकज्वर आंखों में आंसू, भयजनज्वर कम्पन एवं क्रोधज्वर शरीर में अधिक उत्तेजना पैदा करता है। विषज्वर मूर्च्छा, मोह और विषाद को उत्पन्न करता है।[२,३,४,५]

सुश्रुत के अनुसार क्रोधज्वर का लक्षण धड़कन तथा शोकज्वर का प्रलाप है। प्रतिदिन के अनुभव में हम यह देखते हैं कि मानसिक सन्ताप से मानव शरीर में नाना प्रकार के उपद्रव होते रहते हैं, जैसे अत्यधिक शोक होने पर मनुष्य रोने लगता है। भय, चिन्ता के कारण शरीर में, हृदय में धड़कन पैदा हो जाती है। क्रोध में आंखें लाल हो जाती हैं, शरीर कांपने लगता है, इत्यादि।

शार्ङ्गधर संहिता में यह वर्णित है कि काम एवं क्रोध की अवस्था में नाड़ी की गति तेज हो जाती है एवं चिन्ता एवं भय की अवस्था में क्षीण।[६]

मन और शरीर की अस्वास्थ्यावस्था नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करती है जो एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। शोक और मन से शरीर क्षीण हो जाता है। वात प्रकुपित हो जाता है एवं शरीर में कष्ट देना शुरू कर देता है।[७,८]

१- शार्ङ्गधर संहिता, १।७।६

२- चरक चिकित्सा, ३।१२२

३- वही, ३।१२३

४- वही, ३।१२४

५- वही, ३।१२६

६- शार्ङ्गधरसंहिता, १।३-६

७- चरक सूत्र, १७।१७

८- वही, १७।१८

इसीप्रकार मानसिक दोष भी वायु के प्रकुपित हो जाने पर रक्त को दूषित कर देता है।[१,२,३]

वायु, उत्साह और हर्ष का कारण है। जब वायु शरीर को प्रकुपित कर देती है तो मन उदासीन हो जाता है।[४]

मरीची के अनुसार प्रकुपित पित्त भय, क्रोध, आवेग, मोह, प्रसाद, भ्रम आदि को उत्पन्न करती है।[५] सामान्य कफ, उत्साह और आलस्य पैदा करती है और प्रकुपित कफ मोह पैदा करती है।[६] मानसिक दोष हृदय में प्रकुपित पित्त को कारण है।[७] क्रोध की अधिकता हृदय रोग का कारण है।[८] चिन्ता, भय, शोक इत्यादि वजह दाय के कारण हैं।[९,१०,११] शोक भी हृदयरोग को उत्पन्न करता है।

चरक के अनुसार सामान्य पित्त का कार्य मन में प्रसन्नता उत्पन्न करना है।[१२] सामान्य वात का कार्य उत्साह है।[१३] चिन्ता के अभाव में शरीर में मांस और कफ बढ़ जाता है। जब शरीर में वायु प्रकुपित हो जाती है तो यह प्रमेह को उत्पन्न करती है।[१४,१५] अत्यधिक चिन्ता और क्रोध रक्त को नाश करता है। नाशहीन

१- चरक सूत्र, १७।६

२- वहीं, १७।१०

३- वहीं, १७।११

४- वही, १२।८

५- वही, १२।११

६- वही, १२।१२

७- वही, १७।३२

८- वही, १७।३४

९- वही, १७।७६

१०- वही, १७।७७

११- वही, १७।३०

१२- वही, १८।५०

१३- वही, १८।४६

१४- वही, १७।७९ । १५- वही, १७।८०

एक चिन्ता और क्रोध का निवास स्थल है ।[१,२,३]

भय और शोक उदरवायु को उत्पन्न करते हैं साथ ही भूख का नाश एवं अतिसार रोग उत्पन्न करते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि शारीरिक एवं मानसिक रोगों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है । नीचे हम कुछ ऐसे रोगों को उल्लिखित कर रहे हैं जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । इन रोगों के कारण तथा कार्य दोनों को टेबुलर फार्म में नीचे उल्लिखित कर रहे हैं -

सारिणी - १

मानसिक कारण	शारीरिक परिणाम
मानसिक कष्ट	उदर रोग[४]
चिन्ता विहीन	कफज अर्श[५]
काम, क्रोध, भय, शोक	पाण्डुरोग[६]
क्रोध	पित्तजन्यकास[७]
चिन्ता	दायक्कास[८]
चिन्ताविहीन	कफज अतिसार[९]
भय शोक और चिन्ता	सन्यवातज अतिसार[१०]
क्रोध और ईर्ष्या	पित्तज अतिसार[११]
भय और शोक	आगन्तुक अतिसार[१२]
भय और शोक	वातजन्य छर्दि[१३]

१- चरक सूत्र, २४।१२ । २- वही, २४।१३

३- वही, २४।१४ । ४- चरक चिकित्सा, १३।१४

५- वही, १४।१६ । ६- वही, १६।६

७- वही, १८।१४ । ८- वही, १८।२४

९- वही, १९।७ । १०- वही, १९।८

११- वही, १९।६ । १२- वही, १९।११

१३- वही, २०।७ ।

सारिणी - १

मानसिक कारण	शारीरिक परिणाम
मानसिक अरुचि	दुष्ट अर्थ[1]
भय, शोक और क्रोध	तृष्णा[2]
शोक और क्रोध	व्रण[3]
क्रोध	प्रतिश्याय[4]
शोक, भय और क्रोध	अरोचक[5]
भय	उरुस्तम्भ[6]
शोक, चिन्ता, क्रोध और भय	वात व्याधि[7]
क्रोध	वातरक्त[8]

१- चरक चिकित्सा, २०।१८

२- वही, २२।४

३- वही, २५।३४

४- वही, २६।१०४

५- वही, २६।१२४

६- वही, २७।६

७- वही, २८।१६-१७

८- वही, २६।७

पुन: कुछ ऐसे उदाहरण दिए जा रहे हैं जिनसे निम्नलिखित रोगों की उत्पत्ति होती है ।

सारिणी - १

मानसिक कारण	शारीरिक परिणाम
१- शोक	१- वातज्वर
	२- राज्यक्षमा
	३- पाण्डु
	४- सन्निपातज अतिसार
	५- आगंतुक अतिसार
	६- तृष्णा
	७- व्रण
	८- वात छर्दि
	९- हृद्रोग
	१०- अरोचक
	११- अभिसंगज्वर
	१२- ओजस् क्षय
	१३- वातजन्य गुल्म
२- क्रोधाधिक्य	१- वातप्रमेह
३- भय	१- कुष्ट
	२- राज्यक्षमा
	३- सन्निपातज अतिसार
	४- पाण्डु
	५- आगंतुक अतिसार
	६- वातजन्य छर्दि
	७- तृष्णा

मानसिक कारण	शारीरिक परिणाम
	८- अरोचक
	६- उरुस्तम्भ
	१०- वातव्याधि
	११- वजहदाय
४- क्रोध	१- रक्तदुष्ट
	२- पित्तज्वर
	३- राजक्षामा
	४- अभिसंग ज्वर
	५- पित्तज गुल्म
	६- पाण्डु
	७- पित्तजन्यकास
	८- तृष्णा
	६- व्रण
	१०- प्रतिस्याय
	११- अरोचक
५- चिन्ता	१- क्षायजराजक्षामा
	२- शुक्रदाय
	३- पाण्डु
	४- आगन्तुक अतिसार
	५- वातव्याधि
६- इर्ष्या	१- राजक्षामा
७- उत्कण्ठा	१- वमना
८- लोभ	१- अरोचक
६- हर्ष	१- कफज्वर
१०- काम	१- अभिसंग ज्वर
	२- पाण्डु

शारीरिक कारण	मानसिक परिणाम
[illegible]	मानसिक कमजोरी
पिणोदर	मूर्च्छा[२]
प्लिहोदर	मूर्च्छा[३]
वातप्रधान्यअर्श	शोक[४]
पाण्डु	क्रोध[५]
गम्भीर हिक्का	विकृत मस्तिष्क[६]
अजा हिक्का	क्रोध[७]
पातजन्यकाश	मोह[८]
पित्तजन्यकास	मोह[९]
पित्तजअतिसार	मूर्च्छा[१०]
कफज अतिसार	उत्क्लेश[११]
सन्निपातज छर्दि	मोह[१२]

१- चरक चिकित्सा, ११।१०

२- वही, १३।२८

३- वही, १३।३८

४- वही, १४।१३

५- वही, १६।१५

६- वही, १७।३०

७- वही, १७।३६

८- वही, १८।१२

९- वही, १८।१५

१०- वही, १९।६

११- वही, १९।७

१२- वही, २०।१५

शारीरिक कारण	मानसिक परिणाम
पैत्तिक विसर्प	मोह[1]
वातपित्तजन्य विसर्प	मानसिक चिन्ता[2]
कफ पित्तजन्य विसर्प	मोह, मूर्च्छा[3]
तृष्णा	मानसिक विकृति[4]
विषाधिक्य	मोह[5]
विषप्रधानवातप्रकृति	मोह, मूर्च्छा और तन्द्रा[6]
मद्यपान	मोह, भय, शोक, क्रोध[7]
पित्तव्रण	मोह[8]
उदावर्त	मानसिक रोग[9]
हृदयरोग	मोह[10]
वातजहृदयरोग	मोह, भय[11]
कुपित वायु	मोह[12]
वातरक्त	मोह[13]

१- चरक चिकित्सा, २१।३२

२- वही, २१।३६

३- वही, २१।३८

४- वही, २२।६

५- वही, २३।१८

६- वही, २३।२८

७- वही, २४।५६

८- वही, २५।१३

९- वही, २६।६

१०- वही, २६।७८

११- वही, २६।७९

१२- वही, २८।२३

१३- वही, २९।३१

आयुर्वेद का कथन है कि स्थूलता का कारण चिन्ता, शोक आदि से रहित होना है । शोकाकुल व्यक्ति दुबला हो जाता है । भय, शोक और चिन्ता निर्बल शरीर का निर्माण करता है ।[१] जो अपनी स्थूलता को समाप्त करना चाहते हैं उन्हें मानसिक परिश्रम करना चाहिए । इसीप्रकार जो निर्बलता से मुक्ति पाना चाहते हैं उन्हें उत्साह, मानसिक विश्राम एवं मानसिक शान्ति की वृद्धि करनी चाहिए ।[२] यह उदाहरण मन और शरीर के आपसी सम्बन्ध को पुष्ट करते हैं ।

चरक के अनुसार उचित मात्रा में किया गया भोजन, शरीर इन्द्रिय और मन को शुद्ध रखता है । कहने का तात्पर्य है कि भोजन का प्रभाव मन के ऊपर पड़ता है । उपनिषद् और गीता इसकी पुष्टि करते हैं ।

स्वप्नविमर्श-चरक के अनुसार निद्रा का कारण मन और इन्द्रिय का श्रम है ।[३] सुश्रुत का कथन है कि जब हृदय तम से आवृत हो जाता है तब निद्रा का आगमन होता है ।[४]

आधुनिक विचारकों का भी मत प्राचीन आयुर्वेदिक ऋषियों के तुल्य ही है । अत: इनके विचारों को भी समझ लेना श्रेयस्कर है । इन विचारकों ने वैज्ञानिक ढंग से गहनतम रूप में अपने विचार व्यक्त किए हैं । इन लोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि संवेगात्मक भाव शरीर में नानाप्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं क्योंकि अधिकांशत: मनोवैज्ञानिक संवेग शरीर में नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति करते हैं । इस विषय में मतभेद नाम की कोई वस्तु नहीं है कि मानसिक रोग शरीर को प्रभावित करता है । यह सिद्ध हो चुका है कि शारीरिक और मानसिक रोग एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । प्राय: देखा भी जाता है कि शारीरिक परिवर्तन सामाजिक वातावरण के अनुरूप ही होता है । यही हो सकता है कि उस वातावरण का प्रभाव पहले शरीर पर पड़े या मन पर ।

१- सुश्रुत सूत्र, १५।३३

२- चरक सूत्र, २१।२८-२९

३- वही, २१।३५

४- सुश्रुत शरीर, ४।३६

आधुनिक वातावरण में जीवन अत्यन्त कठिन बन गया है क्योंकि मनुष्य दिन प्रतिदिन चिन्ता और संवेग से ग्रसित होता जा रहा है। निरन्तर मस्तिष्क का संवेग शरीर के अवयवों में नानाप्रकार के विकार उत्पन्न कर दे रहा है। अलेक्जेण्डर का कहना है कि `लम्बे बरसों तक की चिन्ता भयानक शारीरिक रोग को उत्पन्न करती है।` `सेली नामका विचारक भी ऐसा ही विचार प्रस्तुत करता है।` उसका भी कहना है कि सांवेगिक विकार अल्सर, हृदयरोग, थैरायड आदि नामक रोगों को उत्पन्न करता है। कुछ ऐसे रोग हैं जो अचानक मनोवैज्ञानिक आवेग के कारण उत्पन्न हो जाते हैं और शरीर को मृत्यु की गोद में बैठा देते हैं।

आधुनिक सभ्यता के युग में मनोदैहिक संवेगों ने स्वास्थ्य संगठनों के सामने एक महान समस्या उत्पन्न कर दी है। आधुनिक निरीक्षण से यह पता चलता है कि हर दो रोगियों में से एक रोगी मानसिक संवेग से पीड़ित है। डम्बार का कहना है कि इस प्रकार के रोगों का संबंध मानवीय व्यक्तित्व से बहुत अधिक है। ग्रेस उल्फ और वैटेल ने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि अधिकांश मानसिक रोग शारीरिक रोगों को उत्पन्न करते हैं। ये उदाहरण इस बात को साबित करते हैं कि वर्तमान सभ्यता का युग शारीरिक रोगों की अपेक्षा मानसिक रोगों से ग्रसित है क्योंकि जीवन जटिल होता जा रहा है। कुछ विचारकों का तो ऐसा मत है कि सम्पूर्ण शारीरिक रोग मानसिक संवेगों से उत्पन्न होते हैं। यदि मन को स्वस्थ रखा जाय तो शारीरिक रोग उत्पन्न नहीं हो सकते। मानसिक संवेग के कारण ही आजकल यह देखा जा रहा है कि हृदय रोग बढ़ता जा रहा है। इसके कहने का मतलब यह नहीं है कि आयुर्वेद इससे अनभिज्ञ है। आयुर्वेद में आज से हजारों वर्ष पूर्व इस तथ्य का पता लगा लिया था कि मानसिक रोग शारीरिक रोग को और शारीरिक रोग मानसिक रोगों को प्रभावित करते हैं। काट्ज ने यह भी पता लगाया है कि संवेगात्मक परिस्थिति आनुवंशिक है इसी आधार पर वे रोगों का इलाज भी करते थे। ब्रैडी का कहना है कि जो लगातार संवेग से पीड़ित रहता है उसे गैस्ट्रिक अल्सर पकड़ लेता है। यह सामान्यत: स्वीकार किया गया है कि मनोदैहिक रोग शारीरिक इलाज से ठीक नहीं हो सकता। उसके लिए मानसिक इलाज ही आवश्यक है। औद्योगिककरण के साथ ही मनुष्य नैराश्य,

संवेग, चिन्ता, क्रोध आदि से ग्रसित होता जा रहा है। प्राय: ऐसा भी देखा जाता है कि वातावरण का प्रभाव भी मानवीय व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। जैसा सामाजिक संरचना होगी वैसा ही मानव का निर्माण होगा। सामाजिक और व्यवहारवादी वैज्ञानिकों ने सभ्यता और रोग के बीच संबंध जोड़ने की कोशिश की है। हर्नी ने यह वर्णन किया है कि मनोवैज्ञानिक उलझनों के कई कारण हैं जिसमें मनुष्य की सभ्यता भी है। मैयर सेलिमैन और मीड ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य के व्यक्तित्व की उचित संरचना समाज में व्याप्त सभ्यता के ऊपर आधारित है। कहने का तात्पर्य यह है कि मन के ऊपर समाज के रहन-सहन, व्यवहार, सभ्यता आदि का प्रभाव भी पड़ता है। इस तरह की खोज आधुनिक समाजशास्त्रियों ने किया है।

मानस प्रकृति एवं मानस रोग

मानसिक रोगों के निदान हेतु व्यक्ति के व्यक्तित्व को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है -

१- बहिर्मुख व्यक्तित्व, तथा
२- अन्तर्मुख व्यक्तित्व।

बहिर्मुख व्यक्तित्व - इसके अन्तर्गत व्यक्ति में हिस्टीरिया या मनोरोगमय प्रकार के व्यक्तित्व आते हैं।

अन्तर्मुख व्यक्तित्व - इसके अन्तर्गत व्यक्ति में चिन्ता, ग्रस्तता अथवा मन:श्रान्ति प्रकार का व्यक्तित्व आता है।

मानस प्रकृति के वर्गीकरण का आधार वस्तुत: मन का गुण एवं व्यवहार रहा है। व्यवहार के अतिरिक्त मन के गुण एवं विचार को भी वर्गीकरण का आधार माना गया है। आयुर्वेद में चरक ने मानस प्रकृति के वर्गीकरण के आधार के रूप में मन के लक्षण गुण, दोष एवं व्यवहार इन सब का सम्मिलित रूप से विचार किया है।

प्रकृति के विषय में आयुर्वेद ने केवल मानस प्रकृति ही नहीं अपितु देह प्रकृति का भी वर्णन किया है। वस्तुत: दोनों प्रकृतियों का वर्णन करते हुए आयुर्वेदज्ञों ने शारीरिक एवं मानसिक गुणों को सम्मिलित किया है। उदाहरण के लिए प्रकृति के लक्षणों के वर्णन में केवल शारीरिक लक्षणों का वर्णन नहीं मिलता है वरन् मानसिक लक्षणों के विषय में भी उल्लेख मिलता है।

वस्तुत: मन और शरीर इन दोनों का सह संबंध स्थापित करने का गौरव सर्वप्रथम आयुर्वेद को ही देना चाहिए। आयुर्वेद में मनुष्य की चार प्रकार की प्रकृति बताई गई है —

१- गर्भ शरीर प्रकृति
२- जात शरीर प्रकृति
३- देह प्रकृति
४- मानस प्रकृति ।

१- गर्भ शरीर प्रकृति - गर्भ शरीर प्रकृति का निर्माण चार प्रकृतियों से होता है -

(क) शुक्रशोणित प्रकृति
(ख) कालगर्भाशय प्रकृति
(ग) मातुराहार विहार प्रकृति[१]
(घ) पंचमहाभूतविकार प्रकृति

१- (अ) शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषकृमे: ।
तैश्च तिस्र: प्रकृतयो हीन मध्योत्तमा: पृथक् ।
समधातु: समस्तासु श्रेष्ठा: निन्द्या द्विदोषजा ।। (अ०हृ०सू० १।६-१०)

(ब) सु०शा० ४।७२

(स) च०वि०सू०, ७ ।

२- जात प्रकृति[1] - यह छ: प्रकार की होती है । इस प्रकृति के व्यक्ति की प्रकृति निर्माण में जाति, कुल, देश, काल, वय तथा आत्मा का प्रभाव पड़ता है ।

(क) जाति प्रसक्ता प्रकृति

(ख) कुल प्रसक्ता प्रकृति

(ग) देशनुपातिनी प्रकृति

(घ) कालानुपातिनी प्रकृति

(ङ०)वयोनुपातिनी प्रकृति

(च) प्रत्यात्मनियता प्रकृति ।

३- देह प्रकृतियां[2] - ये प्रकृतियां वात, पित्त, कफ से तीन प्रकार की , द्वन्द्व तीन प्रकार की तथा समदोषालिका, इस प्रकार सात प्रकार की हुई ।

४- मानस प्रकृति या महाप्रकृति

मानस प्रकृतियां[3] - इस प्रकार मानस प्रकृतियां भी सात प्रकार की होती हैं । सत्त्व, रज, तम, द्वन्द्व एवं समगुणवाली तालिका निम्न है -

१- (अ) अष्टांग हृदय - शा० ३।१०४, की हिन्दी टीका (विद्योतिनी) ।

(ब) जातिकुलदेशकालवय: प्रत्यात्म नियता हि तेषां तेषां पुरुषाणां ते ते भाव विशेषा: भवन्ति ।

च०शा० १ ।

२- (अ) समपित्तानिलकफा: केचिद्गर्भादिमानवा: ।

दृश्यन्ते वातला: केचित् पित्तला: श्लेष्मलास्तथा ।।

(ब) तेषामनातुरा: पूर्वे वातलाद्या: सदातुरा: ।

३- दोषानुशयिता ह्येषां देहप्रकृतिरुच्यते ।।

च०सू०, ७।३९-४०

३- गुणै: सत्त्वरजस्तमोभिरेकशो द्विश:

समस्तैश्च सप्तमहाप्रकृतय ।

सु०शा० ४।७२, डल्हण ।

मानस प्रकृतियां

- सात्विक प्रकृति
- राजस प्रकृति
- तामस प्रकृति
- सात्विक राजस प्रकृति
- सात्विक तामस प्रकृति
- राजस तामस प्रकृति
- समगुण प्रकृति

मानस प्रकृति के लक्षण[1]

सात्विक प्रकृति	राजस प्रकृति	तामस प्रकृति
अनृशसता	अकारुण्य	विषादी
समविभागरुचिता	दु:खबहुलता	अधर्मी
तितिक्षा	अटनशीलता	नास्तिक
सत्याभिरत	अन्तलब्धवक्तृता	अज्ञानी
धर्मरत	दम्भी	बुद्धिविरोधी

१- (क) अ०हृ०शा०, अ०३ ।
(ख) च०वि०, अ०८ ।
(ग) च०शा०, ४।३६
(घ) सु०शा०, अ०४।७८
(ङ०) च०शा०, ४।३६
(च) च०शा०, अ०, ४।३७

सात्विक प्रकृति	राजस प्रकृति	तामस प्रकृति
आस्तिक	मानी	दुर्मेधा
ज्ञानवान	हर्षयुक्त	अकर्मण्य
बुद्धिमान	कामी	निद्रालु
मेधावान	क्रोधी	
धृतिमान	अहंकारी	
अनभिषंग	अधीर	

सात्विक मानस प्रकृति:

चरक शारीर अध्याय के अनुसार सात्विक मानस प्रकृतियों के सात भेद बतलाए गये हैं, राजसिक के छह तथा तामसिक के तीन ।

१- सात्विक मानस प्रकृति[१]

२- राजस मानस प्रकृति

१- शुचिं सत्यभिसंधं जितात्मानं - - - - ।
गान्धर्वं विधात् ।
च०शा०, ४।३७

२-

३- तामसिक प्रकृति

पाशवसत्व मात्स्यसत्व वानस्पत्यसत्व

१- सात्विक प्रकृति के भेद तथा लक्षण

ब्राह्मणसत्व के लक्षण

शुचि	उपशान्त मोह
सत्यभिसन्ध	,, लोभ
जितात्मा	,, रोष
संविभागी	असंप्रहार्य
ज्ञानसम्पन्न	उत्थानवान
विज्ञान सम्पन्न	स्मृति मान
वचन सम्पन्न	ऐश्वर्य लक्ष्मी
अतिथिव्रती	व्यपगत राग
उपशान्तमद	,, द्वेष
उपशान्त मान	,, मोह
,, राग	प्रतिवचन सम्पन्न
,, द्वेष	क्रोध रहित
काम रहित	मान ,,
लोभ ,,	ईर्ष्या ,,
मोह ,,	अमर्ष ,,
हर्ष ,,	

२- आर्ष सत्व

इज्यापरायण | अध्ययनपरायण

व्रत परायण | होमपरायण

ब्रह्मचर्यपरायण | जपपरायण

प्रकटकोपी | व्यक्त प्रसादी

मध्यस्थ

सहिष्णु | नए। प्रशमसक्ति

३- ऐन्द्र सत्व

ऐश्वर्यवान् | आदेयवाक्य

यज्वा | शूर

ओजस्वी | तेजस्वी

अक्लिष्टकर्मा | दीर्घदर्शी

धर्माभिरत | अर्थाभिरुक्त

कामाभिरत | सततशास्त्र बुद्धि

मृत्यमरणशील | सततशास्त्र बुद्धि

आज्ञावान | माहात्म्यवान

४- याम्यसत्व

लेखास्थवृत्त | प्राप्तकारी

प्रियगीत कुशल | प्रियवादि कुशल

प्रियोल्लासकुशल | प्रियश्लोक कुशल

इतिहास कुशल

पुराण कुशल | गन्ध नित्य

निर्भय | शुचि

५- वारुणसत्व

शूर	वीर
शुचि	अशुचि द्वेषी
यज्वा	अम्भोविहारी
अक्लिष्टकर्मा	
शीत द्वेषी	उग्र
पिङ्गल	हरिकेश
प्रियवादी	

६- कौवेर सत्व

स्थानसम्पन्न	मानसम्पन्न
उपभोगसम्पन्न	परिवारसम्पन्न
धर्मार्थकामनित्यशुचि	सुखविहारी
अनुलेपन नित्य	वसन नित्य
स्त्री नित्य	विहार नित्य
कामनित्य	अनसूयक।
माल्यनित्य	

७- गान्धर्वसत्व

प्रियनृत्य कुशल

यद्यपि मन स्थान आधुनिक दृष्टि से मस्तिष्क माना जाता है पर भेल संहिता में जिस प्रकार का वर्णन मिलता है, वह यह है -

> शिरस्तात्वन्तरगतं सर्वेन्द्रिय परं मनः ।
> तत्रस्थं तन्न विषयान्द्रियाणां रसादिकान् ।।
> समीपस्थान् विजानाति - - - - - - - ।

तथा

प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च ।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते ।।

- च०सु० १७।

उक्त श्लोकों के आधार पर भी मन इन्द्रियों आदि का आश्रय मस्तिष्क ही माना गया है -

षडङ्गम् अङ्ग विज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थ पञ्चकम् ।
आत्मा च सगुणश्चेति चिन्त्यं च हृदिसंश्रितम् ।।
प्रतिष्ठार्थं हि भावानामेषां हृदयमिष्यते ।
गोपानसीनामागारकर्णिकेवार्थ चिन्तकैः ।।

- च०सू०, ३०।४-५

मनस (नपु०) (मन्यतेऽनेन मन करणे असुन्)

मन, हृदय, समझ, प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रज्ञा जैसा विमुमनस, दुर्मनस आदि में ।

(दर्शन० में) संज्ञा न और प्रत्यक्ष ज्ञान का आन्तरिक अंग या मन वह उपकरण है जिसके द्वारा ज्ञेय पदार्थ आत्मा को प्रभावित करते हैं ।

न्याय दर्शन में मन एक द्रव्य या पदार्थ माना गया है, जो आत्मा से सर्वा भिन्न है ।[१]

१- तदेव सुख दुःखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः ।
प्रतिजीवंभिन्नो विभुर्नित्यश्च ।।
तर्ककौमुदी ।

सत्वादि प्रकृतिवालों को सुखादि का अनुभव

अनुत्सेकमदैन्यं च सुखं दु:खं च सेवते ।
सत्वावांस्तप्यमानस्तु राजसौवैवतामस ।।

सत्ववान पुरुष सुख और दु:ख का अनुभव औत्सुक्य के साथ तथा दैन्य स्वभाव का परित्याग करके करता है । अर्थात् सत्वप्रकृति का व्यक्ति न सुख में उच्छृंखल होता है और न दु:ख में घबराता है । ठीक इसके विपरीत राजस प्रकृति का व्यक्ति अहंकार के वशीभूत होकर सुख दु:ख का सेवन करता है । तामस प्रकृति का व्यक्ति राजस से भी विपरीत प्रतीत होता है, क्योंकि वह न तो सुख का अनुभव करता है और न दु:ख का ही । वस्तुत: वह अत्यन्त मूढ़ होने के कारण सदैव दु:खी रहता है । यह प्रतीत अष्टांग हृदयकार के उपर्युक्त कथन से पुष्ट होती है । करीब इसी प्रकार का आशय गीता के एक श्लोक से अभिव्यंजित होता है ।[2]

सर्वारम्भ परित्यागी गुणातीत: स उच्यते ।

राजस प्रकृतियों में भेद

१- असुर सत्व

शूर	चण्ड
असूयक	ऐश्वर्यवान
औपधिक	रौद्र
अनुक्रोशी	आत्मपूजक
एकाशी	औदरिक

१- अष्टा०शा०३।११०

२- मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयो: ।
सर्वारम्भ परित्यागी गुणातीत: स उच्यते ।।
गीता अध्याय 14 श्लोक सं०25

३- वही ।

२- राक्षस तत्त्व

अमर्षी — अनुबन्धकोपी

छिद्रप्रहारी — क्रूर

आहारातिमात्ररुचि: — आमिषप्रिय:

स्वप्नबहुल — आयासबहुल

ईर्ष्यु: — एकान्तग्राही

३- शाकुन तत्त्व

अनुषक्त कामी — अजस्राहारपारायण

४- पैशाचसत्व

महाशनी — स्त्रैण

स्त्रीरहस्कामी — अशुचि

शुचिद्वेषी — भीरु

भीषयिता — विकृतविहारशील

उच्छिष्टाहारी — तीक्ष्ण

साहसप्रिय — निर्लज्ज

५- सार्पसत्व

क्रुद्धभीरु

अजस्रविहारपरायण — अनवस्थित

अमर्षण — तीक्ष्ण

आयास बहुल — संत्रस्तगोचर

आहारपरायण — विहारपरायण

चण्ड — मायावी

विहारचपल — आचार चपल

६- प्रेमसत्व

आहारकामी	अतिदु:खशील
अतिदु:खाचारी	अतिदु:खोपचारी
असूयक	असंविभागी
अतिलोलुप	अकर्मशील
आलसी	उदासा
असंयमी	प्रवृद्ध काम सेवी

तामस प्रकृतियों के भेद

१- पाशव सत्व

निराकरिष्णु	अमेधा

२- मात्स्य सत्व

भीरु	अबुध या मूढ़
ऊहापोहविचार	एकस्थानरति
स्मृति आदि हीन	

जुगुप्सिताचारी	जुगुप्सिताहारविहारी
मैथुनपरायण	स्वप्नशील
दुर्मेधा	मन्दबुद्धि
स्वप्नमैथुननित्यता	आहारलोभी
अनवस्थित	

३- वानस्पत्य सत्व

आलसी	केवल आहार में अभिनिविष्ट
सर्वबुद्ध्यङ्गहीन	धर्मवर्जित
कामवर्जित	अर्थ वर्जित

अनुषक्तकामी अनुषक्तक्रोधी
शरणशील लोककामी
परस्पराभिमर्दी

काश्यप के अनुसार सत्व तीन प्रकार के होते हैं[१] —

१) कल्याण से उत्पन्न होनेवाला --- (सात्विक)
२) क्रोध से उत्पन्न होने वाला --- (राजस)
३) मोह से उत्पन्न होने वाला --- (तामस)

इस[२] प्रकार का वर्णन चरक शारीर अध्याय ४ में किया गया है।

शुद्ध सत्त्व

चरक	सुश्रुत	काश्यप
७ भेद	७ भेद	८ भेद

१- ब्राह्मण सत्व
२- गान्धर्व सत्व
३- आर्ष
४- ऐन्द्र
५- याम्य
६- वरुण
७- कौबेर
८- --- प्राजापत्य सत्व

१- काश्यप संहिता, सू०अ०, २८।पृ०५१।
२- (अ) तत्र खलु त्रिविधसत्वं शुद्धं राजसंतासमभिति
कल्याणांशसत्वात् रोषांशसत्वात् मोहांशं त्वाद्।
च०शा०, अ० ४।३६ (शेष अगले पृष्ठ पर)

चरक एवं सुश्रुत में राजस् एवं तामस सत्व के क्रम से ७, ६ एवं तीन भेद ही उपलब्ध हैं । सभी उपरोक्त ग्रन्थों के समान ही काश्यप की भी संख्या उपलब्ध है । अत: आचार्य चरक ने १६ मानस प्रकृतियां मानी हैं और काश्यप संहिताकार (काश्यप) ने १७ मानस प्रकृतियों का वर्णन किया है ।

आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध मानस प्रकृति के वर्गीकरण एवं लक्षणों के अध्ययन से पता चलता है कि आयुर्वेदज्ञों ने मानस प्रकृति के वर्गीकरण के आधार के रूप में मनुष्य के सामाजिक व्यवहार मन के लक्षणों एवं गुणों को लिया है । वस्तुत: मन के अध्ययन जैसे दुरूह विषय को तब तक पूर्ण नहीं समझा जा सकता जब तक उसके सभी पक्षों का सुचारु रूप से अध्ययन न किया जाय ।

पाश्चात्य साहित्य के अवलोकन से पता चलता है कि पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने अभी तक मन के प्रत्येक पक्ष का अध्ययन सामूहिक रूप से नहीं किया ।

आधुनिक मनोविज्ञान में मानस प्रकृति

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा मानस प्रकृति का वर्गीकरण अनेक रूपों में किया गया है । व्यवहारवादियों ने मनुष्य समाज के व्यवहार के आधार पर मानस प्रकृति का वर्गीकरण किया है । युंग का वर्गीकरण जो कि अन्तर्मुखी (इण्टरनल) एवं बहिर्मुखी (एक्सटेर्नल) नाम से प्रचलित प्रचलित है । यह भी मनुष्य के व्यवहार एवं उसकी मानसिक प्रवृत्तियों के ऊपर आधारित है ।

(गत पृष्ठ की पाद टिप्पणी २ का शेषांश)

(ब) सप्तैते सात्त्विका काया: ।

सु०शा०, अ० ४।७३

षडेते राजसा: काया: ।

वही, अ० ७।७५

इत्येतेत्रिविधा: काया: प्रोक्ता वै तामसास्तथा ।

वही, अ० ४।७७-७८

अनेक मनोवैज्ञानिक एवं मनोचिकित्सकों ने मानस प्रकृति का वर्गीकरण करने का प्रयास किया है जिनमें शेल्डन के द्वारा प्रतिपादित मानस प्रकृति का वर्गीकरण सर्वमान्य है । शेल्डन ने मुख्यत: तीन प्रकार की मानस प्रकृति बताई है तथा तारतम्य भेद से जिन लक्षणों का बाहुल्य होता है उन्हें उसी प्रकार के नाम से व्यपदिष्ट किया गया है । वस्तुत: शेल्डन के मानस प्रकृति का वर्गीकरण जिस आधार पर किया गया, अब उसे आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से प्रयोगशाला विधि द्वारा निर्धारित किया जा सकता है ।

उपर्युक्त विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल से ही मानसिक रोगों के सन्दर्भ में विचार होते रहे हैं । आयुर्वेद में इन रोगों के सन्दर्भ में व्यवस्थितरूप से विचार किया गया है तथा उसने चिकित्सा क्षेत्र के अन्तर्गत इसको अपनाया है । इतना ही नहीं आज भी आयुर्वेद द्वारा वर्गीकृत मानसिक रोगों की उपादेयता वही है जो पहले थी । वर्तमान वैज्ञानिकों ने भी इनकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला है तथा यह सिद्ध कर दिया है कि आयुर्वेद द्वारा वर्णित मानसिक रोग आज के परिप्रेक्ष्य में भी महत्त्व रखता है ।

केवल आयुर्वेद में ही नहीं वरन् प्राचीन भारतीय साहित्य में एवं दर्शन में भी इस सन्दर्भ में काफी विचार हुए हैं । योगवाशिष्ठ तो मानस रोग एवं मन के स्वरूप सम्बन्धी विचारों से भरा हुआ है । महाभारत में भी इन सब विषयों पर पर्याप्त विचार हुआ है । उपनिषदों ने भी यत्र तत्र इस पर अपना मत दिया है । तुलसी-साहित्य में इस पर सम्यक् विचार हुआ है । तुलसीदास ने बहुत गहराई के साथ अपना मत प्रकट किया है । आज यह सिद्ध हो चुका है कि बहुत से शारीरिक रोग ऐसे हैं जो मानसिक कारणों से उत्पन्न होते हैं । तुलसी साहित्य में इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनका वर्णन विस्तार से यथास्थल किया जायगा । ये सब उदाहरण यह बतलाते हैं कि मानसिक रोगों का क्षेत्र बहुत व्यापक है । साहित्य, दर्शन, आयुर्वेद सबने इस पर अपना मत दिया है । संस्कृत साहित्य इससे अछूता नहीं है । कालिदास द्वारा रचित कुछ ग्रन्थों में भी यत्र तत्र इसका वर्णन मिलता है । यहां तक की कालिदास ने अपने साहित्य में मानसिक व्यग्रता के कारणों पर भी प्रकाश डाला

है । मानसिक रोगों के क्षेत्र की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती, यद्यपि विशेषत: यह चिकित्साशास्त्र से ही सम्बन्धित रहा है, किन्तु प्राचीन भारतीय दर्शन साहित्य आदि ने भी प्रसंगवश कई स्थलों पर इसका वर्णन किया है ।

रामचरितमानस भगवान् राम के चरित्र पर प्रकाश डालनेवाला एक महान् ग्रन्थ है । इसमें अवताररूप में श्रीराम ने आदर्श मानव के रूप में लीलाएं सम्पन्न की हैं । तुलसीदास के अनुसार श्रीराम स्वयं निर्गुण ब्रह्म हैं, किन्तु वे मानव कल्याणार्थ सगुणरूप में अवतरित होकर आदर्श लीलाएं प्रस्तुत करते हैं । विभिन्न मानसिक भावों, संवेगों, प्रकृतियों एवं चरित्रों के प्रतिनिधि पात्रों को उन्होंने प्रस्तुत किया है । यह प्रस्तुतीकरण उनका अनूठा है और विभिन्न अवस्थाओं में मानव की मानसिक प्रतिक्रिया एवं संवेगों का वर्ण पूर्ण मनोवैज्ञानिक है । आयुर्वेद में वर्णित मानस रोगों का ही उल्लेख गोस्वामी जी ने भी किया है ।

द्वितीय अध्याय

मानस रोगों का वर्गीकरण

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने मानस रोगों को चार वर्गों के अन्तर्गत विभाजित किया है । ये वर्ग हैं —

१- मनोस्नायुविकृत,
२- मनोविकृत,
३- मानसिक दोषी अथवा हीन बुद्धि,
४- समाज विरोधी ।

१- मनोस्नायुविकृति

कठिन परिस्थितियों में कुछ व्यक्ति असन्तुलित हो जाते हैं । इस अवस्था में उनमें अनेक मानसिक एवं शारीरिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं । इन्हें मनोस्नायु-विकृत रोगी कहते हैं । इन लक्षणों में आकुलता, आन्तरिक तनाव, व्यग्रता, ध्यानहीनता, स्मृतिह्रास, असामान्य भय आदि मुख्य हैं । संवेगात्मक व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप कुछ शारीरिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं । इनमें शिर:शूल, पाचन-विकार, थकान, शक्तिहीनता एवं संवेदनात्मक तथा गत्यात्मक क्रियाओं का ह्रास आदि मुख्य लक्षण होते हैं ।

मनोस्नायुविकृति वर्ग के विकार अपेक्षाकृत हल्के रूप के मानसिक रोग माने जाते हैं । इनका मानसिक अभियोजन अस्तव्यस्त नहीं रहता और ये समाज के लिए कष्टकर भी नहीं होते । हिस्टीरिया, स्नायुदौर्बल्य, आकुलावस्था और मनोदौर्बल्य मनोस्नायुविकृति वर्ग के अन्तर्गत आने वाले मुख्य रोग हैं ।

२- मनोविकृति

इस वर्ग के मानसिक रोग तीव्र एवं गम्भीर रोग होते हैं । इन रोगियों का व्यक्तित्व विघटित और उनका सामाजिक सम्बन्ध अस्तव्यस्त हो जाता है । इन रोगियों का व्यवहार विचित्र, अविवेकपूर्ण, असंगत और सामान्य व्यक्तियों की समझ से बाहर होता है । मनोविकृत व्यक्ति आत्मव्यवस्था में सर्वथा असमर्थ और उसका व्यवहार दूसरों के लिए कष्टप्रद होता है । यह रोगी साधारण कर्तव्याकर्तव्य, एवं समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ हो जाते हैं । व्यामोह और भाववस्तुबोधन इनमें मुख्य लक्षण होते हैं । उनकी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में भी वास्तविकता की पूर्णरूप से उपेक्षा होती है । अकारण ही वे उत्तेजित, विषादग्रस्त अथवा क्रोधित हो जाते हैं । इन रोगियों की समझने की शक्ति कुंठित हो जाती है । वे अकारण रोने या हंसने लगते हैं । वास्तविकता से वे दूर हो जाते हैं । अपने अन्दर वे स्वयं का संसार निर्मित कर लेते हैं और बाह्य संसार से वे अपने सम्बन्ध काट लेते हैं । सीजोफ्रेनिया, अथवा मनोविदलता, उत्साह-विषाद मनोविकृति, स्थिरव्यामोह, नष्टार्तवकालीन उदासी आदि मनोविकृति वर्ग के प्रमुख मानसिक रोग हैं ।

३- मानसिक दुर्बलता

ये रोगी जन्म से ही दुर्बल बुद्धिवाले होते हैं । मानसिक दुर्बल व्यक्ति आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से प्राय: दूसरों पर भारस्वरूप होते हैं । समाज में अपने को पूर्णरूप से व्यवस्थित करने में ये असमर्थ होते हैं । इनकी देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता सदैव बनी रहती है ।

४- समाज विरोधी व्यक्तित्व

ये लोग आदतन अपराध करते हैं । इन्हें मनोविकृत व्यक्तित्व भी कहा जाता है । इन लोगों में बुद्धि की पर्याप्त मात्रा होती है । इनमें अन्तर्द्वन्द्व व्याकुलताएं, व्यामोह,भ्रमभाववस्तुबोधन और मानसिक अस्तव्यस्तता आदि लक्षण नहीं होते । इनके व्यवहारों में नियन्त्रण का अभाव एवं नैतिकता तथा

सामाजिकता के अनुकूल आचरण करने की क्षमता का अभाव ही इनके विकारों का मुख्य पक्ष है । इनमें भाव, स्वभाव एवं आदत सम्बन्धी विकृति वर्तमान होती है । बौद्धिक क्षमता प्रायः क्षतिग्रस्त नहीं होती ।

आयुर्वेद के अनुसार मानसिक रोगों को निम्नलिखित चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है –

१- रज एवं तम की विकृति के कारण उत्पन्न मानसिक रोग ।

२- वात, पित्त, कफ एवं रज तथा तम के कारण उत्पन्न मानसिक रोग ।

३- आधि-व्याधियां अथवा मनोदैहिक रोग ।

४- प्रकृति-विकार अथवा व्यक्तित्व विकारजन्य मानसिक रोग ।

१- रज एवं तम की विकृति के कारण उत्पन्न मानसिक रोग

रज एवं तम को मानस दोष कहा गया है । चरक के अनुसार काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान, मद, शोक, चिन्ता, उद्वेग, भय तथा हर्ष आदि[१] मुख्य मानस रोग हैं और ये रज तथा तम की विकृति के कारण उत्पन्न होते हैं । ये काम क्रोधादि वस्तुतः संवेग हैं । चरक ने इन्हें मानस रोग और विभिन्न मानस रोगों का लक्षण भी माना है । वस्तुतः ये संवेग सामान्यरूप से सभी प्राणियों में उपस्थित रहते हैं, किन्तु इनकी वृद्धि एवं क्षय को ही विकार या रोग माना जाता है । इनकी वृद्धि या क्षय का नियन्त्रण रज एवं तम की वृद्धि एवं क्षय से होता है क्योंकि ये सभी संवेग सत्व, रज एवं तम से सम्बन्धित होते हैं । काम, चिन्ता आदि संवेगों की उपस्थिति सामान्य व्यावहारिक जीवन के संचालन के लिए आवश्यक है किन्तु परिस्थितियों के प्रतिकूल और अत्यधिक क्षय या वृद्धि विकार की अवस्था है ।

ये संवेग मुख्य रूप से मन के आश्रित होते हैं किन्तु इनका सम्बन्ध शारीरिक प्रक्रियाओं से भी रहता है । संवेगों की स्थिति में श्वास बढ़ना, हृदय की धड़कन का बढ़ जाना एवं नाड़ी तथा रक्तचाप आदि का बढ़ना हम देखते हैं ।

१- च० वि०, ६-५

ये संवेग सुखद एवं दु:खद दो प्रकार के होते हैं । प्रेम, आह्लाद आदि सुखद संवेग हैं और क्रोध शोक आदि दु:खद । सुखद संवेगों में स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुकूल शारीरिक परिवर्तन होते हैं और दु:खद संवेग स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद होते हैं ।

संवेगों की उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है । इसके लिये संवेगात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण आवश्यक है । संवेगों की उत्पत्ति में वस्तु अथवा व्यक्ति का नहीं, परिस्थिति का महत्त्व होता है ।

संवेगों को जीवन का रस माना गया है । अत: सामान्य मात्रा एवं अनुकूल परिस्तियों में इनका होना सामान्य व्यावहारिक जीवन के लिए आवश्यक है । प्रतिकूल परिस्थिति एवं असामान्य मात्रा भी इनकी उत्पत्ति-विकार है । क्षय एवं वृद्धि असामान्य अवस्था हैं । तीसरा विकार मिथ्या स्वरूप का है । जैसे विकृत रूप से काम सेवन एवं जिससे भय न करना चाहिये उनसे भी भयभीत होना ।

अत: संवेगों को आयुर्वेद में रोग, रोग के लक्षण और रोगोत्पादक हेतु भी माना गया है । उदाहरण के लिए चिन्ता नामक संवेग को देख सकते हैं । यह स्वयं एक मानसिक रोग माना जाता है । चिन्ता सभी प्रमुख मानसिक रोगों में यह एक लक्षण के रूप में उपस्थित होती है । यह अन्य मानसिक रोगों की उत्पत्ति का कारण भी होती है ।

रामचरितमानस में भी आयुर्वेद की भांति इन संवेगों को मानस रोग कहा गया है और इनको स्वयं रोग भी माना गया है तथा विभिन्न मानस रोगों का कारण भी ।

२- वात, पित्त, कफ एवं रज तथा तम के कारण उत्पन्न मानसिक रोग

त्रिदोष एवं त्रिगुण के सम्मिलित रूप से असंतुलित हो जाने पर ये मानसिक विकार हुआ करते हैं । वास्तव में मन एवं शरीर का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक का प्रभाव दूसरे की प्रक्रिया पर पड़ना अनिवार्य है । अत:

आयुर्वेद के अनुसार जितने भी प्रमुख मानसिक रोग हैं उनमें रज एवं तम के विकार के साथ ही त्रिदोष भी विकृत हो जाते हैं । इस वर्ग में अधिकांश मानसिक रोग आ जाते हैं । इनमें से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं —

१) उन्माद,
२) अपस्मार,
३) अपतन्त्रक,
४) अतत्वाभिनिवेश,
५) अनिद्रा,
६) भ्रम,
७) तन्द्रा,
८) क्लम,
६) मद,
१०) मूर्च्छा,
११) संन्यास,
१२) मदात्यय,
१३) मदोद्वेग,
१४) सन्त्रास

उन्माद

उन्माद शब्द उत् पूर्वक मद धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर बना है । उत् का अर्थ है उन्मार्ग अथवा ऊर्ध्व । मद का अर्थ है नशा, विक्षिप्तता पागलपन । प्रकुपित दोष जब उन्मार्गगामिनी होकर मन अथवा मस्तिष्क में मद को उत्पन्न करते हैं तो उसे उन्माद कहते हैं । आयुर्वेद में उन्माद मानसिक रोगों में सबसे जटिल और उग्र माना गया है । इससे पीड़ित रोगी की प्राय: सभी क्रियाएं विषम अथवा विकृत हो जाती है, उसका सारा व्यक्तित्व विघटित हो जाता है । उसका शरीर उसका मन, उसके संवेग सभी उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर हो जाते हैं ।

चरक में उन्माद की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा है — ` मन, बुद्धि, चेतना, ज्ञान, स्मृति, भक्ति, शील, चेष्टा, आचार की विषमता ही उन्माद कहलाती है ।[१] इसमें जहां एक ओर मन, बुद्धि, चेतना, ज्ञान, स्मृति आदि मानसिक एवं संवेगात्मक क्रियाएं विषमता को प्राप्त हो जाती है, वहीं दूसरी ओर शील, चेष्टा एवं आचार आदि शारीरिक क्रियाओं में भी विकृति आ जाती है ।

आयुर्वेद में उन्माद के दो रूप मिलते हैं — दोषज उन्माद तथा आगंतुक उन्माद । दोषज उन्माद वातपित्तादि शारीरिक अथवा रज-तम आदि मानसिक दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होता है । आगन्तुक उन्माद देवता, ऋषि, गन्धर्व पिशाच तथा पितृग्रहों का अपमान करने से व्रत पूजादि को अनुचित ढंग से करने से तथा दैव के प्रकोप के फलस्वरूप उत्पन्न होता है ।

उन्माद का पूर्वरूप

सिर में शून्यता (खालीपन अथवा खोखलापन) नेत्रों की व्याकुलता, कानों में तरह तरह के (अस्तित्वहीन) शब्दों का सुनाई पड़ना उच्छ्वास की अधिकता, लालास्राव, भोजन के प्रति अनिच्छा, अरुचि, अपच, हृदय की जकड़ाहट, चिन्ता, श्रम, मोह, उद्वेग, घबड़ाहट, सतत रोमांच, बार बार ज्वर का आक्रमण, चित्त की उन्मत्तता अथवा भ्रान्ति, उदर्द (ददोरे, पित्ती, जुड़पित्ती अथवा छपाकी) मुंह का टेढ़ा होना, जागते अथवा सोते (स्वप्न में) बार बार चंचल, अस्थिर एवं निन्दित रूपों को देखना, कलुषित भोजन करना, कोल्हू के ऊपर सवारी करना, बवण्डर के बीच पड़कर शरीर का मथा जाना, कलुषित जल के भंवर के बीच डूब जाना, नेत्रों का टेढ़ा होना आदि उन्माद का पूर्वरूप है ।

सामान्य लक्षण

बुद्धिविभ्रम, मन में उथल-पुथल, दृष्टि की चंचलता, अधीरता, निष्प्रयोजन तथा असम्बद्ध भाषण एवं हृदय की शून्यता आदि इसके लक्षण हैं ।

१- उन्मादं पुनर्मनोबुद्धिसंज्ञाज्ञानस्मृतिभक्तिशील चेष्टाचार विभ्रमं विद्यात् ।

उन्माद के भेद

चरक ने उन्माद के पंचभेद किए हैं— वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज तथा आगन्तुक । सुश्रुत तथा वाग्भट ने उन्माद के छः भेद बताए हैं— वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आधिजन्य (मानसिक) और विषजन्य ।

चरक ने आधिजन्य तथा विषज उन्मादों को आगन्तुक उन्माद में ही अन्तर्भावित किया है । सुश्रुत तथा वाग्भट ने आगन्तुक उन्माद को दोषज उन्माद से अलग कर दिया है और आधिजन्य तथा विषज उन्मादों को जोड़ा है । उनका ऐसा करना न्यायसंगत भी प्रतीत होता है । सुश्रुत तथा वाग्भट निश्चय ही चरक के बाद के हैं । आयुर्वेद के विकास के साथसाथ जैसे जैसे मन की कार्यप्रणाली का, मानसिक व्याधियों का ज्ञान बढ़ा होगा वैसे ही वैसे भूतग्रहों में लोगों का विश्वास (कम से कम चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से) घटा होगा । चिकित्साशास्त्र में उनकी मान्यता घटी होगी । फिर भी अथर्ववेद में चली आ रही परम्परा का एकबारगी त्याग भी सम्भव न था । चरक ने दबी जबान से उसका विरोध किया । सुश्रुत और वाग्भट ने उसे उन्माद, अपस्मार, आदि मानसिक व्याधियों की कोटि से अलग ही कर दिया । नीचे संक्षेप में उन्माद के भेदों का परिचय प्रस्तुत किया गया है ।

वातज उन्माद

लगातार एवं निष्प्रयोजन घूमना, अकारण नेत्र, भ्रू,कंधा, ओठ, हड्डी, हाथ-पैर तथा दूसरे अंगों को चलाना, लगातार असम्बद्ध बोलना, चिल्लाना, मुंह से फेन निकलना, अस्थान में बार बार हंसना, मुस्कराना, नाचना, गाना, बाजा बजाना, वीणा, बांसुरी, शम्या (करतलि), शंख, ताल आदि की आवाजों का ऊंचे स्वर से अनुकरण करना, जो सवारी न हो उसी की सवारी बनाकर चलना, जो अलंकार योग्य नहीं हैं उन्हीं वस्तुओं से शरीर को अलंकृत करना, अप्राप्त खाद्य का लोभ करना, तथा प्राप्त खाद्य का अनादर करना, अंगों में फड़कन, संधियों का चटकाना, तीव्र मत्सरता, कृशता, रुक्षता, कठोरता, आंखों का बाहर निकला हुआ सा और मत्सर तथा कालिमायुक्त होना तथा अन्न के जीर्ण होने पर रोग का बढ़ना ।

पित्तज उन्माद

अमर्ष, असहिष्णुता, क्रोध लोगों को डराना-धमकाना, अकारण शस्त्र अस्त्र, मिट्टी के ढेले, कोड़े, लकड़ी, मुक्के आदि से अपने पर या दूसरों पर प्रहार करना, नंगे रहना, दौड़ना, शरीर में बार बार ताप का होना, नेत्रों, नखों तथा मूत्र का ताम्रवर्ण, हरा हल्दी की तरह पीला और धुंधनयुक्त होना, शीतल वस्तु, छाया, ठण्डे जल और अन्न की इच्छा करना, अनिद्रा, अल्पनिद्रा, तृषा, दाह, स्वेदाधिक्य तथा अत्यधिक खाना ।

कफज उन्माद

जहां बैठा है बैठा रहना, थोड़ा बोलना, अथवा मौन रहना, थोड़ा घूमना अथवा चलना-फिरना, लालास्राव, नाक से कफस्राव, कास, अरुचि, वमन, अल्पभोजन, स्त्रीकामुकता, एकान्तप्रियता, पवित्रता से द्वेष, शरीर को गंदा रखना, अधिक सोना, मुख में शोथ का होना, आंखों में कड़ाहट और उनका कीचड़ से भरा-सना होना, नख, नेत्र, मल-मूत्र, आदि सफेदी । उष्ण पदार्थों के सेवन तथा उष्ण स्थानों में सोने बैठने की इच्छा करना । रात्रि में भोजन के तुरन्त बाद उन्माद के वेग का बढ़ जाना ।

सन्निपातज उन्माद

उक्त तीनों प्रकार के ही उन्मादों के लक्षणों में से अधिकांश का साथ-साथ पाया जाना सन्निपातज उन्माद है । सन्निपातज उन्माद को आचार्यों ने अधिकांश में असाध्य बताया है ।

अभिघातज उन्माद

धन, स्त्री आदि के नाश से, अति दु:सह पराभव से रोगी का पाण्डुवर्ण और दीन होना, बार बार हाहाकार करके रोना, दु:खी होना, अकस्मात् चुप होना, अकस्मात् रोना, अकारण हंसना, मृत व्यक्ति के गुणों को बहुत मानना (बार बार उसकी याद करना) शोक से पीड़ित होकर, चिन्तामग्न रहना, रात को न सोना तथा विरुद्ध चेष्टाएं करना अभिघातज उन्माद है ।

विषजन्य उन्माद

विषजन्य उन्माद के लक्षण हैं – चेहरे का हरा, नीला, अथवा काला पड़ना, ,कान्ति का मलिन होना, इन्द्रियों की शक्ति का क्षीण होना, दीनता, आंखों में लाली, बेहोशी आदि ।

उन्माद के कारण

आयुर्वेद के मनीषियों ने उन्माद के प्राय: निम्नांकित कारण माने हैं –

१) प्रकृति विरुद्ध, दुष्ट तथा अपवित्र भोजन करना,
२) देवता, गुरु तथा ब्राह्मणों का अपमान करना एवं पूज्यों की पूजा का व्यतिक्रम,

३) अत्यधिक भय तथा अत्यधिक हर्ष,
४) मानसिक आघात, चिन्ता तथा विक्षोभ,
५) शरीर की विषम चेष्टाएं, तथा
६) विष, उपविष एवं गरविष का भक्षण अथवा संसर्ग ।

आगन्तुक उन्माद

आगन्तुक का शाब्दिक अर्थ है ` अपनी इच्छा से आया हुआ, बिना बुलाए आया हुआ,` ` अनाहूत अनाधिकार प्रवेश करने वाला` अपरिचित इत्यादि । अत: आगन्तुक उन्माद का अर्थ हुआ उन्माद का वह रूप जो बिना किसी स्पष्ट कारण के कहीं बाहर से आकर प्राणी के मनोदैहिक तन्त्र में प्रवेश कर जाए या किसी बाह्य तत्त्व के शरीर में प्रवेश कर जाने के कारण उत्पन्न हो जाए । एक लम्बे अर्से से यही मान्यता चली आ रही है कि यह देवादि ग्रहों के प्राणी के शरीर में प्रवेश कर जाने के कारण अथवा ग्रस लेने के कारण उत्पन्न होता है । इसे भूतोन्माद या ग्रहोन्माद भी कहते हैं ।

आगन्तुक उन्माद का पूर्वरूप

देवता, गौ, ब्राह्मण, तपस्वियों अथवा अन्य मान्य एवं पूज्य व्यक्तियों

को मारने, अपमानित करने में अधिक प्रेम रखना, क्रोध करना, नृशंस तथा क्रूर होना, चिन्ता, शोक, विकलता अथवा घबराहट से ग्रसित होना, ओज, वर्ण छाया, कान्ति बल तथा शरीर में उपताप का होना, स्वप्नादि में देवादि ग्रहों के द्वारा धमकाया जाना और उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करना ।

आगन्तुक उन्माद के सामान्य लक्षण

वाणी, पराक्रम, शक्ति, बल, पौरुष, ज्ञान-विज्ञान, स्मरण, चेष्टा आदि का सामान्य प्राणियों के समान न होना अर्थात् उनसे कहीं बढ़-चढ़कर देवादि ग्रहों के समान होना - यथा उन्हें गुप्त बात, गुप्त वस्तु या अनागत भविष्य का ज्ञान होना उन्माद के वेगों के आने के समय का निश्चित न होना आदि इसके लक्षण हैं ।

आगन्तुक उन्माद के भेद

चरक के अनुसार आगन्तुक उन्माद के निम्नांकित भेद हैं

१- देवोन्माद,

२- ऋषिकोन्माद,

३- पितृग्रहोन्माद,

४- गन्धर्वोन्माद,

५- यक्षोन्माद,

६- राक्षसोन्माद,

७- ब्रह्मराक्षसोन्माद तथा

८- पिशाचोन्माद ।

सुश्रुत ने भी शापोन्माद और ब्रह्मराक्षसोन्माद के स्थान पर दैत्योन्माद तथा भुजंगोन्माद को माना है ।

वाग्भट ने भी उपर्युक्त दोनों विद्वानों को आदर देते हुए इस सूची में निम्नांकित पांच ग्रह और जोड़ दिए हैं - १- प्रेतोन्माद, २- कुष्माण्डोन्माद, ३- निषादोन्माद, ४- औकिरणोन्माद तथा ५- वैतालोन्माद ।

अपस्मार

अपस्मार शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है। सुश्रुत के अनुसार अप शब्द का अर्थ है, परिवर्जन और स्मृत शब्द का अर्थ है भूतार्थ का विज्ञान। अतः अपस्मार का शाब्दिक अर्थ हुआ स्मृति का नाश अथवा अवरोध। चरक के शब्दों में स्मृति, मन और बुद्धि की विकृति से बीभत्स चेष्टाओं के साथ अन्धकार में प्रवेश करना अथवा संज्ञाशून्य हो जाना ही अपस्मार कहलाता है। चरक द्वारा प्रस्तुत अपस्मार की उक्त परिभाषा में उसकी चार प्रमुख विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है —

१) स्मृति,
२) बुद्धि और मन की विकृति,
३) बीभत्स चेष्टाएं,
४) संज्ञा शून्यता।

पाश्चात्य मनोविकारिकी में अपस्मार को एपिलेप्सी कहते हैं। यह शब्द ग्रीक भाषा के एक शब्द से बना है, जिसका अर्थ है ` सीजर ` अथवा अभिग्रहण इसमें व्यक्ति सहसा संज्ञाशून्यता का शिकार होकर कटे हुए वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ता है। शिकार होकर कटे हुए वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ने से ऐसा लगता है कि जैसे किसी अज्ञात शक्ति ने उसे अचानक धरदबोचा हो। शायद इसीलिये इसका यह नाम पड़ गया। सुश्रुत ने अपस्मार को एक दोषज व्याधि भी बताया है और उसी के अनुरूप चिकित्सा की व्यवस्था भी की है। मानसिक स्वास्थ्य के विश्वकोश में अपस्मार अथवा एपिलिप्सी की परिभाषा निम्नोक्त शब्दों में दी गई है।

एपिलेप्सी एक ऐसा पद है जो चेतना, शरीर की गतियों अथवा दोनों में ही सहसा और बारम्बार उत्पन्न होने वाली उन गड़बड़ियों के उपाख्यानों के लिये प्रयोग में लाया जाता है। जो कुछ मस्तिष्क कोशों की अत्यधिक सक्रियता के कारण उत्पन्न होती है, चेतना में परिवर्तन तथा आक्षेपक गतियां इसके प्रमुख

लक्षण हैं । ` कोलमैन के शब्दों में एपिलेप्सी चेतना में उत्पन्न होने वाली वह गड़बड़ी है जिसमें स्वतंत्र नाड़ी मण्डल की अस्त-व्यस्तता आक्षेपक गतियां तथा मानसिक गड़बड़ियां भी साथ साथ पाई जाती हैं ।

अपस्मार का पूर्वलक्षण

हृदय का कम्पन, शून्यता, चक्कर आना, आंखों के आगे अन्धकार छा जाना, ध्यान, चिन्ता, भ्रू विक्षेप, आंखों की विकृति, अस्तित्वहीन शब्दों को सुनना अथवा श्रुति विभ्रम, पसीना, मुंह से लार एवं नाक से मैल निकलना, अरुचि, मूर्छा, पेट में गुड़गुड़ाहट, बलनाश, निद्रानाश, अंगों का टूटना, प्यास, स्वप्न में नाचना गाना, तेल या मद्य पीना, इन्हीं का मूत्र त्याग करना, शरीर का छीजना अथवा उस पर आघात लगना अथवा व्यथन पीड़ा का लगना अपस्मार के पूर्व लक्षण हैं । पेज ने भी बतलाया है कि रोग की सूचना देने वाले प्रारम्भिक लक्षण एकाध अथवा कुछ दिन पहले से ही प्रकट होने लगते हैं । ये पेशीय फड़कन, संवेदात्मक व्यामोहों अथवा भावदशा विचलन के रूप में हो सकते हैं । अपस्मार के कुछ रोगी कुछ घंटे पहले से ही कठोर तथा चिड़चिड़े हो जाते हैं । अपस्मार के सामान्य लक्षण प्रायः सभी प्रकार के अपस्मारों में सामान्यरूप से पाये जाते हैं । इनमें से प्रमुख हैं- भ्रान्ति, असद्रूप दर्शन, हाथपैर पटकना, जिह्वा-भौं तथा नेत्रों की विकृति,दांत कटकटाना, दांत लगना, नेत्रों का विस्फारित होना, पृथ्वी पर गिरना तथा समय के उपरान्त पुनः संज्ञा-लाभ करना । अपस्मार मुख्यरूप से चार प्रकार का माना गया है-

१) वातज,

२) पित्तज,

३) कफज, तथा

४) त्रिदोषज ।

चरक ने आगंतुक अपस्मार की भी चर्चा की है, पर सुश्रुत ने उसे नहीं माना है । उनके अनुसार आगंतुक अपस्मार भी दोषज है । सुश्रुत के शब्दों में बिना हेतु के

रोग का आक्रमण होने से चिकित्सा न करने पर भी रोग के मिट जाने से तथा आगम के प्रमाण से अन्य विद्वान अपस्मार को दोषजन्य नहीं मानते हैं। अर्थात् आगंतुक मानते हैं।

अपतन्त्रक एवं अपतानक

अपतंत्रक एवं अपतानक दोनों ही ऐसी व्याधियां हैं जिनकी गणना मानसिक रोगों के अन्तर्गत की जा सकती है। चरक तथा वाग्भट दोनों ने इनका उल्लेख मानसिक रोगों के साथ किया है।[१] भेल ने अपतंत्रक का जो निदान प्रस्तुत किया है, वह अन्य मानसिक रोगों के निदान से बहुत कुछ मिलता-जुलता है चरक तथा सुश्रुत ने इन्हें अलग अलग, किन्तु वाग्भट ने एक ही रोग माना है। (सोऽपतंत्रक: स एव चापतानाख्यो - - -) भेलसंहिता में केवल अपतंत्रक का ही उल्लेख मिलता है, अपतानक का नहीं।

अपतानक के लक्षण

दृष्टि का पूर्णतया आच्छादित होना अर्थात् रूपग्रहण में असमर्थता या पथरा जाना, संज्ञानाश, कंठकूजन, दौरे से मस्तिष्क के मुक्त हो जाने पर स्वस्थ होना तथा दौरा आने पर पुन: मूर्छित हो जाना आदि इसके लक्षण हैं। रोगके अधिक उग्ररूप धारण कर लेने पर निम्नांकित लक्षण भी देखने में आते हैं— भौहों का टेढ़ा होना, शिश्न की उत्तेजना में कमी, पसीना, कम्प, असम्बद्ध भाषण, शैय्या से भूमि पर गिरना, बहिरायाम से ग्रसित होना आदि।[२]

१- सोन्मादमदमूर्च्छाया: सापस्मारापतानका।
   च० नि०, २४, ५६ तथा अ०हृ० नि०, ६-९।

२- अपतानकिनमस्त्रस्ताक्षं ... मनस्तब्धमेढ्रमस्वेदनमवेपनमप्रलापिनमखट्वापातिनम-
   बहिरायामिनं चोपक्रमेत।
   सु० चि०, ५-१८।

कुछ विद्वानों अपतानक के तीन भेद बताए हैं

१- दण्डापतानक,

२- अन्तरायाम,

३- बहिरायाम ।

१- दण्डापतानक

वाग्भट्ट ने इसे दण्डक की संज्ञा दी है । इसमें दौरे के समय शरीर दण्डे के समान सीधा और कड़ा हो जाता है । मनुष्य की सारी चेष्टाएं नष्ट हो जाती हैं । कुछ आचार्यों ने कृच्छ्रसाध्य बतलाया है ।

२- अन्तरायाम

अन्तरायाम में शरीर धनुषाकार अन्दर (पेट) की ओर खिंच जाता है । आंखों में जड़ता, जम्भाई, दांत लगना, कफ, वमन, पार्श्वों में वेदना, वाणी, हनु, पीठ और सिर का ग्रसित होना आदि लक्षण इस रोग में देखने को मिलते हैं ।

३- बहिरायाम

बहिरायाम में शरीर अन्तरायाम के ठीक विपरीत दिशा अर्थात् पीठ की ओर झुक जाता है । इसके प्रमुख लक्षण निम्नांकित हैं - ग्रीवा में कष्ट, दांतों तथा मुख में विवर्णता, पसीने की अधिकता, शरीर का ढीला होना आदि । यदि इसमें वक्ष, कटि तथा जंघाओं का भंजन हो जाए तो विद्वान् इसे असाध्य मानते हैं ।

अपतन्त्रक के लक्षण

अंगों का धनुषाकार झुक जाना, आक्षेप, मूर्च्छा, सांस लेने में (विशेषकर दौरे के समय) कठिनाई, आंखों का स्तब्ध रह जाना, अथवा बन्द हो जाना, गले में कबूतर के समान घुर-घुर शब्द होना, संज्ञा अथवा ज्ञान का

नष्ट हो जाना वातवेग के शान्त हो जाने पर रोगी का स्वस्थ हो जाना तथा आक्रमण हो जाने पर पुन: अस्वस्थ हो जाना ।

ध्यान से देखने पर पाया जाता है कि दोनों ही रोगों के लक्षणों में बहुत कुछ साम्य है । सम्भवत: इसी कारण वाग्भट्ट ने दोनों का एक ही में समावेश कर दिया है और उसी के आधार पर उनका निदान प्रस्तुत किया है । दोनों में ही वातवेग का आक्रमण होता है, दौरे पड़ते हैं । दौरे के समय रोगी अस्वस्थ हो जाता है और रोगानुकूल लक्षण प्रकट होने लगते हैं । जैसे जैसे दौरे की तीव्रता बढ़ती है लक्षण भी अधिकाधिक स्पष्ट हो जाते हैं । इसकी चरम परिणति संज्ञानाश में हो सकती है । दौरे के शान्त होने पर रोगी पुन: अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगता है ।

निदान

अपतंत्रक और अपतानक दोनों ही वातरोग माने गए हैं । रूक्ष अन्नपान के सेवन से अधारणीय वेगों के धारण से, अत्यधिक साहसिक कार्यों के करने से नस्य और वस्ति के अत्यधिक अथवा विकृति प्रयोग से, पूज्यों के अपमान से एवं अत्यधिक भोजन करने से वायु विकृति हो जाती है । यह प्रकुपित पक्वाशयगत वायु जब नीचे की ओर नहीं निकल पाती तो हृदय में आश्रित नाड़ियों में प्रवेश कर हृदय, सिर और अंगों को दबाती हुई शरीर के चारों ओर से आक्षेपयुक्त करती हुई उसे धनुष के समान आगे-पीछे झुका देती है । अथवा सीधा तान देती है ।

---ाभिनिवेश

अतत्व का अर्थ है अयथार्थ, अवास्तविक अथवा असत्य, अभिनिवेश का अर्थ है गति, पैठ लीनता, हठ अथवा दुराग्रह । अत: अतत्वाभिनिवेश का शाब्दिक अर्थ हुआ अयथार्थ अथवा असत्य के लिये हठ अथवा दुराग्रह करना । जिस प्राणी का मन स्वस्थ है जिसकी मानसिक क्रियाएं सम्यक्रूपेण हो रही हैं, वह इस प्रकार का हठ अथवा दुराग्रह कभी नहीं कर सकता । ऐसा करना निश्चित रूप से

मानसिक अस्वस्थता की निशानी है । चरक के अनुसार जो रोगी सत्य को असत्य, असत्य को सत्य, हित को अहित, अहित को हित, नित्य को अनित्य, अनित्य को नित्य मान कर उसी के अनुकूल चिन्तन एवं आचरण में प्रवृत्त होता है उसे अतत्वाभिनिवेश से पीड़ित जानना चाहिए ।

अतत्वाभिनिवेश के लक्षण

चरक ने अतत्वाभिनिवेश के प्रमुख चार लक्षण बताए हैं –

१) हृदय में व्याकुलता,
२) मूढ़ता,
३) चेतना की अल्पता,
४) बुद्धि की विषमता ।

आयुर्वेद में मानसिक रोगों के निदान में हृदय शब्द प्राय: मस्तिष्क का भी बोध करवाता गया है । यह भी कहा जा सकता है कि आज जिन बहुतसी मानसिक कही जानेवाली क्रियाओं को मस्तिष्क से आविर्भूत माना जाता है, प्राचीन काल में वे हृदय में ही आश्रित मानी जाती थी । हृदय को आत्मा और मन का अधिष्ठान माना जाता था । अत: हृदय की व्याकुलता इस सन्दर्भ में हैरानी, परेशानी, बेचैनी, चिन्ता, मानसिक द्वन्द्व, तनाव आदि की द्योतक हो सकती है । मूढ़ता का अर्थ है मूर्खता, अज्ञान, बेवकूफी, मानसिक स्तब्धता, किंकर्तव्यविमूढ़ता आदि । मूढ़ ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है जिसमें परिस्थिति को समझने की क्षमता न हो । उसके अनुरूप सूझ न हो । जो अपना आगा-पीछा न सोच सकता हो अथवा जिसकी बुद्धि कुण्ठित हो गई हो ।

निदान

चरक के अनुसार अतत्वाभिनिवेश नामक रोग उन्हीं प्राणियों को होता है जो मलिन आहारशील और आए हुए वेगों को रोकने वाले होते हैं तथा जिनकी आत्मा रज और तम से आवृत रहती है । इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि

जिनका सत्व अर्थात् मन पहले से कमजोर रहता है और फलत: जो प्रज्ञापराधजन्य कार्यों में लगे रहते हैं, ऐसे प्राणी जब शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष आदि हेतुओं का अधिकमात्रा में सेवन कर लेते हैं तब उनके दोष स्वभावत: विकृत हो जाते हैं । ये विकृत अथवा प्रकुपित दोष मनोवाही एवं बुद्धिवाही शिराओं के द्वारा हृदय में जाकर उसे दूषित कर देते हैं, उसी में अपना स्थान बना लेते हैं । रज और तम के बढ़ने से बुद्धि और मन आवृत हो जाते हैं, ढंक जाते हैं । इससे हृदय में व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है । मन एवं बुद्धि की क्रियाएं गड़बड़ा जाती हैं । मूढ़ता बढ़ जाती है ।

अनिद्रा

मानस रोगों का क्षेत्र अधिक विस्तृत है । निद्रा से क्लान्त मानव मन विश्रान्त प्राप्त होता है । नाना प्रकार के विचारों अनुभूतियों और कल्पनाओं का निद्रा काल में अभाव हो जाता है । निद्रा का हीन योग अथवा विकृत योग ही अनिद्रा कहलाता है । अनिद्रा का रोगी एक विचित्र प्रकार की अशान्ति का अनुभव करता है और प्राय: प्रयास करने पर भी उसे नींद नहीं आती । जितना ही वह नींद के समीप पहुंचना चाहता है नींद उससे दूर भागती है । आयुर्वेद के अनुसार निद्रा नाश का प्रमुख कारण वात अथवा पित्त की वृद्धि मन का ताप मानसिक आशंकाएं संघर्ष अन्तर्द्वन्द्व है अथवा अभिघात है । यह बात ध्यान रखने योग्य है कि वात वृद्धि की सभी स्थितियों में निद्रा का नाश नहीं होता निद्रा नाश का कारण प्राय: वे ही वात रोग होते हैं जिनमें वेदना अथवा शूल की प्रधानता पाई जाती है । अनिद्रा का भी अधिकार क्षेत्र विस्तृत है । पैत्तिक रोगों में प्राय: ज्वर, शोष, प्लोष, दाह, अन्तर्दाह आदि के साथ ही निद्रा नाश पाया जाता है । मनस्ताप भी इसी सन्दर्भ में मानसिक तनाव द्वन्द्व, अन्तर्द्वन्द्व संवेगात्मक संकट की स्थितियों का घोतक है । भय, क्रोध, चिन्ता, द्वेष आदि सभी का इसमें समावेश हो जाता है । ताप यहां पर शोकताप तथा राज्यकामा दोनों का बोधक है । अभिघात शरीर पर विशेष कर सर पर लगी चोट अथवा घाव का बोधक है । अभिघात से नींद न आने का खास कारण वेदना अथवा पीड़ा है ।

अतिनिद्रा

'अति सर्वत्र वर्जयेत' उक्ति के अनुसार किसी विषय की पराकाष्ठा बुरी होती है । निद्रा का अतियोग अथवा नींद का अधिक आना 'अतिनिद्रा' कहलाता है । भूख लगना अच्छा लक्षण है किन्तु अत्यधिक भूख लगने से भस्मक रोग की भी कल्पना की जा सकती है । अनिद्रा के समान ही अनावश्यक अतिनिद्रा भी शास्त्र के अनुसार स्वास्थ्य के लिये घातक सिद्ध होती है ।

अतिनिद्रा के कारण

अतिनिद्रा का प्रमुख कारण शरीर में कफ की वृद्धि है । कफ की वृद्धि से पाकाग्नि मन्द पड़ जाती है । अहार इसका ठीक से परिपाक नहीं होता यही आहार रसवह स्रोतों को अवरुद्ध कर देता है । स्रोतों के अवरोध से शरीर में शिथिलता आती है । शिथिलता से आलस्य और आलस्य निद्रा का कारण होता है ।

भ्रम

भ्रम, अविद्या, मोह, अज्ञान आदि शब्दों का समानार्थक शब्द है । इसका शाब्दिक अर्थ है घूमना, लड़खड़ाना, घबड़ाना, परेशान होना आदि आयुर्वेदोक्त भ्रमरोग का प्रधान लक्षण है । सर का चकराना आसपास की सभी चीजों का घूमता हुआ प्रतीत होना रोगी का चक्कर खाकर गिर पड़ना । इसमें रोगी की संज्ञा आंशिक रूप से ही नष्ट होती है ।

भ्रम की भयंकरता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह है कि भक्ति शिरोमणि तुलसीदास भ्रम के वशीभूत होकर आर्तभाव से प्रार्थना करते हैं - ' हे हरि, मेरे इस मोहजन्य भ्रम को क्यों दूर नहीं करते । यह प्रपंचात्मक जगत् मिथ्या, असत् है तथापि आपकी महती कृपा के अभाव में यह सत्य सा प्रतीत होता है । मैं यह जानता हूं (शरीर, पुत्रादि विषय) यथार्थ में नहीं है, किन्तु इतने पर भी हे स्वामी इस संसार से मुक्ति नहीं पाता । मैं किसी दूसरे के द्वारा बांधे बिना ही अपने हठ से तोते की तरह बरबस बंधा पड़ा हूं जैसे किसी को स्वप्न में अनेक प्रकार के

रोग हो जायं जिससे मानो उसकी मृत्यु ही आ जाय और बाहर से वैद्य अनेक उपाय करते रहें, परन्तु जब तक वह जागता नहीं तब तक उसकी पीड़ा नहीं मिटती । इसी प्रकार माया के वात्याचक्र में पड़कर मिथ्या संसार की अनेक पीड़ा भोग रहे हैं और उन्हें दूर करने के लिये मिथ्या उपाय कर रहे हैं ।

तन्द्रा

तन्द्रा का शाब्दिक अर्थ है[१] आलस्य, थकावट, क्लान्ति, ऊंघ, शैथिल्य आदि । आयुर्वेद में यह शब्द मनोदैहिकतंत्र की एक स्थिति विशेष के लिये प्रयुक्त हुआ है । लक्षणों का वर्णन करते हुए सुश्रुत में कहा गया है कि जिस रोग में इन्द्रियां अपने अर्थों को ठीक से ग्रहण नहीं करती शरीर में भारीपन मालूम पड़ता है, जम्हाइयां आती हैं, रोगी थकावट तथा नींद से पीड़ित हुए के समान चेष्टा करता है, उसे तन्द्रा कहते हैं । उक्त लक्षणों से स्पष्ट है कि तन्द्रा वस्तुत: संन्यास अथवा तामसिक निद्रा का ही छोटा रूप है । यह उन्हीं रोगों में लक्षणरूप में पाई जाती है जिनमें संन्यास पाया जाता है । कभी कभी यह बढ़ कर स्वतन्त्र रोग का रूप भी धारण कर लेती है । इसकी गम्भीरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वाग्भट्ट ने इसे साढ़े तीन दिन तक तो साध्य माना है, फिर असाध्य ।

तन्द्रा तमोगुणयुक्त वात और कफ की विकृति से उत्पन्न होती है । मधुर, स्निग्ध एवं गुरु अन्न के सेवन से चिन्ता, श्रम, शोक और बहुत दिनों से किसी एक ही रोग से पीड़ित रहने से कुपित हुई वायु कफ को बढ़ाकर जब हृदय प्रदेश में प्रवेश कर जाती है तब हृदय आश्रित ज्ञान वह स्रोतों को आच्छादित कर तन्द्रा रोग को उत्पन्न करती है ।

क्लम

क्लम का शाब्दिक अर्थ है थकावट, शिथिलता, क्लान्ति, ग्लानि आदि । सुश्रुत ने इस शब्द का प्रयोग मनोदैहिक तंत्र की एक विकृत अवस्था विशेष के लिए

१- विनयपत्रिका, गीताप्रेस, पद १२१।

किया है । उन्हीं के शब्दों में ` श्वास की कठिनाई न होकर बिना परिश्रम के शरीर में जो थकावट बढ़ती है, जो इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करने में बाधा उत्पन्न करती है उसी अवस्था को क्लम समझना चाहिए ` ।

उक्त परिभाषा के अनुसार क्लम रोग पाश्चात्य मानसोपचार में बहुचर्चित न्यूरेस्थीनिया के समकक्ष मालूम होता है । कुछ विद्वानों ने न्यूरेस्थीनिया की परिभाषाएं इस प्रकार की हैं –

१- शारीरिक एवं मानसिक सामर्थ्य का अभाव, असामान्य श्रान्ति क्षमता तथा प्राय: काल्पनिक भयों की उत्पत्ति से युक्त लक्षणों के साथ पायी जानेवाली अवस्था ।

- बेरैन ।

२- अत्यधिक श्रान्ति क्षमता तथा मनोदैहिक लक्षणों से युक्त एक प्रकार का मनोस्नायविक विकार ।

- पेज ।

३- अत्यधिक श्रान्ति क्षमता अथवा शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार की शक्ति एवं सामर्थ्य के अभाव तथा रोग भ्रम और कभी कभी काल्पनिक भयों से युक्त अवस्था विशेष ।

- जेम्स डिवर ।

क्लम अथवा न्यूरेस्थीनिया का स्वरूप

सुश्रुत द्वारा प्रस्तुत क्लम की परिभाषा में उसके तीन प्रधान लक्षण बतलाये गये हैं –

१) स्वाभाविक अथवा श्रमजन्य थकान से सम्बन्धित लक्षणों का अभाव,
२) अकारण बढ़ती हुई थकान की अनुभूति, तथा
३) बुद्धि, इन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की विषयों को ग्रहण करने की क्षमता में विकृति अथवा बाधा ।

पाश्चात्य मानसोपचार शास्त्रियों ने भी न्यूरेस्थीनिया की दो प्रमुख विशेषताएं बतलाई हैं - (१) अत्यधिक तथा अनवरत बनी रहनेवाली थकावट, तथा
(२) अन्य दैहिक लक्षण ।

थकान

क्लम अथवा न्यूरेस्थीनिया से पीड़ित रोगी की थकान स्वाभाविक थकान से भिन्न होती है । इस सम्बन्ध में निम्नांकित बातें ध्यान देने योग्य हैं -

१- स्वाभाविक थकान का कोई कारण मुख्य होता है - यथा, अत्यधिक शारीरिक अथवा मानसिक श्रम, पर क्लम से पीड़ित रोगी की थकान का कोई स्पष्ट कारण नहीं प्रतीत होता । पेज के शब्दों में - ` वह वास्तविक अतिश्रम का परिणाम नहीं होती । रोगी के कार्य-इतिहास में इस प्रकार के जटिल लक्षणों को उत्पन्न करने वाली कोई भी बात नहीं पायी जाती । यह थकान प्रधानत: एक मनोवैज्ञानिक घटक होती है ।

२- स्वाभाविक थकान में उसके सहवर्ती साधारण शारीरिक लक्षण - यथा, रस, रक्त आदि में विशेष प्रकार के तत्त्व-स्नायुओं की दुर्बलता, श्वास की क्रिया में गड़बड़ी आदि पाये जाते हैं पर क्लमजन्य थकावट में इन लक्षणों का प्राय: अभाव पाया जाता है ।

३- स्वाभाविक थकान नींद अथवा आराम से दूर होता है पर क्लम रोगी की थकान पर नींद अथवा आराम का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता । पेज के शब्दों में - ` महीनों निष्क्रिय पड़े रहने पर भी रोगी अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता को पुन: प्राप्त करने में असफल रहता है ।

४- स्वाभाविक थकान की मात्रा श्रम की मात्रा पर निर्भर है । वह घटती-बढ़ती है । पर क्लम के रोगी की थकान में यह बात नहीं पायी जाती । वह प्राय: बढ़ती ही रहती है - अनायास: श्रमो देहे प्रवृद्ध: ।`

५- पेज ने न्यूरेस्थीनिया के रोगी की थकान की एक विशेषता यह भी बताई है कि वह चयनात्मक होती है । सम्भव है रोगी काम की बात करने में पांच मिनट में ही थक जाए, पर अपने रोग के बारे में घंटों बात करता रहे । घर का काम उसे थकानेवाला हो पर बाहर वह घंटों नाच-रंग में मस्त रहे ।`

अन्य दैहिक लक्षण :- क्लम से पीड़ित रोगी के दैहिक लक्षणों में प्रमुख निम्नांकित हैं - गले, सर तथा कंधों की मांस-पेशियों में जकड़ाहट, पेट की गड़बड़ी (विशेषत: वायुजन्य) पीठ में दर्द, सरदर्द, अन्य अस्पष्ट दर्द, पाचन शक्ति की दुर्बलता, चीजों को निगलने में कठिनाई, नींद की गड़बड़ी, अनिच्छा, चिड़चिड़ापन आदि। रोग भ्रम तथा काल्पनिक भय भी कभी-कभी पाए जाते हैं ।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि न्यूरेस्थीनिया के रोग से पीड़ित रोगी के जिन लक्षणों की चर्चा यहां विस्तार से की गई है उनमें से अधिकांश का समावेश ` इन्द्रियार्थप्रबाधक: ` के अन्तर्गत हो जाता है । ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों में से सभी के निष्क्रिय एवं बाधित हो जाने पर शरीर की अधिकांश क्रियाएं निश्चित रूप से गड़बड़ा जाएंगी ।

मद

मद शब्द का प्रयोग आंशिक संज्ञाहीनता अथवा मतवालेपन के लिए किया गया है । मद से मतवाला, मदन, आदि शब्दों का सृजन हुआ है मादक वस्तुओं, विशेषकर मदिरापान कर लेने पर प्राणी की जो अवस्था होती है, सारे मद प्राय: उसी स्वरूप के होते हैं । वे शीघ्र ही उत्पन्न होती हैं और शीघ्र ही शान्त भी हो जाते हैं । मद निम्नांकित सात प्रकार का माना गया है । रुक-रुककर, अस्पष्ट, अधिक तथा शीघ्रतापूर्वक बोलना, समस्त चेष्टाओं का चंचल तथा अव्यवस्थित होना एवं शरीर की आकृति का रूखा, श्याम अथवा धूसर अथवा अरुण वर्ण का होना ।

पित्तज मद

क्रोधी कठोर वचन बोलना, मारपीट तथा लड़ाई झगड़े में अधिक प्रेम रखना शरीर की आकृत का रक्त अथवा काले वर्ण का होना ।

कफज मद

स्वल्प तथा असम्बद्ध वचन बोलना तन्द्रा तथा आलस्य से युक्त रहना, सदैव चिन्तातुर रहना एवं शरीर के वर्ण का पाण्डु होना ।

सन्निपातज मद

उक्त तीनों ही प्रकार के लक्षणों का सम्मिलित रूप इसमें पाया जाता है ।

रक्तज मद

पित्तज मद के लक्षणों के साथ साथ अंगों तथा दृष्टि का स्तब्ध रह जाना ।

मद्यजनित मद

चेष्टाओं, स्वर एवं अंगों की विकृति मद्यजनित मद के लक्षण हैं ।

विषज मद

कम्प तथा अतिनिद्रा विषज मद है । इसमें सभी मदों की अपेक्षा वेगाधिक्य होता है ।

वाग्भट्ट ने मद के उक्त सात भेद बतलाए हैं । पर चरक ने प्रथम केवल चार ही भेद स्वीकार किए हैं । बाद के तीनों भेदों – रक्तज, मद्यजनित एवं विषज को उन्होंने प्रथम चार के अन्तर्गत ही माना है । उनके अनुसार वे सभी दोषजनित ही हैं ।

मूर्छा

मूर्छा संज्ञाहीनता की वह अवस्था है जिसमें प्राणी का सुख दु:ख का ज्ञान पूर्णत: अथवा अधिकांशत: नष्ट हो जाता है । सुश्रुत के शब्दों में ` वातादि दोषों से संज्ञावाहक नाड़ियों के आच्छादित हो जाने पर सहसा नेत्रों के आगे सुख दु:ख के विवेक को नष्ट कर देने वाला अन्धकार छा जाता है । इसी अवस्था को मोह या मूर्छा कहते हैं ।

मूर्छा का पूर्वरूप

हृदय में पीड़ा, जम्हाई तथा संज्ञा दौर्बल्य से सभी प्रकार की स्थितियां मूर्छा के पूर्वरूप हैं । मूर्छा निम्नांकित सात प्रकार की मानी गई है ।

वातज मूर्छा

मूर्छित होते समय आकाश को नीले, काले अथवा लाल रंग का देखते हुए मूर्छित हो जाना तथा शीघ्र ही संज्ञा लाभ कर लेना, शरीर में कम्पन, अंग-प्रत्यंगों का शिथिल होना हृदय में पीड़ा, कृशता तथा शरीर के वर्ण का काला या लाल हो जाना ।

पित्तज मूर्छा

सभी पदार्थों को लाल, हरा, अथवा पीला देखते हुए अन्धकार में प्रवेश करना, आंखों के आगे अंधेरा छा जाना, संज्ञा लाभ करते समय शरीर का पसीने से तर रहना, प्यास की अधिकता शरीर में ताप का अनुभव, पतले दस्त आंखों का लाल या पीला तथा व्याकुलतायुक्त रहना एवं रोगी के चेहरे का पीला पड़ जाना, पित्तज मूर्छा है ।

कफज मूर्छा

मूर्छित होते समय आकाश मेघाच्छन्न अथवा घने अंधकार से घिरा हुआ जैसा अस्पष्ट अथवा धुंधला देखते हुए अंधकार में प्रवेश करना, देर से होश में आना,

अंगों का भारी वस्त्रों अथवा गीले चमड़े से वेष्ठित प्रतीत होना, मुख से लाल स्राव तथा मिचली की अधिकता ।

सन्निपातज मूर्छा

तीनों दोषों के मिले जुले लक्षणों का पाया जाना तथा बिना वीभत्स चेष्टाएं किये हुए अपस्मार के रोगी की भांति [illegible] ` सहसा संज्ञाशून्य हो जाना । यहां इस ओर संकेत कर देना अनुचित न होगा कि अपस्मार के रोगी में लक्षणों के अतिरिक्त फेन, वमन, दंतकटन तथा आंखों की विकृति भी देखी जाती है । सन्निपातज मूर्छा में इनका अभाव रहता है ।

रक्तज मूर्छा

अंगों का स्तब्ध रह जाना आंखों की टकटकी बंधना तथा गहरी सांसें लेना, प्रलाप करना ।

मद्यजनित मूर्छा

प्रलाप करना एवं विक्षिप्त चित्त होकर तब तक पड़े रहना जब तक कि मद्य का परिपाक न हो जाय ।

विषज मूर्छा

कम्पन, निद्रा, प्यास, आंखों के आगे अंधेरा छाना आदि लक्षणों की प्रधानता विशिष्ट विष के अनुरूप विशेष प्रकार के लक्षणों की उत्पत्ति । सुश्रुत में मूर्छा के छह भेद माने गये हैं -

१- वातज, २- पित्तज, ३- कफज, ४- रक्तज,
५- मद्यज, तथा ६- विषज । लेकिन चरक तथा वाग्भट ने मूर्छा के प्रारंभिक चार भेदों को ही स्वीकार किया है ।

संन्यास

सन्यास जीवित प्राणियों में संज्ञाहीनता की गम्भीरतम अवस्था है । इसमें रोगी की वाणी,उसके शरीर तथा मन की समस्त क्रियाएं अवरुद्ध हो जाती हैं । केवल हल्की-हल्की सांस चलती रहती है । रोगी की अवस्था ठीक सूखे काठ अथवा मुर्दे के समान हो जाती है । ऐसे में यदि शीघ्र ही चिकित्सा की व्यवस्था न की गई तो रोगी शीघ्र ही मर जाता है ।[१]

सन्यास निम्नांकित विकारों में लक्षण के रूप में भी पाया जाता है— आंत्रिक ज्वर, आमवात ज्वर, घातक विषमज्वर, न्यूमोनिया, मसूरिका इत्यादि सन्निपातिक ज्वरों के अन्त में, सभी प्रकार के मस्तिष्कावरणशोथ तान्त्रिक मस्तिष्कशोथ, मस्तिष्क का अर्बुद या विद्रधि, मूत्रविषमयता, मधुमेह की अन्तिम अवस्था, वैनाशिक पाण्डुरोग, मस्तिष्काघात, सिर पर आघात, मस्तिष्क में रक्तस्राव या रक्त का जम जाना, पक्षाघात, लू लगना, अत्यधिक रक्तस्राव तथा अपस्मार आदि में ।

चरक द्वारा प्रस्तुत निदान को ध्यान में रखते हुए पाश्चात्य मनोविकार विज्ञान की भाषा में हम मद की ` स्टेट आफ् सोपोर` से, मूर्च्छा की ` डिलीरियम्, ` स्टिपोर` तथा ` अचेतन्य स्टेट ` के मिले जुले रूप से सन्यास

१- वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः ।

सन्यासं सन्निपतिताः प्राणायतनसंश्रयाः ।।

कुर्वन्ति तेन पुरुषः काष्ठीभूतोमृतोपमः ।

म्रियते शीघ्रं शीघ्रं चेच्चिकित्सा न प्रयुज्यते ।।

- च०स० नि०, ६।३७-३८

प्रभूतदोषस्तमसो विकारस्सम्मूर्च्छितो नैव विबुध्यते यः ।

संन्यस्त संज्ञोभृशदुश्चिकित्स्यो ज्ञेयस्तदा बुद्धिमता मनुष्यः ।।

- सु उ०, ४६।२१

की ` मोमाटोव ` स्टेट से तुलना कर सकते हैं ।` नीचे इन रोगों का भी विवरण दिया जा रहा है ।

मदात्यय

मादक वस्तुओं के सेवन करने से जो मानसिक विकृतियां पैदा होती होती हैं, उन्हीं को मदात्यय रोगों के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए । मदात्यय की चिकित्सा के दो पक्ष हैं- मादक वस्तुओं के सेवन से होने वाले उपद्रवों को शान्त करना तथा मद्यपान की आदत छुड़ाना । आयुर्वेद में मदात्यय के प्रथम पक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया गया है और दूसरे पक्ष की ओर कम अथवा नहीं के बराबर । इसका प्रमुख कारण यही प्रतीत होता है कि उस जमाने में सम्भ्रान्त समाज में मद्यपान की प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित थी और लोग इसे बुरा नहीं मानते थे । आयुर्वेद की प्रमुख संहिताओं में मद्यपान की विधियों का बड़े ही रोचक ढंग से विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । अल्प मात्रा में उसका सेवन धर्म, अर्थ, काम को प्रसन्नता देने वाला बतलाया गया है । उसकी प्रशस्तियां गायी गई हैं । मदात्यय की मद्य द्वारा ही चिकित्सा का विधान किया है । चरक ने कहा है ` मद्य द्वारा उखड़े हुए दोषों से स्रोतों में रुकी हुई वायु सिर, अस्थियों और सन्धियों में तीव्र वेदना उत्पन्न करती है । ऐसी दशा में दोषों को ढीलाकर निकालने के लिये अन्य अन्न द्रव्यों के रहते हुए भी व्यवायी, उष्ण एवं तीक्ष्ण होने के कारण उस व्यक्ति के लिये विशेषरूप से मद्य का सेवन कराना ही उचित है । विधिपूर्वक मद्य सेवन करने से स्रोतों के निबन्ध खुल जाते हैं । वायु का अनुलोमन होता है , भोजन में रुचि उत्पन्न होती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, वायु का अनुलोमन होने से सिर आदि प्रदेशों की वेदना और अन्य उपद्रव नष्ट हो जाते हैं एवं मदात्यय रोग शान्त हो जाता है ।` वाग्भट्ट ने भी कहा है- ` मद्य के हीन, मिथ्या अथवा अतिमात्रा में पीने से जो रोग पैदा होता है वह रोग उसी मद्य की सममात्रा पीने से शान्त होता है ।`[२]

१- वी०मोरोजोव एंड दृमी०रोमकेको, न्युरोपैथोलाजी एंड साइकियाट्री
२- हीनमिथ्याविपीतेन यो व्याधिरूपजायते ।
   समपीतेन तेनैव स मद्येनोपशाम्यति ।।
   -अ०सं०चि०, ८-३

उपचार के लिये रोगी की प्रकृति, प्रकुपित दोष तथा उसके बलाबल का विचार कर विशेषरूप से तैयार की गई मदिरा का उचित अनुपान के साथ पान कराया जाता है। साथ में उपयुक्त पथ्यादि की व्यवस्था की जाती है। दैहिक के साथ साथ रोग के मनोवैज्ञानिक पक्ष का भी समुचित ध्यान रखा जाता है। उसका मन शान्त रहे, प्रसन्न रहे, यह देखना भी चिकित्सक का काम है। मदात्यय में जिस रोग की अधिकता हो पहले उसी की चिकित्सा करे, यदि तीनों दोष समानरूप से बढ़े हों तो, पहले कफ की, फिर पित्त की और अन्त में वायु की चिकित्सा करनी चाहिए। मदात्यय में प्राय: पित्त और वायु की ही अधिकता होती है।[१]

मदोद्वेग

मदोद्वेग भी एक प्रकार का मानसिक रोग है। बिना किसी वास्तविक रोग के ही रोगी अपने को गम्भीर व्याधियों से पीड़ित मानता है। वह बार बार चिकित्सक बदलता रहता है। उसे सदैव रोग शंका बनी रहती है और उन काल्पनिक रोगों से वह चिन्तित रहता है। नींद न आना, बेचैनी, चिन्ता आदि लक्षण उसमें होते हैं। यदि किसी एक रोग की शंका उसकी दूर कर दी जाय तो किसी दूसरे रोग की शंका उसे उत्पन्न हो जाती है।

संत्रास अथवा फोबिया

भीति भी अस्वाभाविकभय का ही एक रूप है। इसमें प्राणी का भय किसी एक ही वस्तु अथवा परिस्थिति तक सीमित रहता है। अन्य वस्तुओं

१- यं दोषमधिकं पश्येत्तस्यादौ प्रतिकारयेत ।
कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यदोषे मदात्यये ।।
पित्तमारुतपर्यन्त: प्रायेण हि मदात्यय: ।
- च०चि०, ६-२।

के साथ ऐसी बात नहीं पायी जाती । इसमें प्राणी का भय प्राय: ऐसी चीजों पर केन्द्रित होता है जो साधारणत: भय का कारण नहीं होती । इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि रोगी जानता है कि उसका भय मूर्खतापूर्ण है, लेकिन फिर भी न तो वह उसकी व्याख्या कर सकता है और न उस पर नियंत्रण ही प्राप्त कर सकता है । भीति के अनेक रूप हैं । यथा –

१) ऊंची जगहों का भय,
२) खुली जगहों का भय,
३) पीड़ा का भय,
४) मनुष्यों का अथवा किसी मनुष्य विशेष का भय,
५) बन्द अथवा तंग जगहों का भय,
६) दफ़नाजाने का भय,
७) स्त्रियों अथवा किसी स्त्री विशेष का भय,
८) रक्त का भय,
९) अंधेरे का भय,
१०) रोग का भय,
११) पाप का भय,
१२) भय का भय, भयभीत होने का भय,
१३) मृत्यु का भय,
१४) पशुओं का भय ।

इसी प्रकार इसके अन्य रूपों की भी कल्पना की जा सकती है ।

वात, पित्त, कफ एवं रज और तम के कारण उत्पन्न मानसिक रोग

जैसा पूर्वोल्लेख किया गया है, ये आयुर्वेद के अन्तर्गत वर्णित प्रमुख मानसिक रोग हैं । इन रोगों की चिकित्सा का वर्णन भी आयुर्वेद में विस्तृतरूप से उपलब्ध है । इन रोगों की चिकित्सा में मुख्यरूप से औषधियों का प्रयोग किया जाता है ।

रज एवं तम की विकृति के कारण उत्पन्न मानसिक रोग

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, रज एवं तम के विकार से उत्पन्न निम्नलिखित व्याधियों का उल्लेख चरकसंहिता में किया गया है –

१- काम,
२- क्रोध,
३- लोभ,
४- मोह,
५- ईर्ष्या,
६- मान,
७- मद,
८- शोक,
९- चिन्ता,
१०- उद्वेग,
११- भय,
१२- हर्ष ।

काम

आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिकों ने काम को प्रेम का ही एक अंग माना है । उनके अनुसार प्रेम काम का ही उन्नत रूप है । प्रणय, स्नेह, वात्सल्य, भक्ति इत्यादि येनकेन प्रकारेण इसी की अभिव्यक्तियां हैं । प्राचीन आचार्यों द्वारा शृंगार को रसराज माना गया है और उसका स्थायी भाव रति माना गया है । वात्सल्य, भक्ति आदि को उसी के अन्तर्गत माना जाता था, किन्तु समयानुसार भक्त कवियों एवं भक्ताचार्यों ने वात्सल्य और भक्ति को शृंगार से अलग स्वतन्त्र रस मानने लगे, किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी बहुत से विद्वान् इसको प्राचीन मतानुसार शृंगारान्तर्गत ही मानने के लिए तैयार हैं । भक्तिकालीन अधिकांश साहित्य किसी न किसी रूप में काम-प्रेरित ही मालूम पड़ता है । अप्रत्यक्ष रूप में रति की उसमें विवेचना बहुत है ।

` फ्रायड के अनुसार काम प्राणी में जन्मजात होता है तथा प्राणी के विकास के साथ-साथ वृद्धि होती रहती है । इस विकास-क्रम में उसे कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है । हर अवस्था की अपनी अलग-अलग विशेषताएं होती हैं । यौवनावस्था में इसका विकास अपनी चरमावस्था पर पहुंच जाता है । इसकी चरम परिणति युवक और युवतियों के शारीरिक सम्बन्ध के रूप में होती है । डा०भगवानदास के शब्दों में - `आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा गया है कि जन्मकाल से ही शुक्र कलामूर्धा से नीचे की ओर बढ़ने लगती है । सोलहवें वर्ष में (सामान्य अनुगम से) वह स्त्री पुरुष के स्तन तक आती है - इक्किसवें वर्ष में यह शुक्रकला पैर की उंगलियों तक पहुंचती है[१] ।`

काम की वृद्धि स्वाभाविक और अस्वाभाविक दोनों प्रकार से होती है । काम का अस्वाभाविक विकास अनेकानेक रूप में प्र प्रकट होता है । काम के ये रूप स्वयं अपने आप में मनोविकार हैं और यदि कुछ समय तक बने रहें तो अन्य मनोविकारों को भी उत्पन्न करते हैं ।

आयुर्वेद में रजस्वला स्त्री के साथ समागम आदि को भी मानसिक रोगों का कारण माना गया है । इसके अन्तर्गत हम अगम्यागमन तथा यौन-विचलन दोनों को ही ले सकते हैं अगम्यागमन से तात्पर्य उन स्त्री-पुरुषों के बीच संयोग से है जो सामाजिक, धार्मिक, नैतिक अथवा वैधानिक दृष्टि से वर्जित है । यौन विचलन से तात्पर्य वयस्क स्त्री पुरुषों के स्वाभाविक सम्बन्धों से परे अन्य उपायों द्वारा काम तृप्ति से है — यथा समलिंगरति, बालरति, जन्तुरति, प्रतीकरति, हस्तमैथुन, पीड़नानुरक्ति, दर्शनानुरक्ति, प्रदर्शनानुरक्ति, कामाभाव तथा अतिकामुकता आदि ।

आयुर्वेद की दृष्टि से सभी प्रज्ञापराध है और प्रज्ञापराध मानसिक रोगों का प्रमुख कारण है । ये क्रियायें दो रूपों में प्राणी को प्रभावित करती हैं । एक तो स्वयं इन क्रियाओं का शारीरिक क्रियाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ता है,

१- डा०भगवानदास, कामसूत्र की भूमिका, पृ०३।

जैसे अतिकामुकता में अत्यधिक शुक्र क्षय का अन्य अंगों पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है । पीड़नानुरक्ति में अन्य अंगों पर आघात लग सकता है । रजस्वला के साथ समागम करने से स्त्री के स्राव की मात्रा तथा रजोकाल में होने वाले कष्ट बढ़ जा सकते हैं । पुरुष के मूत्रांगों में एक विशेष प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न हो सकती है ।

दूसरे सामाजिक, धार्मिक, नैतिक अथवा अन्य इसी प्रकार के वर्जनों तथा मान्यताओं के कारण प्राणी में एक हीनताभाव अथवा अपराध भावना उत्पन्न हो जाता है । प्राणी कामावेश में आकर अगम्यागमन तो कर बैठता है पर बाद में पश्चाताप करता है, उसमें एक अपराध-भावना घर कर जाती है । इसी प्रकार हस्तमैथुन का शिकार जिसने हस्तमैथुन से होनेवाली अतिशयोक्तिपूर्ण हानियों को, पापों को पढ़ रखा है, हर बार आवेश में आकर हस्तमैथुन तो कर डालता है, पर हर बार बाद में पछताता है, बीमारियों का, पापों का भय उस पर सवार हो जाता है । वस्तुत: देखा जाय तो इन क्रियाओं का यह मानसिक प्रभाव ही अधिक घातक सिद्ध होता है और भाँति भाँति की निराधार शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों को जन्म देता है । बाद में सम्भव है ये ही काल्पनिक रोग वास्तविक रोगों का रूप धारण कर लें ।

आधुनिक मनोविकार विज्ञान भी यौन का असामान्य व्यवहार से गहरा सम्बन्ध मानता है । फ्रायड के अनुसार तो अधिकांश मनोविकार यौनभावना के दमन तथा विमार्गीकरण के ही प्रतिफल होते हैं । उसने तथा उसके अनुयायियों ने तमाम मानसिक रोगों की व्याख्या इसी आधार पर की है । उसके अनुसार यदि प्राणी का यौन जीवन सभी दृष्टियों से सामान्य हो तो उसे मानसिक रोगों के होने की सम्भावना कम से कम रहती है । आयुर्वेद ने असंयत काम को स्वयं एक मनोविकार माना है और उसकी मानसिक रोगों में गणना की है ।

क्रोध

मनोविकारों में क्रोध भी कम भयंकर नहीं होता । अधिकार और कर्तव्य के समान क्रोध और भय वस्तुत: एक ही मनोविकार के दो पहलू हैं ।

दोनों का प्रयोजन एक ही है। दोनों के अन्तर्गत प्राणी प्रतिकूल परिवेश और कठिन परिस्थितियों से अपनी सुरक्षा करना चाहता है । क्रोध में वातावरण पर हावी होकर और भय में वातावरण से भाग कर ।

गीता में क्रोध की उत्पत्ति काम से मानी गई है । ` काम्यते इति काम: ` के अनुसार जो चाह है वही काम है । गीता की वाणी है ` कामात् क्रोधो भिजायते `। जब प्राणी किसी पदार्थ की उपलब्धि करना चाहता है और कोई अन्य व्यक्ति या वस्तु उसकी उस प्राप्ति के रास्ते में बाधक बनने लगता है अथवा उसकी पाई हुई चीज को हानि पहुंचाने लगता है, उस समय उसके मन पर जो प्रतिक्रिया होती है, जो मनोविकार उमड़ता है, उसी को मनोविकार विज्ञान जगत् में क्रोध नाम से अभिहित किया जाता है । कभी कभी तो प्राणी बाधा, हानि अथवा अपमान की कल्पना मात्र से ही क्रोधाभिभूत हो जाता है ।

क्रोध बहुआयामी है, उसकी अभिव्यक्ति अनेकानेक रूप में होती है । क्रोधाभिभूत व्यक्ति के चेहरे पर आक्रोश की रेखा स्पष्ट भलकने लगती है, आंखें लाल हो जाती हैं, भौंहें टेढ़ी हो जाती हैं, माथे पर बल पड़ जाते हैं । नथुने फूल जाते हैं, दांतों पर क्रोध की स्पष्ट रेखा खिंच जाती है, मुट्ठियां बंध जाती हैं, वह डराने धमकाने, बहस करने, बुराभला कहने, आज्ञापालन से इनकार करने या इसी प्रकार के दुष्क्रामक एवं आक्रामक भावनाओं की उत्पत्ति होने लगती है वह जिस वस्तु या व्यक्ति पर क्रुद्ध होता है उस पर आक्रमण कर देता है उसे हानि पहुंचाने की कोशिश करता है । कभी कभी प्राणी जब अपने क्रोध को उपयुक्त वस्तु या पात्र पर निकाल नहीं पाता तो स्वयं अपने पर ही निकालने लगता है अपना सर पीटता है, बाल नोचता है, सर पटकता है, कभी कभी आवेश में आकर आत्मघात भी कर लेता है ।

अस्वाभाविक क्रोध के भी विविध रूप हैं, यथा - चिढ़चिढ़ापन, भगड़ालूपन, क्रोध का स्थानान्तरण क्रोध को किसी ऐसे व्यक्ति पर प्रदर्शित करना जो उसका पात्र नहीं, जैसे - लोकोक्ति प्रख्यात है - ` धोबी से जीत न पाए तो गधे के कान उमेठे `। उग्र क्रोध स्वयम् में एक मनोविकार और अन्य

मनोविकारों का लक्षण भी विषाद और उन्माद में यह एक प्रमुख लक्षण के रूप में पाया जाता है ।

लोभ

मनोविकारों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । भारतीय मनीषियों ने लोभ को षड्विकारों में प्रबल माना है । कबीर, तुलसी आदि सन्त और भक्त कवियों ने लोभ से बचने की बार बार शिक्षा दी है । कबीर ने तो यहां तक कह दिया है —

कामी क्रोधी लालची इनते भक्ति न होय ।

लोभ भक्ति की साधना में तो बाधक होता ही है, लोभी व्यक्ति कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय नहीं कर पाता । उसका विवेक नष्ट हो जाता है । महात्मा बुद्ध ने ` अपरिग्रह ` का उपदेश दिया है । अपरिग्रह लोभ का सर्वथा विरोधी है ।

मोह

लोक में मोह शब्द ममत्व के लिये प्रयुक्त होता है । मोह को एक प्रकार का अत्यन्त जटिल बन्धन माना गया है । लौकिक जितने भी बन्धन हैं मोह उनका शिरोमणि है । मोहाभिभूत व्यक्ति ईश्वरानुराग की अपेक्षा पुत्र, पत्नी, बन्धुबान्धव के प्रति अनुरक्ति को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानता है । मोह को अज्ञान का पर्याय भी माना गया है । मायामृग का लोकविश्रुत उदाहरण सामने है ।

ईर्ष्या

स्वक्षेत्रीय या स्ववर्गीय किसी भी व्यक्ति विशेष को अपनी अपेक्षा अधिक समर्थ देखकर यह विकार मन में जागृत होता है । ईर्ष्या ऐसी अग्नि है जो ईर्ष्यालु व्यक्ति के अन्तःकरण में धीरे धीरे सुलगती है और अन्त में उसका नग्न रूप समाज के समक्ष नग्नरूप में उपस्थित हो जाता है । राजनीति में

ईर्ष्या को विशेष महत्त्व प्राप्त है । एक राजनेता दूसरे राजनेता को देखकर अपने हृदय के संकुचित भावनाओं को व्यक्त करता है । यह ईर्ष्या मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है, किन्तु सभ्यता के विकास के साथ ही यह मनोविकार स्पष्टरूप में उभर कर सामने आ रहा है ।

मान

यह प्रतिष्ठा वाचक शब्द है । मान का वैशिष्ट्य सूचक शब्द सम्मान है स्वाभिमानी व्यक्ति के जीवन में मान का विशेष महत्त्व होता है । वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मान का आश्रय ग्रहण करता है । मान भी एक प्रकार का मानसिक रोग है । एक संस्कृत के श्लोक में ` मान चैव सुरापानं ` कह कर इसकी अत्यन्त निन्दा की गई है ।

मद
--

मन के चेतन अंश में कुछ विकार उत्पन्न होना मद की अवस्था है । मद का सामान्य अर्थ नशा होता है । चैतन्य अंश में विकृति बढ़ने पर मूर्च्छा और चेतना का अधिक ह्रास होने पर संन्यास की अवस्था होती है । मद को एक प्रकार संवेग माना गया है । अत: इस अवस्था में तमोगुण की वृद्धि अधिक होती है । रजोगुण के कारण चित्त की अस्थिरता भी होती है । इसके साथ वात, पित्त एवं कफ की विकृति हो जाने पर मद रोग की उत्पत्ति होती है तो उन्माद रोग की पूर्व अवस्था है । अत: मद रोग की गणना शुद्ध मानसिक रोगों एवं दूसरे वर्ग त्रिदोषयुक्त त्रिगुण की विकृति वर्ग के रोगों, अर्थात् दोनों वर्गों के अन्तर्गत की गई है ।

शोक

शोक भी एक मनोविकार है । इस मनोविकार की तो साहित्य में इतनी अधिक मान्यता है कि संस्कृत कवि भवभूति करुण को ही एकमात्र रस मानते हैं । शोक करुण का स्थायी भाव है । लक्ष्मणशक्ति लगने पर राम में इस भाव का उद्रेक हुआ था । भरत मुनि के अनुसार यह इष्टजन के वियोग,

विभव के नाश, किसी प्रिय व्यक्ति के वध अथवा कारावासजन्य दुःख इत्यादि कारणों से उत्पन्न होता है । शोकसन्तप्त व्यक्ति रोता है, चिल्लाता है, आहें भरता है, छटपटाता है, छाती पीटता है, सर पटकता है, पृथ्वी पर गिरता है, बेहोश हो जाता है । अत्यधिक शोक की अवस्था में प्राणी बिल्कुल निश्चेष्ट होकर मौन हो जाता है । उसकी सभी वृत्तियां अन्तर्मुखी हो जाती हैं । बाहर से भाव, आवेग आदि के कोई लक्षण प्रकट नहीं होते, यह स्थिति प्राणी के लिये बड़ी ही भयावह होती है । यदि शीघ्र उचित उपचार न किया गया तो प्राणी की हृदयगति रुक कर उसकी मृत्यु तक हो जा सकती है ।

विषाद

जिस प्रकार सुख का चरमोत्कर्ष उत्साह है, उसी प्रकार यह मनोविकार शोक का ही एक रूप है । भग्नाशा से उत्पन्न असफलता से उद्भूत होता है । इसके अन्तर्गत खिन्नता, उदासी एवं उत्साहहीनता आदि के लक्षण पाये जाते हैं । भरत के अनुसार आरम्भ किये हुए काम में असफलता दैवयोग दुर्घटना आदि के कारण इसकी उत्पत्ति होती है । इससे आक्रान्त होने पर उत्तम वर्ग के व्यक्ति सहायकों की खोज एवं सफलता के साधनों की चिन्ता द्वारा और मध्यमवर्ग के व्यक्ति उत्साह दौर्बल्य अनुताप तथा निश्वास के द्वारा इसे व्यक्त करते हैं । पर अधम व्यक्ति पुरुषार्थहीन एवं निष्क्रिय हो जाते हैं । उनका मुंह सूखने लगता है और वे सारा समय पश्चाताप करते ही बिता देते हैं । चिन्तातुर व्यक्ति के चेहरे पर खिन्न भावनाओं की मूक-रेखाएं झलकने लगती हैं । उसका ध्यान अतीत की भूलों और त्रुटियों की ओर जाने लगता है । अहर्निश विषाद की अग्नि में जलने वाला प्राणी हताश से त्रस्त होकर कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान भूल जाता है । विषाद में डूबे हुये प्राणी में खिन्नता, उदासी एवं उत्साहहीनता आदि के लक्षण पाए जाते हैं । भरत के अनुसार आरम्भ किए हुए काम में असफलता दैवयोग दुर्घटना आदि के कारण इसकी उत्पत्ति होती है । इससे

आक्रान्त होने पर उत्तम वर्ग के व्यक्ति सहायकों की खोज एवं सफलता के साधनों की चिन्ता द्वारा और मध्यम वर्ग के व्यक्ति उत्साह भंग अनुताप तथा विश्वास के द्वारा इसे व्यक्त करते हैं ।

चिन्ता

चिन्ता का सामना करने की शक्ति भी सभी जीवधारियों में समान रूप में नहीं पायी जाती । चिन्तोत्पादक परिस्थितियों के उपस्थित होने पर कुछ लोग कम प्रभावित होते हैं और कुछ अधिक।यह वैयक्तिक भिन्नता प्राय: दो बातों पर निर्भर करती है — एक तो भयोत्पादक वस्तु अथवा परिस्थिति का स्वरूप और दूसरे व्यक्ति का अपना मनोबल और इस बात का विश्वास की कि वह उस जटिल परिस्थिति का सामना करने में कहां तक सक्षम है । साधारण परिस्थितियों में प्राणी शीघ्र नहीं घबराता, जबकि जटिल परि-स्थितियां निश्चितरूप से उसकी चिन्ता को बढ़ा देती हैं । आत्मविश्वासहीन प्राणी साधारण परिस्थितियों में भी शीघ्र चिन्तातुर हो जाता है । तगड़े मनोबल और परिस्थितियों को अपने नियंत्रण में ले लेने का विश्वास रखने वाला प्राणी जटिल परिस्थितियों में भी शीघ्र विचलित नहीं होता । मन को दृढ़ करने के लिये प्रपंचात्मक जगत् के प्रति अत्यन्त सीमित आसक्ति रखनी चाहिए ।

शायात्मक संविषाद

विषाद का अत्यधिक बढ़ा हुआ अथवा असामान्य रूप है शायात्मक-संविषाद । शायात्मक संविषाद का उत्तेजक कारण कोई दु:खद घटना ही होती है, यथा - किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु अथवा सम्पत्ति का नाश । इसके प्रारम्भिक लक्षणों में सरदर्द, अनिद्रा, नगण्य बातों को लेकर अत्यधिक चिन्ता, धैर्यधारण शक्ति की कमी, जीवन की साधारण रुचियों का अभाव, अवसाद तथा अकारण फूट-फूटकर रोना प्रमुख है । रोग के बढ़ने पर रोगी निराशा एवं विषाद की साक्षात् मूर्ति बन जाते हैं । उन्हें भूत और भविष्य दोनों

अन्धकारमय प्रतीत होते हैं । अपने अस्तित्व को सर्वथा निरर्थक समझने लगते हैं । भूत काल में घटित साधारण बातों को लेकर तिल का ताड़ बना डालते हैं । कहते हैं कि उन्होंने जघन्य पाप किये हैं । ईश्वर और मानवता के प्रति अक्षम्य अपराध किये हैं । उन्हें उन पापों से अपराधों से कभी भी मुक्ति नहीं मिल सकती । उन्हें तो उनकी आने वाली सन्तानों को भी उन पापों के परिणाम भोगने पड़ेंगे । अनेकानेक दैवी आपत्तियों का, आपदाओं का सामना करना पड़ेगा । संसार उनके पाप के बोझ से दबा जा रहा है । दु:ख उनके शरीर को जर्जर बना रहा है । वे भाँति भाँति के निर्मूल भ्रमों का शिकार होते हैं । अगर ठीक से देखरेख न किया जाये तो कुछ रोगी पश्चातापस्वरूप अपने जीवन का अन्त कर देने की भी कोशिश करते हैं ।

भावात्मक संविषाद रोगी के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि अपनी उक्त गम्भीर संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं के अतिरिक्त वह अन्य अंशों में ठीक रहता है । चेत के मुद्दों में उनकी उच्च मानसिक क्रियाएं विशेष प्रभावित नहीं होती, चेतना स्पष्ट रहती है । स्मृति अच्छी रहती है । उन्हें आसपास की परिस्थितियों का सम्यक् ज्ञान रहता है । अपनी स्थितियों की ठीक सूझ होती है और वे यह अनुभव करते हैं कि वे बीमार हैं । बीमारी से पृथक् अन्य प्रश्नों के पूछे जाने पर वे उन्हें ठीक से समझते हैं और सुसंगत उत्तर देते हैं ।

उद्वेग

उद्वेग से हमारा तात्पर्य है मानसिक व्याकुलता । इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति किसी भी समस्या का समाधान शान्तिपूर्वक स्वस्थ मन से करने में सदैव अक्षम होता है । आधुनिक चिकित्साशास्त्री के मतों के द्वारा यह विकृति उस समय पैदा होती है, जब व्यक्ति कोई मनोवांछित वस्तु प्राप्त करना चाहता है, किन्तु उसको निरन्तर कठिनाइयों का ही सामना करना पड़ता है, तथा वस्तु प्राप्ति भी कठिन मालूम पड़ने लगती है । यह व्याकुलता सम्बन्धी विकार

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार युवा अवस्था में किसी भी मूल प्रवृत्ति की विफलता के फलस्वरूप पैदा हो सकती है ।

विदेशी विद्वान् फ्रायड के मतानुसार काम सम्बन्धी कारणों का भी इसके विकास में योग होता है । भय, शंका और शोक इत्यादि इस विकार को उत्पन्न करने वाले अन्य कारण हैं । इस रोग में व्यक्ति में निर्ण शक्ति का अभाव, असहनशीलता, आत्महत्या की भावना, विचित्र भय आदि लक्षण पाए जाते हैं । इस रोग के रोगी में रुचि का भी अभाव दिखाई देता है । रोगी में एक प्रकार का तनाव और आशंका लक्षित होती है । इसमें व्यक्ति के विचार और ध्यान दोनों प्राय: समाप्त दिखाई पड़ते हैं । रोगी आने वाले कष्ट और सम्भावित असफलता के अपमान के भय से सदा डरता रहता है । ये उपरोक्त लक्षण रोगी में बहुत दिन तक वर्तमान रहते हैं । रोगी को नींद प्राय: बहुत कम आती है । रोग की अवस्था तीव्र हो जाने से वह किसी एक स्थान पर अधिक समय तक बैठने में भी असमर्थ हो जाता है ।

भय

अपकार अथवा अनिष्ट की निश्चित सम्भावना से जो मनोविकार उत्पन्न होता है उसे भय कहते हैं । भरत के अनुसार भय का सम्बन्ध स्त्रियों तथा नीच प्रकृति के लोगों से है । उन्हीं के शब्दों में - ` यह अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों तथा राजा आदि के प्रति किये गये अपराध, वन में भ्रमण, हाथी या सर्प आदि हिंसक पशुओं को देखने, शून्य गृह में ठहरने, गुरुजनों की भर्त्सना करने, बरसात में अंधेरी रात, उल्लू तथा रात्रि को बाहर निकलने वाले अन्यान्य पशु पक्षियों का शब्द श्रवण आदि से उत्पन्न होता है ।

भय के लक्षण

भय के प्राय: निम्नांकित लक्षण देखने को मिलते हैं- शरीर का कांपना, पसीना छूटना, मुंह सूखना, मुंह का पीला पड़ना, चिन्ता, आशंका, रोमांच, घिग्घी बंधना आदि । अत्यधिक भय की अवस्था में प्राणी काष्ठवत् जहां का वहां खड़ा रह जाता है । लगता है जैसे उसके शरीर एवं मन की सारी क्रियाएं

एकाएक रुक गई हो । ऐसी हालत में भयभीत व्यक्ति के हृदयगति के अचानक रुक जाने से उसकी मृत्यु तक हो जा सकती है ।

भय का सामना करने की शक्ति सभी व्यक्तियों में समानरूप से नहीं पायी जाती है । कोई अधिक डरपोक होता है, कोई कम, किसी-किसी में खतरनाक से खतरनाक परिस्थिति का सामना करने का अदम्य साहस होता है ।

स्वाभाविक एवं अस्वाभाविक भय

भय स्वाभाविक भी हो सकता है, अस्वाभाविक भी । निहत्थे प्राणी का भय स्वाभाविक भय है । बालक का खिलौने से, पशु का भोजन से, प्रौढ़ व्यक्ति का अँधेरे से भय अस्वाभाविक है । स्वाभाविक भय सकारण होता है । उसका कोई न कोई लक्ष्य होता है । पर अस्वाभाविक भय अकारण एवं निष्प्रयोजन जैसा लगता है, चिन्ता भी भय का ही एक रूप है ।

अतिभय अथवा पैनिक

अस्वाभाविक भय का ही एक रूप अतिभय है जिसके अन्तर्गत प्राणी का समग्र भौतिक एवं सामाजिक वातावरण,की एक वस्तु उसके लिये भयोत्पादक बन जाती है । वह हर चीज को देखकर सहम जाता है, घबड़ाता है, काँपता है ।

हर्ष

हृदय की उन्मुक्त प्रसन्नता का नाम हर्ष है । यह व्यक्ति के अन्तःकरण में प्रफुल्लता का सृजन करता है । रस प्रसंग में जिन तैंतीस संचारियों की गणना हुई है, उसमें हर्ष का भी अपना विशेष महत्त्व है । हर्ष की बिल्कुल अनुभूति न होना तथा हर्ष का सीमोल्लंघन होना दोनों ही दशाएं मनोविकारयुक्त हैं, अतः हर्ष भी मानस रोगों के अन्तर्गत आता है ।

आधि-व्याधियां अथवा मनोदैहिक रोग

कुछ रोग ऐसे भी हैं जिनकी उत्पत्ति का मूल कारण मानसिक विकृति हुआ करती है, किन्तु उनके लक्षण शारीरिक होते हैं । इनमें भी रज एवं तम विकृत होता है और वात, पित्त तथा कफ भी विकारग्रस्त होते हैं । किन्तु द्वितीय वर्ग के मानसिक रोगों में जहां मानसिक लक्षण मुख्य होते हैं, वहीं यहां पर शारीरिक लक्षण हुआ करते हैं । इन्हें मनोदैहिक व्याधियां कहते हैं । इनकी चिकित्सा में शारीरिक लक्षणों के साथ मानसिक विकृतियों का भी उपचार अनिवार्य होता है । इस वर्ग की कुछ प्रमुख व्याधियां निम्नलिखित हैं —

१) शोक ज्वर,

२) काम ज्वर.

३) भयज अतिसार

४) तमक श्वास ।

१) शोकज्वर

धन नाश तथा बन्धुनाश आदि दुर्घटनाओं के कारण शोक सन्तप्त और इसी कारण अल्पभोजन करने वाले मनुष्य की (अतिबाष्पत्याग) नेत्र, नासा तथा गले से निकलने वाले जलीय स्राव से उत्पन्न उष्मा उसकी कोष्ठस्थित पाकाग्नि को दूषित करके रक्त को भी क्षुभित करता है । इस प्रकार क्षुभित एवं गुंजाफल के समान वर्ण वाला रक्त मलरहित या मलयुक्त निर्गन्ध या सगन्ध होकर गुदमार्ग से गुद मार्ग से निकलता है, वह शोकोत्पन्न अतिसार भी कहलाता है । इस दुश्चिकित्स्य अतिसार को वैद्यों ने कष्टसाध्य कहा है ।

शोकज से अशोकज भयज अतिसार का भी ग्रहण कर लेना चाहिए क्योंकि दोनों ही मानसिक विकार से उत्पन्न होते हैं ।

२- कामज्वर

कामज्वर में चित्तविभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, भोजन की अनिच्छा, हृदय

प्रदेश में वेदना तथा मुख का सूखना ये लक्षण हैं । अभिप्रेत कामिनी की अप्राप्ति से कामज्वर उत्पन्न होता है । कामज्वर में रोगी को गहरे गहरे श्वास आते हैं तथा वह कुछ ध्यानमग्न सा रहता है । इसके अतिरिक्त रोगी का धैर्य, लज्जा, निद्रा नष्ट हो जाती है । शरीर में दाह एवं भ्रम होता है । वाग्भट्ट ने कहा भी है — 'कामाद्भ्रमोऽरुचिर्दाहो ह्रीनिद्राधीधृतिक्षय: ।'

'कामशोकभयाद्वायु:' इस वचन के अनुसार काम, शोक और भय से वायु की वृद्धि होती है । इस प्रकार शोकज और भयज ज्वर में वात का कार्यकलाप मिलता है । यद्यपि कम्पन वात का कार्य है, वह पित्त के वर्धक क्रोध से उत्पन्न न होना चाहिए तथापि क्रोधजन्य पित्त वात को भी प्रकुपित करके इस लक्षण को उत्पन्न कर देता है ।

३) भयज अतिसार

भयज तथा शोकज्वर से अतिसार भी हो जाता है । इसमें प्रलाप भी होता है । अभिचार और अभिशापजन्य ज्वर में मूर्च्छा तथा प्यास होती है । भूताभिषंगज ज्वर में घबराहट कभी हंसी और कभी रोना, कभी रोने की प्रवृत्ति तथा कम्पन भी होता है ।

लाठी तथा अन्य शस्त्रों के प्रहार के कारण रक्तस्राव या पीड़ाधिक्य से होने वाला ज्वर अभिघातज ज्वर कहलाता है । शत्रु को नष्ट करने के निमित्त प्रयुक्त अभिचार कर्मों से जो ज्वर होता है उसे अभिचारज ज्वर कहते हैं । तपस्वी जनों के शाप के कारण उत्पन्न ज्वर को अभिशापज तथा काम, शोक तथा भय आदि मानसिक कारणों एवं भूत (देवादिग्रह तथा जीवाणु) सम्बन्ध से होने वाले ज्वर को अभिषंगज ज्वर कहते हैं ।

४) तमकश्वास

यद्यपि सामान्य श्वास की सम्प्राप्ति भी आ जाती है, जब वायु प्रतिलोम (विरुद्ध या विकृत) होकर स्रोतों (प्राण उदक और अन्नवाहिनियों) में जाता है तब वह वायु श्लेष्मा को ऊपर की ओर प्रेरित कर ग्रीवा और सिर को जकड़ कर

पीनस रोग कर देता है । तदनन्तर उसी श्लेष्मा से आवृत वायु गले में ` घुरघुर` शब्द को करता है और प्राणों के आश्रयभूत हृदय के प्रपीडक अतीव तीव्र वेग वाले तमक श्वास को कर देता है । इस तमक श्वास का रोगी इसके वेग से अपने आपको अन्धकार में प्रविष्ट सा पाता है । उसे तृष्णा लगती है । वह निश्चेष्ट या अवरुद्ध श्वास वाला हो जाता है एवं वह रोगी खांसता हुआ बार-बार मूर्छित होता है, और जब उसके गले अथवा छाती में रुका हुआ कफ नहीं निकलता तो अत्यन्त दु:खित होता है, परन्तु जब वह (कफ) मुख द्वारा निकल जाता है तब कुछ समय तक (जब तक कि पुन: कफ आकर नहीं रुकता तब तक) सुख का अनुभव करता है । इस रोग से रोगी के गले में कण्डु (खुजली) होती है । उसे बोलना कठिन हो जाता है । श्वांस से पीड़ित होने के कारण लेटने पर भी उसे नींद नहीं आती, परन्तु जब सोता है तब वायु उसके दोनों पार्श्वों को पीड़ित करता है जिससे कि श्वास के वेग आने लगते हैं । अत: वह बैठने में सुख पाता है । इसका रोगी उष्ण पदार्थों से आनन्दित होता है, अर्थात् तमकश्वास से वातकारब्ध होने के कारण उष्ण पदार्थ उसके लिये उपशय (हितकारी है) है । उसके नेत्र में भारीपन अथवा नेत्र छिद्रों में शोथ होती है, मस्तक पर स्वेद होता है । पीड़ा सर्वदा रहती है, मुख शुष्क रहता है, बार बार श्वास के वेग होते हैं और बार बार कंकपी होती है । बादल, जल, शीत, प्राग्वात (पूर्वीय वायु या प्रात:कालीन वायु तथा श्लेष्मल पदार्थों से वह तमक श्वास बढ़ता है, अर्थात् यह अनुपशय है एवं यह तमक श्वास याप्य है, परन्तु नवोत्पन्न साध्य है ।

प्रकृति विकारजन्य मानसिक रोग

आयुर्वेद के अनुसार ये मानसिक विकृतियां जन्मजात होती हैं । इन व्यक्तियों की प्रकृति में ही कुछ विकार होते हैं जिनके कारण कुछ मानसिक असामान्यताएं अथवा मानस व्याधियां इनमें मिलती हैं । ये विकृतियां निम्नलिखित हैं —

१) सत्वहीनता,

२) अमेधता,

३) विकृतसत्वता ।

सत्वहीनता

आयुर्वेद में सत्व मन को कहा जाता है । सत्व उत्तम मानसिक गुण भी है । अत: सत्वगुण की हीनता को ही सत्वहीनता कहते हैं । ये व्यक्ति अल्प मानसिक शक्ति वाले होते हैं । इन्हें अवर सत्व का भी व्यक्ति कहते हैं । ये लोग कठिन अपरिस्थितियों से घबरा जाते हैं । संघर्ष नहीं कर पाते । शीघ्र ही भयग्रस्त हो जाते हैं । इन्हें उन्माद आदि अनेक मानसिक रोग होने की सम्भावना अधिक होती है ।

अमधता

यह भी जन्मजात विकार है । प्रकृति में कुछ जन्मजात विकार होने के कारण इनकी बुद्धि का विकास सामान्य रूप से नहीं हो पाता । ये तामस मानस प्रकृति के मन्दबुद्धि वाले व्यक्ति होते हैं । पढ़ लिख नहीं पाते । प्रशिक्षण द्वारा ये कुछ मोटे काम कर पाते हैं । स्वतन्त्र रूप से अपना जीवन निर्वाह करने में ये असमर्थ होते हैं । अत: इनको लिए सदैव सहारे की आवश्यकता होती है । आयुर्वेद में इन्हें भी तीन वर्गों में विभाषित किया गया है –

क) पशु-काय

ख) मत्स्य-काय

ग) वानस्पत्य-काय

पशुकाय व्यक्ति प्रशिक्षण देने पर अपना दैनिक जीवन का सामान्य कार्य कर लेते हैं । मत्स्यकाय की बुद्धि उनसे निकृष्ट होती है । प्रयत्न से भी पढ़ लिख नहीं पाते । सदैव सहारे की आवश्यकता होती है । वानस्पत्य-कायपूर्ण-बुद्धिहीन होते हैं । ये शौच आदि दैनिक क्रियाएं भी सम्पन्न नहीं कर पाते । बिना सहारे के तनिक भी कार्य करने में समर्थ नहीं होते ।

विकृतसत्वता

ये व्यक्ति जन्मजात समाज विरोधी एवं अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं । ये व्यक्ति राक्षस मानस प्रकृतिवाले कहे जाते हैं । इन्हें निम्नलिखित छह वर्गों

में विभाजित किया गया है -

१) वासुरकाय

२) सर्पकाय

३) शाकुनकाय

४) राक्षसकाय

५) पैशाचकाय

६) प्रेतकाय

इस प्रकार से समस्त मानस रोगों को उक्त चार वर्गों के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है । वर्गीकरण की दृष्टि से अभी भी आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान किसी निश्चित आधार पर नहीं पहुंच पाया है । अतः प्राचीन आयुर्विज्ञान द्वारा वर्णित मानस रोग अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है ।

प्रकृतिविकारजन्य मानसिक रोग

जैसा कि पूर्वोल्लेख किया जा चुका है, इस वर्ग की व्याधियां जन्मजात एवं प्रकृति में स्थित विकार के कारण होती हैं । राजस एवं तामस मानस प्रकृति के व्यक्तियों में ये विकार मिलते हैं । राजस मानस प्रकृति को छह वर्गों में वर्गीकृत किया गया है और तामस मानस प्रकृति का विभाजन तीन श्रेणियों में हुआ है । राजस प्रकृतिवालों में समाजविरोधी व्यक्तित्व की सृष्टि होती है और तामस प्रकृति वाले बुद्धिमन्दता से ग्रसित होते हैं । सत्वगुण की कमी से व्यक्तित्व में सत्वहीनता का विकार उत्पन्न होता है ।

इस प्रकार से आयुर्वेद में विभिन्न मानस रोगों का उल्लेख किया गया है । रामचरितमानस में वर्णित मानसरोग इस वर्गीकरण की दृष्टि से प्रथम वर्ग के अन्तर्गत आते हैं । अगले अध्याय में उनकी व्याख्या की गई है ।

तृतीय अध्याय

रामचरित मानस में वर्णित मानस रोगों का स्वरूप :---

रामचरितमानस एक अप्रतिम एवं अनूठा ग्रंथ है जिससे अनेक भारतीय एवं भारतवंशी अपने जीवन में नित्यप्रति प्रेरणा प्राप्त करते हैं। भगवान् राम के महान् चरित्र का चित्रण करते हुए गोस्वामी जी ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं हिन्दू धर्म के मूल स्वरूप को भी उपस्थित किया है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, साहित्य एवं चिकित्साशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों को इसमें सम्मिलित किया है।

आयुर्वेद चिकित्साशास्त्र है और मानस रोगों के निदान एवं चिकित्सा का वर्णन उसके अन्तर्गत किया गया है। रामचरितमानस भक्ति साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसका मूल उद्देश्य भगवान् राम के पावन-चरित्र को उपस्थित करना है, ताकि, प्राणिमात्र उनकी भक्ति को प्राप्त कर अपना एवं समाज का कल्याण कर सकें। गोस्वामी जी ने राम को सगुण ब्रह्म के रूप में उपस्थित किया है। विवेक और ज्ञान को पूर्ण महत्व देते हुए उन्होंने भक्ति के पथ का निर्देश किया है। इसी प्रसंग में उन्होंने अनेक मानसिक विकारों का वर्णन किया है जिनके कारण व्यक्ति भगवान्

को भक्ति को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। ये विभिन्न मानसिक विकार शुद्ध ज्ञान एवं विवेक की अवस्था प्राप्त करने में बाधक बनते हैं। यह निर्मल ज्ञान एवं विवेक ईश्वर की भक्ति एवं कृपा द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अत: निर्मल ज्ञान की प्राप्ति के लिये धार्मिक आचरण, शास्त्रों का अध्ययन, सत्संग, ईश्वर विश्वास, एवं नैतिक आचरण आवश्यक है। देश के जन सामान्य में इन सभी के प्रति प्रेरणा देनेवाला रामचरितमानस एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। लाखों भारतीयों को इस पर असीम श्रद्धा एवं विश्वास है।

ईश्वर के प्रति आस्था को दृढ़ करने के लिए रामचरितमानस में अनेक चरित्रों की सृष्टि की गयी है। निर्मल ज्ञान, विवेक एवं भक्ति की प्राप्ति में बाधक अनेक मनोविकारों का वर्णन गोस्वामी जी ने इसी उद्देश्य से किया है ताकि जन सामान्य उनसे आक्रान्त होने से अपनी रक्षा कर सके।

उत्तरकाण्ड में गोस्वामी जी ने जिन मानस रोगों का वर्णन किया है वे आयुर्वेद में वर्णित प्रथम वर्ग के रोग हैं जो रज एवं तम के विकारों के कारण उत्पन्न होते हैं।

इन मानसिक रोगों को आधुनिक मनोविज्ञान ने संवेग का नाम दिया है। इसका कारण यह है कि ये सभी व्यक्तियोंको आक्रान्त करते हैं। आयुर्वेद ने इन्हें मानस रोग कहा है। वस्तुत: ये संवेग एवं मानस रोग हैं, अनेक मानसिक रोगों को उत्पन्न करते हैं और कई मानसिक रोगों के लक्षण भी हैं।

चिकित्सा विज्ञान सामान्य अवस्था में इन्हें रोग नहीं मानता। जब इनकी मात्रा में अत्यधिक वृद्धि अथवा क्षय हो जाता है तभी इनको रोग माना जाता है। आयुर्वेद के अनुसार काम एवं क्रोध का पूर्ण क्षय सामान्य व्यावहारिक जीवन के अनुकूल नहीं है। अत: परिस्थितियों

के अनुकूल, सामान्य आवश्यक मात्रा में काम, क्रोध, मान, ममता, विषाद एवं हर्ष आदि भाव होने चाहिये। परिस्थितियों के प्रतिकूल, इनको वृद्धि एवं पूर्ण नाश को असामान्य माना है। इसका कारण यह है कि उस स्थिति में मानव जीवन भावनाओं से शून्य हो जायेगा जो सामान्य व्यवहारिक जीवन में अभीष्ट नहीं।

रामचरितमानस में संत प्रवर गोस्वामी जी ने मानस रोगों के रूप में इन्हीं संवेगों का वर्णन किया है। उनका तात्पर्य भी इनकी प्रवृद्धावस्था अथवा चिरकाल तक बने रहने से ही है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि इन विकारों से सभी प्राणी पीड़ित हुआ करते हैं। वस्तुत: इनसे आक्रान्त तो सभी होते हैं किन्तु अधिक काल तक एवं अधिक मात्रा में ये न पीड़ित करें, इसके लिए सावधानी एवं उपाय आवश्यक हैं। इस संदर्भ में गोस्वामी जी का कथन इस प्रकार है :-

एहि विधि सकल जीव जग रोगी।
सोक, हरष भय प्रीति वियोगी।।
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे।।
मुनि हु हृदय का नर बापुरे।।
राम कृपा नासहिं सब रोगा।
जौं एहिं भाँति बनै संयोगा।।[1]

ये सभी रोग विषय रूपी कुपथ्य से बढ़ते जाते हैं। राम की कृपा से शुद्ध ज्ञान एवं विवेक के कारण ये विकार स्वत: नष्ट हो जाते हैं।

इन मानस रोगों का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने कुछ का नामोल्लेख किया है। शारीरिक रोग लोक में अधिक प्रसिद्ध हैं। अत: मानस रोगों का वर्णन करते हुये उनकी तुलना शारीरिक रोगों से की गयी है।

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दोहा सं० १२१, चौपाई सं० १,२,३।

इस संबंध में गोस्वामी जी कहते हैं :-

सुनहु तात अब मानस रोगा । जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ।।
मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला । तिन्हते पुनि उपजहिं बहु सूला ।।
काम वात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ।।
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ।।
विषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ।।
ममता दादु कंडु इरषाई । हरष विषाद गरह बहुताई ।।
पर दुखदेखि जरनि सोइ छई । कुष्ट दुष्टता मन कुटि लई ।।
अहंकार अति दुखद डमरुआ । दंभ कपट मद मान नेहरुआ ।।
तृस्ना उदर बृद्धि अति मारी । त्रिविधि इंषना त्रि तरुन तिजारी ।।
युग विधिज्वर मत्सर अविवेका । कह लगि कहौं कुरोग अनेका ।।[1]

इस प्रकार यहाँ पर गोस्वामी जी ने निम्नलिखित मानस रोगों का उल्लेख किया है :- मोह, काम, क्रोध, ममता, ईर्ष्या, हर्ष, विषाद, दाय, दुष्टता, कुटिलता, अहंकार, दम्भ, कपट, मद, मान, तृष्णा, ईषणा, मत्सर, अविवेक आदि ।

इसके अतिरिक्त अनेक संवेग और इन्द्रियों के वर्ग हैं जो अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण अनेक मनोविकारों को उत्पन्न करते रहते हैं । अत: गोस्वामी जी कहते हैं कि सभी मानस रोगों का उल्लेख कर पाना संभव नहीं है ।

जीव और मानस रोग :-

आयुर्वेद में जीव को कर्म पुरुष कहा गया है । रोग इसी में होते हैं । और, चिकित्सा भी इसी की की जाती है । शरीर, मन और आत्मा, जीव के मुख्य घटक हैं । इनके स्वस्थ रहने पर जीव भी निरोगी एवं

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दोहा० सं० १०६, चौ० सं०१४-१६ ।

स्वस्थ रहता है। इनमें से किसी प्रकार के विकारग्रस्त होने पर जीव भी रोगी हो जाता है । इनमें भी मन और शरीर ही रोगों के आश्रय हैं क्योंकि आत्मा, निर्विकार, चैतन्य एवं सुखकी राशि है । माया के कारण वह शरीर से बंध गया है । निर्विकार ज्ञान की प्राप्ति होते ही वह भव बन्धन से छूट जाता है और कैवल्य पद की प्राप्ति उसे हो जाती है। यही आत्मा ईश्वर अथवा ब्रह्मका अंश है ।

इस माया से छुटकारा दिलाने का उपाय गोस्वामी जी ने भक्ति को बताया है । उनका कहना है कि भक्ति एवं माया दोनों नारी वर्ग की हैं । सगुण ईश्वर को भक्ति प्रिय है । माया उससे डरती है । अत: माया से त्राण पाने के लिये प्राणी को सदैव भक्ति का आश्रय ग्रहण करना चाहिये ।

जीव के शरीर में आश्रित रोग शारीरिक और मन में आश्रित विकार मानस रोग कहे जाते हैं । माया के कारण शरीर से आत्मा बंध गया है। माया रूपी अज्ञान के कारण यह ग्रंथि छूट नहीं पाती यद्यपि यह वास्तविक न होकर मिथ्या होती है । शरीर के साथ बंधा हुवा जीव वास्तव में आत्मा है । यह आत्मा ईश्वर का अंश और अविनाशी होता है । यह चेतन, निर्विकार, सहज, एवं सुखका भाण्डार होता है ।

गोस्वामी जी को दृष्टिपथ में रखकर उनके इस कथन से ज्ञात होता है कि वह आत्मा को ही जीव की संज्ञा से अभिहित किया है जो माया के कारण शरीर से बंध गया है । यथा:-

ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी ।।
सो मायाबस भयउ गोसाईं । बंध्यो कीर मरकट की नाईं ।।
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ।। [१]

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दोहा सं० ११७, चौ० सं० १-२ ।

आत्मा चेतन और शरीर एवं मन जड़ होता है। रोग चेतन अंश में नहीं होते। वे केवल मन और शरीर में होते हैं जो जड़ तत्व हैं। रोग यद्यपि शरीर एवं मन में होते हैं और आत्मा में विकार नहीं होता किन्तु जीव रूप में रोगों के कष्ट का अनुभव वही करता है, क्योंकि मन और शरीर अचेतन हैं। अत: जब तक माया के बन्धन से शरीर के साथ वह बंधा होता है, दु:खों एवं रोगों के कष्ट की अनुभूति उसे होती है। इस संदर्भ में गोस्वामी जी कहते हैं :-

तब फिर जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ॥[1]

इन्द्रियों की लोलुपता और विषय वासना की वृद्धि को मानसिक रोगोंका मुख्य कारण बताया गया है। यथा-

ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा।
इन्द्रि सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई।
बिषय समीर बुद्धिकृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ॥[2]

ये सभी मानस रोग अत्यन्त कष्टकर, दुश्चिकित्स्य और असाध्य होते हैं। इनसे जीव सदैव कष्ट पाता रहता है। इन मनोविकारोंके कारण बुद्धि की निर्मलता, चित्त की एकाग्रता एवं समाधि आदि प्राप्ति उसे नहीं हो पाती। केवल ईश्वर की कृपा और भक्ति द्वारा ही इनसे त्राण मिलना संभव है। यथा--

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुं सो किमि लहै समाधि ॥

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दोहा० सं० ११८।
२- उपरिवत् : दोहा सं० ११७ : चौ० सं० ७-८।
३- उपरिवत् : दोहा सं० १२१।

रामचरितमानस में वर्णित मानसिक रोग :-

रामचरितमानस में वर्णित मानस रोगों की व्याख्या संक्षेप में की जा रही है।

मोह :-

गोस्वामी तुलसीदास ने सभी व्याधियों का मूलकारण मोह को ही बताया है। मोह की उत्पत्ति खेद, खिन्नता और मन में तर्क का आना है। क्योंकि योगीश्वर भगवान् शिव के समक्ष सतीने गरुड़ के मोह होने का कारण पूछा था क्योंकि गरुड़ पार्वती की दृष्टि में महान् ज्ञानी और गुण के राशि थे जैसा कि कहा गया है-" गरुड़ महा ज्ञानी गुण राशि पुनः ऐसे गुण के राशि गरुड़ को मोह कैसे उत्पन्न हुआ। योगीश्वर शिव के समक्ष सती का जब यह प्रश्न हुआ तो उत्तर में शिव ने कहा कि तुम्हें भी ऐसे एकबार हुआ था और उसका एक कारण था खेद खिन्नता और मनका तर्क " खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई जैसा कि रामचरितमानस में वर्णित है। अस्तु, मोह समस्त व्याधियों का मूल कारण है जिससे बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं।

विनय पत्रिका में भी मोह दशमौलि कहा है। मोह का भाई अहंकार है और काम मेघनाथ है। मोह को पाश भी बताया गया है और पाश जीव के कंठ में लगाया जाता है। माधव मोह पाश क्यों टूटै। और मोह पाश का इतना वर्णन है कि यदि जीव के गले में मोह पाश नहीं है तो वह आत्माराम शुद्ध है। मोह पाश जेहि गरन न बघाया। सो नर तुम समान रघुराया। मोह में पड़ा हुआ प्राणी अपने से भिन्न व्यक्ति से द्रोह करता है -" कोन्ह मोह बस द्रोह ; आदि इस प्रकार की बहुत सी बातें मोह के सम्बन्ध में प्राप्त होती हैं। मोह से काम, क्रोध, लोभ, तृष्णा आदि की उत्पत्ति होती है। यदि मोह से काम की उत्पत्ति है

तो मन: इच्छित काम यदि पूर्ण नहीं हुआ तो क्रोध उत्पन्न होताहै। जैसा कि देवर्षि नारदके नारद मोह में प्रकरण आया है। क्रोध का लक्षण वर्णन करते समय गोस्वामी जी ने देवर्षि के शारीरिक स्थिति का वर्णन करते हैं। नारद क्रोध में जब हो गये पुन: फरकत अधर कोप मन माहो, क्रोध मानस में आया तो लक्षण क्रोध का शरीर से प्रकट हुवा औष्ठ क्रोध के प्रकोप से फड़कने लगे। ऐसा क्रोधी व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि उचित और अनुचित क्या है। वह ठीक दूसरे को अयुक्त समझता है और अपनेको बुद्धिमान ठीक मानता है। यदि किसी ने संकेत भी किया तो उस रोगी के रोग की तरफ और उचित वैद्य नहीं है तो यह संक्रामक रोग की तरह बढ़ जाता है। देवर्षि नारद के रोग की तरफ दोनों रुद्रगणों ने यह संकेत किया कि तुम्हारी अभिलाषा तुम्हारे प्रतिकूल इसलिये हुई कि तुममें आकृति दोष है। उनका संकेत इनके कल्याण के लिये मानस रोग क्रोध के लिए औषधि था पर ठीक उसका परिणाम उल्टा हुवा। नारद ने जब अपनी तरफ देखा तो उनकाक्रोध और बढ़ गया। " वेष बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा" और परिणाम यहहुवा कि यह संक्रामक रोग हम लोगों को भी न लग जाय दोनों रुद्रगण औषधि बताकर भागे पर उनकी रक्षा होना कठिन हो गया। परिणाम स्वरूप उनको क्रोधयुक्त हृदय वाले मानस रोगीनारद ने श्राप के रूप में उन तक पहुंचादिया। नारद जी ने सोचा यह दोनों दो प्रकार के हैं कपटी और पापी हैं। कपटी वहहैजो दोष को छिपाता है और पापी वह है जो दोषका वर्णन करता है। उनके शाप से दोनों रुद्रगण निशिचर हो गए। क्योंकि निशाचर का यह प्रधान लक्षण है वहकपटीऔर पापी प्रधान रूप से देखे जाते हैं। होहु निशाचर जाइ तुम कपटी पापी दोउ"। क्रोधी व्यक्ति तो नारायणके सामने भी अपने क्रोध विकार के बल से अपने को बलवान मानता है और उस स्थिति में विकार के अन्धकूप में गिरा हुवा प्राणी अन्य दोषों से भी जुट जाता है।

काम, क्रोध और लोभ इन तीनों विकारों से जो युक्त है । अर्थात् तीनों विकार जिनमें उपस्थित हैं उसे सन्निपात होता है । मानस रोग में दो प्रकार का सन्निपात बताया गया है, एक गुणाकृत, दूसरा अवगुणाकृत। गुणाकृत सन्निपात गुणवान व्यक्ति में होता हैजैसे कि ऋषियों में पाया गया है और अवगुणाकृत सन्निपात राक्षसों में उपलब्धहोता है । जैसे सन्निपात का रोगी दुर्वाद कहता है एवं भागता है । अनेक प्रकार से जल्पता है । उसी प्रकार मानस रोग से संयुक्त जो भी व्यक्ति सन्निपात का रोगी हो गया है, ठीक वैसे ही उसके लक्षण प्राप्त होते हैं ।

रामचरितमानस में नारद देवर्षि हैं - इन्हें गुणाकृत सन्निपात हुआ इनमेंकाम, क्रोध, लोभ - इन तीनों का भयंकर प्रकोप हुआ और इस प्रकोप के कारण इनका मानस ज्ञान शून्य हो गया । यद्यपि उसकी शांति के लिये स्वयं औषधि का अन्वेषण किए तो इन्हें नारायण साक्षात् प्रभु प्राप्त हुए । नारद अपने अनुकूल समझ कर इनसे औषधि की याचना की । नारायण ने देवर्षि नारद का निदान किया तो निदान में यह पाया गया कि रोगी रोग के समन की औषधि न मांग कर ठीक कुपथ के विपरीत इच्छा रखता है पर नारायण चतुर वैद्य थे उन्होंने गुणाकृत सन्निपात रोगी देवर्षिनारदको उचित औषधि बताया और यह कहा कि कुपथ मांग रुज, व्याकुल रोगी । वैद न देइ सुनहु मुनि योगी ।" पर सन्निपात के रोगी नारद ने कहा कि जिस प्रकार से मेरा हित हो वही आप करें तो नारायणने महान् कटु औषधि प्रदान किया । रोगी की अभिलाषा थी कि मैं नारायण के रूप को प्राप्त कर अपनी काम-इच्छा पूर्ण कर लूंगा । प्रभु का रूप प्राप्त करने के पश्चात् मेरे सभी संकल्प पूर्णहोंगे पर चतुर वैद्य श्री लक्ष्मीनारायणने उनका हित इसमें नहीं समझा उनके हित के लिये ठीक रोगी के भाव के विपरीत कार्य किया ।

इन्होंने नारद को न अपना रूप दिया और न तो उनका रूप ही रहसका वह कुरूप हो गये क्योंकि गुणाकृत सन्निपात से युक्त विकारों से जुड़ा

हुआ मन जो अपने समीचीन से बहुत दूर चला गया है, उसे पुन: वापस ले आना है। वह तभी आ सकता है जब गुणाकृत सन्निपात का रोगी अपनी ओर देखेगा। बस यही समझ कर मुनि का हित जानकर बलाम दयालु वैद्य ने इन्हें कुरूप बना दिया। मुनि हित कारण कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना।।

सन्निपात का रोगी अपने मैं नहीं रहता। रोग के प्रभाव से जो भी वह करता है वह उसे ठीक समझता है। यदि उसके सामने कोई व्यंग्य भी करता है तो वह उसे सत्य समझता है। पर सन्निपात के रोग में मोह प्रधान रूप से व्यवहृत है। समस्त मानस रोगों की उत्पत्ति मोह से ही होती है। विप्रवेश में रुद्रगण बैठे व्यंग्य कर रहे थे उस स्थान पर जहाँ पर देवर्षिनारद विश्वमोहिनी का वरण करने के लिये स्वयंवर में उपस्थित थे मुनिका मन काम और पाने के लोभ में इनकेहाथ से बाहर था। रुद्रगणों ने व्यंग्य करते समय यही कहा था कि नीक दीन हरि सुन्दरताई। इस रूप को देखकर राजकुमारी प्रसन्न हो जायेगी तत्पश्चात् इनहहिं बरिहि हरि जानि विशेषी। विशेष रूप से इनका वरण हरि जानकर करेगी। अर्थात् देवर्षिका मुख मर्कट जैसा था जैसा कि आगे वर्णन मिलता है। मर्कट बदन भयंकर देही। इन रुद्रगणों के जो भी प्रवेश में थे वे गुणाकृत सन्निपात के रोगीनारद की कटु भर्त्सना कर रहे थे। उनके हरि शब्दका संकेत यही था पर रोगी नारद के मन की स्थिति मानस रोग के कारण विकृत हो गयी थी। और, वह अपने मन में नहीं था।

मोह के कारण दूसरे के हाथ में चला गया था जिसका प्रधान कारण था काम और लोभ। इसीलिये मुनिहि मोहमन हाथ पराएँ ऐसे गुणाकृत सन्निपाती का अन्त:करण चतुष्टय जिसमें से प्रधान रूप से बुद्धि भ्रम युक्त हो जाती है। रोगी नारद ने इनकी अटपट बातों को सुना पर वह समझ नहीं पाए क्योंकि समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी।" सन्निपात

के रोग का यह निदान हैकि वह समझ नहीं पाता । युक्त और अयुक्त का ज्ञान नष्ट हो जाता है और ऐसामानस रोग से युक्त सन्निपाती जब काम और लोभ के वश च्युत होता है तो उसमें तीसरा रोग भी उत्पन्न होता हैं जिसको क्रोध कहा जा सकता है जिसके उत्पन्नहोने के पश्चात् रोगी पूर्ण रोग से ग्रसित होता है। उसके लक्षण का वर्णन करते समय तुलसी ने कहा हैकि ऐसे रोगी का लक्षण उसके बुद्धि की जड़ता जैसे धनिक को मणि गिर जाने पर मणि के खोज में उसकी विकलता । यथा मनिगिरी गई छूटि जनु गाठी" यह पर्ण सन्निपात के रोग की मध्यावस्था है क्योंकि काम लोभ, क्रोध, ये तीनों एकत्र हो गये हैं। इस रोग की अवस्था देखकर निरोग लोग कहते हैं। ठीक यही हर गणों ने कहा और देवर्षि से निवेदन किया कि निज मुख मुकुर विलोकहु जाई,"

इस प्रकार प्रथमत: काम और लोभ का कार्य समाप्त होते ही क्रोध का कार्य शुरु हुआ और उसका परिणाम देवर्षि ने उन्हें श्राप दे दिया और इतना ही नहीं लक्ष्मी नारायण कुछ वैध हैं। उनको भीक्रोधावेश में जो भी आया कहा, ठीक जो सही चीजें थी । वह देवर्षि को उत्तोन्माद दिखाई देने लगीं और रोग नष्टकरने के लिये जो औषधि दी गयी थी वह अपकार के रूप मेंभाषित होने लगी । सबकीसब बातें उल्टी हो गयीं। तत्पश्चात् उनके मन:संकल्पित क्रोध, काम, लोभ नष्ट हुए और वह चतुर उस समय समाप्त हुये जब मोह में आती हुई विश्वमोहिनी का सर्वथा काम और लोभ का विनाशहो गया । तत्पश्चात् क्रोध नम्रताके रूप में प्रकट हुआ । पुन: गुणाकृत सन्निपात के रोगी देवर्षि नारद अपने पूर्वरूप में अवस्थित हुए और उन्होंने नारायण से याचना की ।

उनका हृदय जो मानस रोग से अशान्त हो गया था उसके शांति का उपाय पूछा । गुणाकृत सन्निपात में जिन का प्रयोग इन्होंने किया था। उसको मिट जाने की याचना को तो नारायण ने शंकर के सतनाम

औषधि को दिया[1] । जपहु जाइ शंकर सत नामा । होइहि हृदय तुरत विश्रामा ।

मानस रोग के अन्तर्गत अभी तक तो गुणाकृत सन्निपातका वर्णन किया गया ह और यह सन्निपात विवेकी ऋषि, ज्ञानी, भक्त, महापुरुषों को भी स्थित कारणवश हो जाता करता है । ठीक इससे उल्टा अवगुणाकृत सन्निपात है अभिप्राय जीव के शरीर मेंअवगुणोंके आधिक्य के कारण और उसमें जीव का अहं अवगुण सन्निपात का कारण बनता है । महान् गुण सम्पन्न व्यक्ति में भी मानस रोग का होना स्वाभाविक है । क्योंकि गुण के कारण जब उसमें विकास उत्पन्नहोता हैं उस समय उस गुण क में अहं करनेवाला प्राणी मानस रोग से ग्रसित होता है पर अवगुणाकृत सन्निपात अवगुण में जीव कर बरतने के कारण होता हैं और जब वह अपने अवगुण द्वारा शासन करता है तो उसी को उत्तम मानता है । यह अवगुणा कृत सन्निपात महान दोष के कारण होता है । जिस सन्नि-पातमें रोगी अपने शक्ति की कल्पनाकरता है जो मिथ्या होती है । ऐसे रोगी की औषधि अप्राप्य है । यह सन्निपात रावण के अन्तर्गत था । रावण की स्वर्णमयी लंका जब जलने लगी उस समय माल्यवान् के कहने पर कि आपकी अद्वितीय लंका जो परम सुन्दर है जग विख्यात है उसे निर्भय बन्दर जला रहा है ।

रावण ने उस समय यह उत्तर दिया कि साहेब मैहैश सदा संकित रमेश, मोहि महातप साहस विरंचि लियो मोल है, तो माल्यवान ने उसकी अभिमान पूर्णबातें सुनकर यह कहा कि ईश वामता विकार वार को बात है । पुनः अवगुणी रावण माल्यवान से यहकहा कि माल्यवान् तुम स्वयं पागल हो कौन नाम ईशको जो वाम होत मोहूं से को, माल्यवान रावरे के बापसे से बोल हैं । माल्यवान ने रावण को उचित सीख दी पर उसने

1- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दोहा सं० १३९, चौ० सं० ३ ।

एक न मानो । अवगुण कृत सन्निपाती रावण जब कभी निकलता और चलता और देवताओं को यह मालूम हो जाता है कि रावण सकोप कर इधर आ रहा है तो वह आक्रामक रावण के आने को चर्चा सुन आक्रान्त देवता गिरि की गुहा और कन्दरा में अपने प्राण की रक्षा हेतु छिप जाते । रावण आवत सुनेउ सकोहा । देवन्हतके मेरु गिरि खोहा ।" इतना भयंकर अवगुण और अमर्षी वह था कि जिस समय चलता पृथ्वी कंपित होने लगी और नारियों का गर्भ श्रवित हो जाता । अंगद ने रावण के इन सब मानस रोगों को देखा जो अयुक्त रूप से उसके पास विराजमान थे । रावण ने कहा हे अंगद सठ बिलोक मम बाहु । बीस पयोनिधि सोखनि हारा । अपनी भुजाओं की प्रशंसा अंगद से किया । अपने कठोर हृदय का परिचय देते हुए वह अंगद से बोल उठा । जानहि दिग्गज उर कठिनाई । जब जब भिरे आइ बरिआई ।। पुन: उसने महान् काम के रूप मेघनाद का परिचय देते हुए कहा सुत प्रसिद्ध सकारि । तत्पश्चात् अहंकार के रूप में कुंभकरण के विषय में बताया कि वह हमारा भाई है । कुम्भकरण सम बन्धु मम अभिप्राय मोह दशमौलि रावण के यह सब परिवार हैं मोह का परिवार काम है और अहंकार है क्रोध है लोभ है और ब जब पूर्णरूप से अपना अधिकार जीव में जमा लेते हैं तत्पश्चात् अज्ञानी जीव इन्हीं विकारों से युक्त होने के कारण अवगुण कृत सन्निपात का रोगी होता है । अपने अवगुणों की प्रशंसा एवं दूसरे पक्ष अंगद के सर्वांग शक्ति की निन्दा ब ये अवगुण कृत सन्निपाती विपक्ष की निन्दा करते हैं । ठीक यही बात रावण ने भी किया । अंगद से उनके सर्वांग शक्ति को निकम्मा बताया । उसने कहा तुम सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ । बन्धु हमार भीरु अति सोऊ ।"

इसका अभिप्राय यह कि तुम और सुग्रीव दोनों ऐसे तट पर खड़े हो जहाँ अपने आप नष्ट हो जाने वाले हो और हमारा भाई विभीषण अत्यन्त भीरु है । नल और नील को कहा कि ये शिल्पकार हैं यह युद्ध कौशल क्या जानें" शिल्पकर्म जानहिं नल नीला; इस प्रकार से उसने विपक्ष

के बलवानों की निन्दा की । अंगद ने कहा मुझे अपार दु:ख है कि सभी लोगों को विधाता ने दो आंखें दी और इन्हीं दो आंखों द्वारा अपना सारा ज्ञानपूर्ण कार्य कर लेते हैं और विधाता ने तुम्हें बीस आंखें प्रदान की और इन नेत्रों का कोई सदुपयोग नहीं । बीसहु लोचन अंध" कह कर उन्होंने यह संकेत किया कि तुममें सब अज्ञान ही अज्ञान है । मानस रोग महान् विकार मोह रोग का यह निदान है कि वह अंधा बना देता है जैसा कि तुलसी ने भी स्पष्ट निर्देश किया है - मोह न अंध कीन्ह केहि केही; यह निदान अंगद ने रावण के दु:साहस का भयंकर परिणाम देखा और उसको ठीक करना चाहा ।

फलत: परिणाम उसका यह हुआ कि और भी उसका मानस रोग दिनप्रतिदिन बिगड़ता गया । उसके बिगड़ने पर राव जल्पने लगा अंगद जी ने कहा औ रावण यह जो तू दुर्वाक्य निकाल रहा है यह तेरी त्रिगुण कृत सन्निपात का लक्षण है । जल्पसि सन्यापत दुर्वादा, भएसि काल बस खल मनु जादा ।"

यह त्रिगुणाकृत सन्निपात जिसके हो जाने से प्राणी का रक्षण नहीं हो पाता । यह प्राण घातक सन्निपात है जिसका वर्णन गोस्वामी जी ने रावण के माध्यम से सम्पन्न कराया है । अन्य मानस रोगों में सबसे अधिक महान् रोग यही प्रतीत होता है ।

<u>काम :-</u>

गोस्वामी जी ने काम का वर्णन करते समय उसके लक्षण, निदान को बात के रूप में बताया है क्योंकि विशेष कामी पुरुष वातका रोगी होता है और वह पुन: चलने फिरने में असमर्थ हो जाता है यह रोग बड़ा भयंकर होता है । इसमें प्राणी अपने पूर्व स्मृति और वर्तमान स्मृति में रहता है । बुद्धि बराबर कार्य करती है पर वह काम रोग में आसक्त जीव

एक मात्र अपने उद्देश्य पूर्ति की इच्छा रखता है। जैसा कि काम के केवल नारि यह काम से उत्पन्न वात रोग व्यक्ति के अहंकार को निर्बल बनाता है। यह रोग रामचरितमानस में दशरथ को अन्वेषण करने पर हो गया था। प्राय: देखा जाता है। क्योंकि कैकेयी के कोप भवन में प्रवेश करने के पश्चात् दशरथ ने यह जाना कि वह कोप भवन में है। वास्तविक काम का रूप तो कोप भवन हो है क्योंकि उसका कोप मानव के शरीर को पंगु बना देता है। यह संदेश मिलते हो कैकेयी कोप भवन में है, दशरथ में सकुचाहट आ गई। भय के कारण पाँव आगे नहीं बढ़ पाया। यद्यपि इनका ऐश्वर्य इतना है कि देवराज इन्द्र जिनके रक्षण में रहते हैं। समस्त राजा जिनकी मन: इच्छा को देखते रहते हैं पर यह काम रोग जो मानस रोग के अन्तर्गत आता है जिससे वात पैदा होता है उसके प्रकोप से इनका शरीर कम्पित हो गया।

कामोद्दीपन में यदि भय स्थिति आती है तो काम का लय नहीं हो पाता बल्कि उसकी अवस्था और उग्र हो जाती है। उद्देश्य पूर्ति के लिये कामी पुरुष अपनी मर्यादा से परिच्छिन्न होकर निम्न दैन्यभाव युक्त दृष्टिगोचर होता है। ठीक यही बात दशरथ की काम को लेकर हुई। भट्ठे दम्भ का प्रदर्शन अपने कामपूर्ति के लिये दशरथ ने किया। इनका काम के शर से हृदय विद्ध हो गया। उसमें एक विचित्र सी शूल उत्पन्न होती है। कैकेयी के कोप भवन की बात सुन यह सूख तो अवश्य गए जैसा कि गोस्वामी जी ने लिखा है - देखहु काम प्रताप बड़ाई। पर काम बाण से ऐसे विध गये कि वासना शान्त नहीं हुई जैसा कि सुरतिनाथ सुमन सर मारे और ऐसे काम के वश हुए। दशरथ कैकेयी के पास पहुँचकर बड़ी मीठी वाणी में बोले - किस कारण से यह तुममें प्रतिकूलता आई, क्रोध का कारण क्या है और कैकेयी के पाणि को अपने करतल द्वारा स्पर्श करते हुए उसके रोष को शान्त करना चाहा। पर वह इनके अनुकूल बहुत श्रम करने के पश्चात् भी न हो सकी। यह काम का कौतुक है यद्यपि उन्होंने उसके

लिये सुमुखि, सुलोचनि, पिकवचनि, गजगामिनि, प्राणप्रिया आदि सुमनोहर शब्दों का प्रयोग किया पर परिणाम इनके अनुकूल न हुवा। सर्वथा प्रतिकूल था। कामी व्यक्ति की भाषा कामोद्दिपन काल में इसकी पूर्ति हेतु स्वार्थयुक्त, मधुर होती है। तत्पश्चात् दशरथ अपने दम्भ को उसके समक्ष प्रकट किया। क्योंकि इस प्रकार के भी लक्षण प्राप्त होते हैं कि जिस से काम की पूर्ति होती है। उसके समक्ष यदि कामुक व्यक्ति अपने दम्भ बल का वर्णन करता है तो स्त्रि आकर्षित हो जाता है। दशरथ ने वही किया। उन्होंने कहा प्रिया किसने तुम्हारा अनहित किया है। कौन यम के मुख में जाना चाहता है, कौन अपने सिर को देने के लिये तैयार है, तुम कहो मैं वह करने के लिये तत्पर हूं। काम पूर्ति के उद्देश्य से उनका दम्भ अन्तरंग से बोल उठा। कहु केहि रंकहि करउं नरेसू। इतना होने के पश्चात् भी गोस्वामी जी कहते हैं। कामी व्यक्ति अपने काम को शांत नहीं कर सकता। यह सब उसके लिए संभव है पर उसका मन काम से पूर्णतया आबद्ध है क्योंकि वह स्वयं से कहता है। मैं यह सब तो स्वभावत: कर सकता हूं। पर मन तव आननचंद चकोरू। यह स्वयं मानस रोगी के रोग का चिह्न प्रकट करता है। काम में लज्जा नहीं रह जाती। काम में भय नष्ट हो जाता है। स्थान का प्रश्न नहीं उठता और अन्ततो गत्वा यदि उसे काम की पूर्ति नहीं हुई तो महान् शोक में व्याकुल हो जाता है। दोनों स्थितियों में यह रोग विनाशकारी है। जैसे पतंग दीपक में जल जाते हैं उसी प्रकार कामी व्यक्ति जलता रहता है। मानस रोग के अन्तर्गत यह प्रबल तीन खल बताये गये हैं जो तीनों महान् प्रबल रोग बताये गये हैं। तात तीन अति प्रबल खल काम, क्रोध और लोभ। यह रोग बहुत व्यापक और विस्तृत है। इसमें पात्र के चुनाव की भी आवश्यकता नहीं होती। मानव देवता ऋषि देवर्षि सभी इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

क्रोध :-

मानस रोग के अन्तर्गत क्रोध को पित्त कहा गया है। इसमें रोगी का अन्तःवक्षस्थल जलता रहता है। इसमें ज्ञान नहीं होता क्रोधवेश में प्राणी ज्ञान शून्य हो जाता है उसमें उसो शरीर निर्बलता और सबलता का ज्ञान नहीं होता। उसके लक्षण को बताते हुये गोस्वामी जी प्रधान रूप से दोनों पक्ष के लोगों का वर्णन करते हैं। रावण और राम दैवी एवं आसुरी दोनों पक्ष में यह रोग समान रूप से विद्यमान है। रावण के सीता हरण काल में तुलसी सीता का हरण क्रोध में ही बताते हैं क्योंकि अपने परिधि में रहनेवाली सीता को बाहर ले आने का कार्य कपट ने किया पर उनके केन्द्र बिन्दु से दूर ले जाने का कार्य क्रोध ही का था। रावण ने सीता को अपने रथ पर बैठाया जब वह क्रोध के वशीभूत हुआ। उचित अनुचित का भान उसे नष्ट हो गया। तत्पश्चात् सीता को उसने रथ पर बैठाया जैसा कि तुलसी के शब्दों में स्पष्ट है — क्रोधवंत तब रावण लिन्हेसि रथ पैठाइ। इस रोग की उत्पत्ति कपट और भय वस होती है।

इसके दूसरे लक्षण को प्रतिभाषित करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि यह उत्तर प्रत्युत्तर में भी उत्पन्न होता है। अतिसंघर्षण इसी का संकेत मात्र है। काष्ठ चन्दनादि का प्रमाण पुष्ट करते हुए तुलसी ने इसी भाव को सिद्ध किया है पर रावण का क्रोध यहां दो कारणों से उत्पन्न हुआ। एक भय दूसरा कपट। कपट करने वाला प्राणी जब अपने कार्य में सफल हो जाता है तत्पश्चात् उसे क्या करना चाहिए इस निष्कर्ष संकल्प पर पहुंचते ही वह भयभीत हो जाता है और यदि विपदा न्याय संकल्प को लेकर उग्र हुआ तो तत्काल क्रोध उत्पन्न हो जाता है। ठीक यही बात मानस रोग के अन्तर्गत आए हुए रावण की भी है। यद्यपि मैंने पूर्व में इसे अवगुण कुछ सन्निपातोबताया था तथा पि ऐसे रोगी के अन्तर्गत क्रोध होना

स्वाभाविक जान पड़ता है । रावण जब सीता को लेकर चला तो क्रोध के पूर्व में आये हुये भय अपना प्रदर्शन करने लगे । भयरथ हाँकि न जाय " पर क्रोधबल इतना बलवान था कि अपना स्थान मुख्य रूप से रखे हुए था । मार्ग में दैवी सम्प्रदाय का एक व्यक्ति मिला जिसको हम जटायू ग्रिध के नाम से अभिहित करते हैं । क्रोध में क्लेशता होता है और उके अन्तर्गत जो भी प्राणी आता है उसे क्लेश प्राप्त होता है । क्रोधी रावणके वश में सीता महान् क्लेश में पड़ी हुई अपने आर्तनादको करती रावण के रथ पर बैठी चली जा रहीथी । आकाश मार्ग में उड़ने वालेग्रि ध ने देखा । यह करुण पुकार किसी महान् भद्र महिला की ही सकती है और वह राक्षसों के भयंकर क्रूर कर्म में विलाप कर रही है । विमि मलेच्छ बस कपिला गाई," की तरह से यहविलाप है । यहाँ रावण क्रोधावेश में सीता को रथ पर बैठाया। ठीक यहीस्थिति महान् परमार्थी जटायू गीध की हुई । मानस रोगके अन्तर्गत आनेवाले क्रोध की उत्पत्ति रावण में भय और कपट के कारण हुई पर गीध में जानकी के विलाप को सुनकर ।

अधम निशाचर को जानकर सीता को कपिला गाय के समान एवं निशिचर को म्लेच्छ समझकर महान् अन्याय एवं अधर्म जानकर हुई । रावण कार्य मेंभी क्रोध का होना स्वाभाविक होता है क्योंकि जब धार्मिक एवं परमार्थिक व्यक्ति अपने सिद्धान्त पर अडिग रहता है उस समय उसके मनोनुकूल कार्य होते उसेनहीं दिखायी देते तो उसे अवश्य क्रोध आ जाता है । ठीक यही बात जटायू की थी । उसने सबसे पहले क्रोधी रावण के हाथ में पड़ी बिलखती हुई सीता को अपने सान्त्वना भरे ब शब्दों से समझाया - सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा और पुनः निशिचर के संहार की बात कही । करिहौं जातु धान कर नाशा ।"

इतना कहने के पश्चात् भीजब निशिचर स्थिर नहीं हुवा और सीता विलाप नहीं बन्द हुवा तत्काल ग्रीध को क्रोध आ गया । यहाँ क्रोध

को उत्पत्ति के दो कारण हैं। दया और रक्षण। जब यह दोनों जटायू के बाणी द्वारा उसे स्वयं असमर्थ दीख पड़े उसकाल में बड़ी तीव्र गति से वह ऊपर से चला। क्रोधवंत हृदय से उसको गति टूट पवि पर्वत कहुं जैसे - ऐसा तो उसका वेग था एवं वहक्रोध जो मानस रोग के अन्तर्गत पित्त बताया गया है उससे युक्त होकर चला। क्रोध में छाती जलती है। उधर रावण को भी छाती जल रही थी। क्योंकि अतिशीघ्र उसे सीता को लंका लेकर पहुंचना था।

इधर गीध को भी छाती जल रही थी क्योंकि उसे राक्षस के त्रास से त्राण दिलाना था। इसलिये जब वह चला उस समय वह क्रोध में था। धावा क्रोधवंत खग कैसे। इसका प्रभाव अवगुणाकुल क्रोध वाले रावण पर लेशमात्र भी नहीं पड़ा। क्रोधयुक्त हृदयी के वाणी द्वारा भी उसमें उत्पन्न होनेवाले मानस रोग का निदान किया जाता है। क्योंकि उसके वाक्य और कार्य दोनों निर्दय एवं कठोर होते हैं। जटायू ने अपने क्रोधावेश में महान कठोर वाक्य का प्रयोग किया। रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही, निर्भय चलेसी न जानेसि मोहिं। यहरेरे और दुष्ट शब्द दोनों रोगी के रोग के लक्षण का परिचय देते हैं। वह परमार्थी हो या कुमार्गी यह क्रोध विकार प्रबल मानस रोग के अन्तर्गत कहा गया है। इन कठोर वाक्यों का प्रयोग करते क्रोधावेशमें आते हुये जटायू को रावण ने देखा। जटायू कृतान्त के सदृश आ रहा था। इनका यह भयंकर आवेश देखकर वह मन से अनुमान करने लगा कौन हो सकता है। पर समझ नहीं पाया क्योंकि क्रोधयुक्त हृदयवाले व्यक्ति की बुद्धि सद्विवेकिनी नहीं होती वह क्रोध के कारण स्पष्ट जान और समझ नहीं सकता। रावण का अनुमान गलत हुआ। उसको विश्वास था कि यातो मैनाक पर्वत होगा या तो पक्षियोंके राजा गरुड़ होंगे पर यह दोनों अनुमान गलत हुआ। तब तक जटायू निकट आ गया अब रावण ने यहदेखा और जाना कि यहतो वृद्ध गीध जटायू है पर क्रोध ने बुद्धि को यहां भी ठीक समझने मेंबाधा पहुंचाया। क्योंकि क्रोधी अपने को निर्बल नहीं मानता और तब तक निर्बलता नहीं स्वीकार करता जब

तक उसका कार्य भंग नहीं हो जाता । रावण अपने कार्य में सफल हुआ । इसलिये उसका क्रोध कम न होकर बढ़ता हो गया । परिणाम यह हुआ कि जटायु को भी उसने जरठ स्वीकार कर लिया । जाना जरठ जटायु ऐहा । यह निश्चय कर लिया कि यह मेरे हाथों द्वारा मारा जायेगा । यद्यपि युद्ध में जटायूने अपना अद्भुत कौशल दिखलाया पर रावण ने पूर्व में ही संकल्प कर लिया कि मम सर तीरथ छाड़ी देहा । रावणके इन वाक्यों को सुनकर गीध में और क्रोध आ गया और यह कहते हुये चला कि रावण मेरी बात को सुन, तजि जानकी कुशल गृह जाहू । नाहित अस होइहि बहु बाहू । क्रोध युक्त जटायु ने तजि जानकी और बहु बाहू ये दोनों भाव उसके बल और कृपा के परिचायक हैं । अर्थात् जानकी को छोड़ देने के पश्चात् तुम कुशल से घर लौट जावोगे नहीं तो हमारा तुम्हारा युद्ध होगा ।

रावण अत्यन्त क्रोधि था इसलिये वह इस बातको स्वीकार नहीं किया । क्योंकि इन दोनों को एक ही मानस रोग क्रोध के रूप में विराजमान था । केवल इसकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से थी । राक्षसराज रावण का क्रोध स्वार्थपरक एवं कपटपरक था और जटायु काक्रोध परमार्थपरक और दयायुक्त था ।

अतएव रावणको समझाते हुये गीध ने अपना आवेश प्रकट किया । रावणके क्रोधाभिमान ने गीध को अत्यन्त निर्बल समझ लिया था । जैसा कि पूर्व में जरठ आदि शब्दों का प्रयोग किया है । पर गीध अपने बल का परिचय देने के साथ-साथ राम रोष पावक अति घोरा । होइहिं सकल सलभ कुल तोरा । राम के रोषाग्नि में तुम्हारा समस्त कुल समाप्त हो जायेगा । यह भी रावण से निवेदित किया पर वह गीध में जटायूकी बाधा के रूप में देखकोई उत्तर न देकर सीधे लंका चला जा रहा था । क्रोधातुर जटायू ने जब यह देख लिया कि यह हमारी बात नहीं सुन रहा है तो उसके शरीर में भयंकरक्रोध का संचार हो गया । यहमानस रोग स्थिति पाकर काल देखकर बढ़ता घटता रहता है । जब रावण ने कोई समुचित उत्तर नहीं दिया तत्पश्चात्

'तबहिं गीध धावाकरि क्रोधा ।'[1] और इस बार उसका भयंकर क्रोध था कि वह कार्यरूप में परिणित हो गया । अर्थात् रावण के ऊपर उसने सीधे प्रहार कर दिया । रावण के कच को पकड़कर उसको विरथ कर दिया और पृथ्वी पर गिरा दिया । पुन: सीता जी का रक्षणकर रावण के पास आ गया । अबकी उसने चोंच के पैने प्रहार से रावण के देह को विदीर्ण कर दिया । रावण को एक दण्ड मुर्च्छा आ गयी । जिससे रावण का क्रोध और बढ़ गया । रावण जिसे वृद्ध समझता था और निर्बल जानता था उसके द्वारा पराजित हुआ । मानस रोगके अन्तर्गत क्रोध का विकारी यदि उसका क्रोध अवगुण से आया है तो महान् बलवान् होने के पश्चात् भी क्रोध के कारण निर्बल हो जाता है । रावण जैसे महा योद्धा राक्षस राज को गीध ने मारकर मुर्च्छित कर दिया । यह परमार्थ दया से उत्पन्न क्रोध का परिचय है ।

रावण ने जब यह देखा कि इससे त्राण पाना मुश्किल है तो उसने तत्काल तीक्ष्ण परमकराल कृपाण को निकाल लिया यद्यपि उसने धर्म-यहाँ भी महान् अधर्म किया है नि:शस्त्र जीव पर शस्त्र से प्रहार करना अन्याय और अधर्म है । तब सक्रोध निसिचर खिसियाना । काढ़ेसि परम कराल कृपाना ।'[2] और उसने तत्काल जटायू के पंखको काट दिया पंखके कटते ही जटायू धराशायी हो गया पर रावण की वीरता रावण का बल पौरुष लेशमात्र भी वह स्वीकार नहीं किया । क्योंकि उसके जितने भी कार्य थे वे सब अवगुण से सम्पन्न थे । उसने एक मात्र राम को ही इसमें प्रधान माना । सुमिरि राम की अद्भुत करनी ।'[3] ऐसे अवगुण युक्त क्रोधी

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दोहा सं० २८, चौ० सं० १८ ।

२- उपरिवत् : चौ० सं० २१ ।

३- उपरिवत् : चौ० सं० २२ ।

का आदर सज्जन लोग नहीं करते । सीता को पुनः रथ पर बैठाकर वह लंका की तरफ चल पड़ा । पर क्रोध ने अपना प्रभाव पूर्ववत् जमाये रखा । "चला उताइल त्रास न थोरो,"[1] क्रोधी रावण के वश में पड़ी हुई सीता विलाप करती हुयी आकाश मार्ग से चली जा रही थी । जैसे व्याध के वश में विवश पड़ी हुई सभीत मृगी हो । यह क्रोध एक प्रमुख मानस रोग है जो बड़ा ही भयंकर होता है इसमें प्राणी अपने संकल्प को लेकर सुखी और दुःखी होता है । हर समय ऐसे प्राणी की छाती जलती रहती है । रावण की भी यही दशा थी । वह इस रोग से ग्रस्त होने के कारण जीवन भर क्रोध पित्त का रोगी बना रहा । इस रोग के आने के पश्चात् अन्य मानस रोगों के आने का पूर्ण संशय रहता है । परमार्थी गीध को भी क्रोध था । पर उसका क्रोध केवल रावण के हाथ से सीता को मुक्त करने तक ही सीमित था । पर जब वह काम नहीं हो सका तो वह पुनः अपने आत्माराम के चिन्तन में सन्नद्ध हो गया । गुणाकृत क्रोध और अवगुणाकृत क्रोध में इस प्रकार के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं ।

लोभ :-

मानस रोग के तीन प्रबल रोगों के अन्तर्गत लोभ भी आता है । इसे कफ के रूप में बताया गया है । क्रोध को पित्त काम को वात और लोभ को कफ के रूप में व्यवहृत किया गया है । योगीराज जनक के स्वयंवर में सीता को पाने के लोभ से बहुत से देवता, राक्षस, मानव बैठे हुए थे लोभ में इच्छाओं का शमन नहीं होता है । वह अपनी इच्छित वस्तु को पाने की अभिलाषा बराबर बनी रहती है । ये सब राजा सीता को प्राप्त करने के लोभ से व्याकुल हो रहे थे । यह व्याकुलता ही कफ है । इसमें व्यक्ति व्याकुल होता है अनेक प्रकार की इच्छाएं अन्तर में उत्पन्न होती हैं । इसमें बाह्य प्रदर्शन भी होता है जो सीता के लोभी राजा नहीं थे वे तो शान्त बैठे रहे उन्हें मानस रोग लोभ ने परेशान

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दोहा० सं० २८, चौ० सं० २१ ।

नहीं किया था । यह तो अज्ञानियों में आता है । अज्ञानी राजा योगी राजा जनक की प्रतिज्ञा को सुन अपने परिकर को साथ कर अकुलाकर उठे । कफ के बढ़ जाने से व्यक्ति की व्याकुलता होती है । वह अकुला जाता है । वही इन राजाओं की हालत थी । क्योंकि इनमें सीता को प्राप्त करने का प्रबल लोभ था । इन लोगों ने लोभ के वश होकर अपने अपने इष्ट देवों को प्रणाम कर जिस शिव धनुष पर प्रतिज्ञा थी । उसे तोड़ने के लिये चले । कफ का रोगी काम के घिर जाने से अर्थात् लोभ के बढ़ जाने से व्याकुल हो जाता है । कभी ठीक देखता है कभी तमक कर के और कभी निर्मल जैसी उसकी दृष्टि हो जाती है जो कार्य कभी सम्भव नहीं उसे भी करना चाहता है ।

राजाओं ने शिव धनुष के सम्मुख जाकर अपने आपको भुला लिया । "तमकि ताकि तकि शिव धनु धरहीं । उठै न कोटि भांति बल करहीं ।"[1] यह कफ का रोगी बलहीन होता है । इसलिये इसमें शारीरिक शक्ति नहीं होती है । यद्यपि क्रोध और काम में पक्षपात नहीं है वह तम तमाता है फिर देखता है फिर निर्बल होने के कारण उसकी दृष्टि शक्ति-हीन हो जाती है । ताकि और तकि का यही भाव अभिव्यक्त होता है जो लोभी नहीं है वह शिव चाप के समीप नहीं जाता है । "चाप समीप महीप न जाहीं"[2]

लोभी राजा जिन्हें कफ लोभ है वह मूढ़ तमक करके धनुष को पकड़ते हैं और जब उठता नहीं है तो लज्जित होकर चले जाते हैं । लोभ जो कफ है उसकी प्रकृति निर्बल है इसमें तमोगुणता है पर कार्य की क्षमता नहीं । वह जब कार्य में असफल हो जाता है पुनः उसमें लज्जा का प्रादुर्भाव होता है । ठीक यही बात इन राजाओं की दिखायी पड़ती है । लोभ का रोगी क्षीण हो जाता है वह बराबर लोभ होने के बाद भी कुछ कर नहीं पाता।

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दोहा सं० २४८, चौ० सं० ७ ।
२- उपरिवत् : सं० ८ ।

यह वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा से उत्पन्न होता है। इनसे शम्भु सरासन डिगता नहीं। उसी प्रकार से जैसे कामी पुरुष का वाक्य और सती का मन होता है। लोभी की दम्भ बल होता है वह कहता बहुत है पर तिल मात्र भी कर नहीं पाता। "रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भर भूमि न सके छुड़ाई।"[१] जिसके मन में भयंकर भय होता है। वह बाके लोगों की वाणी को सुनकर परम भयभीत होता है और अपने को छिपाने की चेष्टा करता है क्योंकि यह कपटी उलूक के सदृश होता है जैसे उलूक दिन के आते ही छिप जाता है वैसे ही यह ज्ञानी और सज्जन लोगों कीबात को सुनकर अपने को छिपा लेता है।

इसे वैराग्य प्रकरण प्रतिकूल लगता है यह जिस वस्तु में लोभ रखता है उसे किसी भी प्रकार पाने की चेष्टा करता है। ममता और लोभ में इतना अन्तर है कि ममतावाला व्यक्ति अज्ञानवश अपने कार्य में रत होता है और लोभी स्वार्थवश। जहाँ उसकी कामना पूर्ति होती है उसी तरफ उसकी दृष्टि जाती है। इसीलिये वैराग्य अच्छा नहीं लगता। जैसा कि कहा गया है-" अति लोभिहिन विरति बखानी।"[२] यह लोभी राजा धनुष टूटने के पश्चात वहाँ बैठे थे। लोभी प्राणी उसको तृप्ति नहीं होती क्योंकिवह लोलुपतावश वस्तु के पाने की इच्छा रखता है। सम्मान मर्यादा की तरफ उसकी दृष्टि नहीं होती। वह किसी भी प्रकार अपने उद्देश्य की पूर्ति चाहता है। लोभी लोलुप कलकीरति चहई। धनुष टूट जाने पर जो लोभी राजा थे वह अभागे उठउठ करके अपने सनाहको पहनने लगे और मझा गाल बजाने लगे। वे कहने लगे कि अरे कोई सीता को इनके हाथों से छुड़ा लो क्योंकि लोभी तो निर्बलहोता है। स्वयं के बल का कोई भरोसा उसको नहीं होता। जहाँ वहाँ गाल बजाकरके वे सब लोभी राजा मूढ़ कह रहे थे।[३] लेहु छोड़ाइ सीय कह कोऊ।

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दोहा सं० २५१, चौ० सं० २।
२- रामचरित : सुन्दरकाण्ड : दोहा० सं० ५७, चौ० सं० ३।
३- बालकाण्ड : दोहा० सं० २६५, चौ० सं० ३।

वे अपने पर भरोसा नहीं रखते वे कहते हैं कि कोई भी सीता को छुड़ा ले और पहनते हैं सब अपनी सनाह । इससे यह स्पष्ट होता है कि लोभी मूढ़ और निर्बल होता है। जिस धनुष को ये सब उठै न कोटि भाँति बल करहीं ।[1] शीतल होकर बैठ गये थे । उस धनुष को राम जी बिना बल लगाये ही तोड़ दिये अर्थात् उन्हें कोई श्रम नहीं करना पड़ा । पर यह लोभी राम के लिये कहते हैं कि यदि[2] ब्राघहु[3] नृप बालक दोऊ" । और लोभ वश जोक्त हमहिं कुंअरि को बरई ।"[4] यह कहते हुए योगी राजविदेह को भी संकेत करते हैं " जो विदेह कछु करइ सहाई । तो उसे भी दोनों भाइयों के साथ समर में जीत लो । ये लोभी राजाओं के लोलुपता भरे शब्द हैं । लेकिन वहाँ जो साधु विचार के[5] राजा थे । वे बोल उठे उन लोगों ने कहा राज समाजहिं लाज लजानो ।"

तुम्हारा बल प्रताप और बड़ाई पिनाक के साथ समाप्त हो गया । ऐसो तुम्हारो बुद्धि लोलुप हो गयो है कि तुम लोग अब भी झूठी डींग हाकते हो । तुम लोगों को ऐसो बुद्धि है तो मुह मसि लाई," अर्थात् मुख में कालिख पोत कर ईर्ष्या मद मोह को त्यागकर लोभ से विराग लो । अच्छे राजा यह बात उन लोभी राजाओं से कह रहे थे कि इतने में शिव के परमभक्त श्री परशुराम जीका आगमन हुआ । परशुराम स्पष्टवादी के समक्ष ये लोभी रजा उठकर के पिता के साथ अपना नाम लेकर दण्ड प्रणाम करने लगे । यह लोभी जीव की गति है । जिसका वर्णन धनुष यज्ञप्रकरण के माध्यम से रामचरितमानस में किया गया है । लोभी लोभ वश झूठ बोलता है । वस्तु पाने की इच्छावश बार-बार अनेक प्रकार के कार्यों का प्रदर्शन करता है । लोभी के लोभ कामना का कफ होता है जो कफ के रोगी के समान बराबर त्याज्य करने के बाद भी बना करता है । ये तीन प्रबल मानस रोगों में से एक है जिसको गोस्वामी[6] जी लिखते हैं -" तात तीन अति प्रबल खल, काम, क्रोध अरु लोभ ।"

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दो०सं०२४६,चौ०सं०७। २- उपरिवत्,दो०२६५, ३- उपरिवत् : चौ० सं० ४। ४- उपरिवत् : चौ०सं०५ । चौ०सं०३।
५- उपरिवत् : चौ० सं० ५। ६- दोहावली :दो०सं०२६४।

मानस रोग का वर्णन करते समय संत तुलसी ने काम, वात, कफ, लोभ, क्रोध- पित और इन तीनों के प्रीति लक्षण का वर्णन करते समय वे कहते हैं कि प्रीति करइ जौं तीनउ भाई । उपजइ सन्निपात दुखदाई ।[१]

ममता :-

मानस रोग के ये प्रधान तीन रोगों का वर्णन करने के पश्चात् गोस्वामी जी ने विषय मनोरथ नाना प्रकार के दुर्गम रोग हैं । ये शूल देने वाले इनके नाम को कौन जान सकता है फिर भी उन्होंने ममता दाद, कंडु इरषाई, हरष विषाद गरह बहुताई ।[२] आदि रोगों का वर्णन करते हैं । ममता दाद के समान है । यह रोग कभी जाता नहीं । इसका प्रभाव बताते समय तुलसीदास ममता तू न गई मेरे मन ते ।[१] इसमें अवस्था का विचार नहीं होता । यह उत्तरोत्तर दाद के समान बढ़ती जाती है। काले केश श्वेत हो गये दशन टूट गये शब्द स्पष्ट नहीं होते लोकको लज्जा चली गयी पर ममता मन से नहीं गयी । कफ पित्त और वात यह तीनों भयंकर रोग कंठ में आकर बैठ गये । मृत्युसूचक समय आ गया पर उस काल में भी यह अपने हाथ से जिन बच्चों में ममता है उन्हें वह बुलाता है जैसा कि गोस्वामी जी ने लिखा है ।[१] कफ पित वात कंठ पर बैठे, सुतहिं बुलावत करतें । इसका त्याग और नाश एकाएक नहीं होता । शनैः शनैः ज्ञानी लोग इसका परित्याग करते हैं । यह पुत्रादि, स्त्री, परिवार धनादि में विशेष पायी जाती है । जैसा कि सुग्रीव में देखा जाता है । इस प्रकार ज्ञानी लोग इसे त्यागते हैं जिस प्रकार सरिता का पानी धीरे धीरे सूखता है । रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ।[३]

सुग्रीव ने राम से बताया कि मैं और बालि दोनों भाई में ऐसी प्रीति रही कि जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता पर मायावी नामक राक्षस

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२० । चौ०सं०३१ ।
२- उपरिवत् : चौ० सं०० ३३ । ३- उपरिवत् : किष्किन्धाकाण्ड,दो०सं०१५, चौ० सं० ५ ।

ने हम लोगों में भेद पैदा कर दिया बालि मुझे शत्रु के समान समझने लगा और मैं अपने प्राण रक्षार्थ ऋष्यमूक पर्वत पर आकर रहने का निश्चय किया। सुग्रीव ने बताया कि मुझे शत्रु के समान बालि ने मारा, मेरा सर्वस्व ले लिया "हरि लीन्हेसि सर्बस अरु नारी।"[1] सुग्रीव की ममता इसमें थी इसलिये उसने राम को प्रधान रूप से बताया। तत्पश्चात् बालि का बध होने के बाद राम ने सुग्रीव को और अंगद को यह कहा कि अंगद के साथ तूं राज्य कार्य करो। अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू।[2] पर सुग्रीव अपने राज्य स्त्री की ममता में इस प्रकार बंध गया कि राम के कहे हुए वाक्य उसे स्मरण नहीं रहे। सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी।"[3]

यह ममता इस प्रकार की है कि तत्काल इसका निवारण नहीं होता। जैसे शशि मंडल बीच स्याही छुटै न कोटि जतन है, तुलसीदास बलि जाउं चरन तें, लोभ पराए धन ते। यह ममता रोगी सुग्रीव जिसके शरीर में दाद के समान यह बराबर बनी ही है। इसे छोड़ नहीं पाता। लक्ष्मण के क्रोध करने पर राम ने कहा उसे भय दिखाकर तात सुग्रीव को यहां ले आओ। हनुमान जी ने भी यहां हृदय में विचार किया कि राम के कार्य में ममतावश सुग्रीव ने ध्यान नहीं दिया बुलाकर बहुत समझाया। ये वैराग्य रूप हनुमान हैं और सुग्रीव के मंत्री हैं जिसका मंत्री वैराग्य हो वह अपनी ममता को त्याग कर राम का कार्य अवश्य करेगा। हनुमान की बात को सुनकर सुग्रीव ने कहा ममता के कारण मैं अपने परिवार में इस प्रकार आसक्त हो गया हूं कि यह विषय मुझे छोड़ न सके। इन सबों ने मेरे ज्ञान का अपहरण कर लिया - "विषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना।"[4] यह ममता विषय ऐसा है जिसके समान कोई नहीं है। नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं।"[5]

१- रामचरितमानस : किष्किन्धाकाण्ड : दो० सं० ५, चौ० सं० ११।
२- उपरिवत् : दो० सं० ११, चौ० सं० ६।
३- उपरिवत् : दो० सं० १७, चौ० सं० ४। ४- उपरिवत् : दो० सं० १८, चौ० सं० ३।
५- उपरिवत् : दो० सं० १६, चौ० सं० ७।

यह तत्काल छूटती नहीं। इस ममता में पड़े हुए जो जीव हैं उनके यशका नाश हो जाता है। ममता कैहि कर यश न नसावा।

ईर्ष्या :-

मानस रोग में ईर्ष्या भी है। यह ईर्ष्या एक दूसरे के प्रतिकूल रहती है। स्वयं में जो वस्तु इसमें नहीं होती वह दूसरे व्यक्ति में देखकर उत्पन्न होती है। यह कटु रोग है। यह ईर्ष्या रोग किसी के कार्यको बनते हुएदेखकर शान्त नहीं रह सकती। कुछ न कुछ षड्यंत्र करना इसका कार्य है। यह हर समय दाह के समान उत्पात कार्य में लगी रहती है। वह दूसरे की विभूति नहीं देख सकती। रामचरितमानस में यह कार्य मन्थरा का था। वह अयोध्या नगर के सजावट को देखकर मंजुल मंगल बाध को सुनकर लोगों से पूछती है क्योंकि उसको ईर्ष्या न उसे शान्त रहने दिया। राम के तिलक को सुनकर उसके हृदय में दाह उत्पन्न हो गया। रामतिलक सुन भा उर दाहू।[१] करइ विचार कुबुद्धि कुजाति।[२] वह सोच रही थी कि इस प्रकार होइ अकाज कवन विधि राती। इसकी ईर्ष्या ने महाराज दशरथ के कार्य बिगाड़ने के लिये इसे प्रेरित कर दिया। इसने सोचा यह कार्य उसी से हो सकता है जो हमारी तरह सोचने वाली होगी और राम राज्याभिषेक के लिये जिसके मन में ईर्ष्या होगी। उसने बहुत सोच विचारकर भरत की माता का चुनाव किया और उनके पास गई। अपने ऐसे भाव को प्रकट किया जिसे देखकर कैकयी को पूछना पड़ा। तू अनमनि कैसी हो गयी है हँसकर रानी ने पूछा। उसने उत्तर नहीं दिया बढ़े जोर जोर से सांस लेने लगी और नारि चरित्र करने लगी नैत्र से आंसू गिराने लगी। कैकयी ने कहा मैं जानती हूँ कि तू बड़ा गाल बजाती है क्यों लखन जी ने तो तुम्हें सीख नहीं दिया है। इतना पूछने के पश्चात् भी मंथरा नहीं बोली, गोस्वामी जी लिखते हैं कि वह बड़ी पापी है क्यों ईर्ष्या अनायास होती है। जैसे —

१- रामचरितमानस : अयोध्याकाण्ड : दो० सं० १२, चौ० सं० २।
२- उपरिवत् : चौ० सं० ३।

सापिनि श्वास छोड़ती है वैसे श्वास छोड़ने लगी सभीत होकर रानी कैकेयी ने कहा कहो महिपाल और राम की कुशल है। कोई अमंगल तो नहीं हुआ। राम, लक्ष्मण, भरत, रिपुदमन का नाम सुनकर उसके हृदय में महान शूल उत्पन्न हो गया और उसने कहा कि हमें कोई क्या सीख देगा। मैं किसके बल को पाकर गाल करूँगी। आज तो मैं राम को छोड़कर किसी का कुशल नहीं देख रही हूँ जिसे महाराज युवराज बना रहे हैं। विधाता कौशल्या के इस समय दाएं हो गया है। आप स्वयं जाकर देखो उस शोभा को जिसको देखकर मेरा मन क्षुभित हो गया। मुझे तो यह आश्चर्य है कि आप का पुत्र विदेश में है और आपको चिन्ता नहीं। इसलिये कि आप यह जान रही हैं कि महाराज हमारे वश में है भूप की कपट और चतुराई को आप लख नहीं पाती। क्योंकि नींद बहुत प्रिय सेज तुराई।[1] ऐसे प्रिय वाक्य को सुन करके कैकेयी ने मैला मन जानकर उसे बहुत फटकारा क्योंकि वह सब मन्थरा के ईर्ष्या भरे वाक्य थे।

ये उसे शान्त रहने नहीं दे रहे थे। जैसे खाज नहीं बन्द रहता। उसे हर समय जीव स्पर्श करता ही रहता है इसी प्रकार ईर्ष्यालु जीव शान्त नहीं रहता वह ईर्ष्या वश कुछ न कुछ ऐसे कार्य को करता रहता है जिससे उसकी ईर्ष्या की प्यास बुझती रहे। कैकेयी ने मन्थरा को कटु शब्दों का प्रयोग करते हुए कहा कि यदि तुमने पुनः कभी घर को बिगाड़ने की चेष्टा की तो तुम्हारी जीभ कटवा लूँगी। और मन्थरा के अवगुन को उसके समक्ष कहती हुई काने खोरे कूबरे, कुटिल, कुचालि जानि।[2] चेरि आदि शब्दों का प्रयोग करती हुई कैकेयी मुसुकाई ईर्ष्या के एक नेत्र होता है और एक नेत्र दूसरे का अवगुण, सम्पत्ति, प्रभाव देखने में लगा रहता है। उसमें छोटापन भी होता है। क्योंकि ईर्ष्या को कोई अच्छा नहीं कहता और कुटिल तो होती ही है। एक दूसरे की निन्दा करके ईर्ष्या करना और दूसरे को ईर्ष्यालु बनाना यही कुचालि है। यह चेरी की तरह देखने में लगती है।

१- अयोध्याकाण्ड : दोहा सं० १३, चौ० सं० ६ । २- उपरिवत् : दो०१४।का

बाह्य इसका बेरी की तरह से दृष्टिगोचर होता है। अन्दर खोटा होता है कुबरी के कूबड़ निकले हुए थे अपने शब्दों में भरत की माँ यह भी व्यंग्य करती है। ईर्ष्या में यह प्रधान अवगुण है। स्वभाव इसका कूबर निकला हुआ है। यही उसमें सबसे बड़ा अभाव है जो एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या पदा करता है। उसे बहुत प्रकार की मुद्रा बनाने का ढंग मालूम रहता है। भरत की माता के कहने पर उसने ऐसी दीन और परमार्थिक मुद्रा का प्रदर्शन किया कि पुन: रानी की बुद्धि उसके अनुकूल ही गयी। पुन: उसने मन्थरा के लिये स्वभावानुसार बड़े प्रिय शब्दों का प्रयोग किया और कहा -" प्रिय वादिनि सिख दीन्हेउ तोही। सपनेउ तोपर कोप न मोही।"[1] यह ईर्ष्या में अनुकूलता है और अनुकूलता यदि ईर्ष्या में आई तो बहुत बड़ी हानि होती है। उसे उचित अनुचित समझ में नहीं आता। यदि सीख देनेवाला व्यक्ति समीप में ईर्ष्यालु हो तो उसका परित्याग कर देना चाहिए। अपने हृदय की बात ऐसे व्यक्ति से कहना सदा अहित कर होता है।

ठीक यही बात कैकेयी के जीवन में हुई। उसने अपने हृदय की बात को मन्थरा के समक्ष रख दिया और धर्मनीति उसे उपदेश किया। ज्येष्ठ स्वामि सेवक लघु भाई।[2] कहकर अपने कुलरीति और मानव धर्म का वर्णन किया। यह दिनकर कुल की सुन्दर नीति है, इसके विपरीत कार्य इस कुल में कभी नहीं हुआ है। वास्तव में यदि तू कह रही है कि कल को यदि तिलक हो जायगा तो तेरे मन की जो अच्छा लगे वह मांग मैं तुझे दूंगी। कौशल्या के समान सभी माताएं राम को उनके सरल स्वभाव से प्यारी हैं पर मैंने यह देखा है कि मुझपर स्नेह उनका विशेष रहता है। यदि तू कहकि नहीं तो यह भ्रम है। ऐसी बात नहीं मैंने उनके प्रीति की परीक्षा ली है। यदि विधाता जन्म दे तो राम ऐसा पुत्र और सीता जैसी पतोहू प्राप्त हो। प्राण के समान राम मुझे प्रिय हैं और उनके तिलक में तुझे क्षोभ कैसे आ गया। ईर्ष्या का काम बड़ा विचित्र है। वह अपने दोष का अंकुर किसी न किसी प्रकार से दिखाती

१- रामचरितमानस : अयोध्याकाण्ड : दो० सं०१४, चौ० सं०१।
२- उपरिवत् : चौ० सं० ३।

व्यक्ति में बो देता है। परिणाम यह होता है कि ऊर्णनाभि के सूत्र के समान वहशंका बढ़ जाती है। ठीक यही बात कैकेयी के जीवन में हुई और वह शंका बड़ी भयंकर हो गयी। बार बार यहबात कैकेयी के अन्त:करण में उठती थी राम इतने महान् हमारे विश्वासपात्र और प्राण से भी अधिक मुझे प्रिय हैं। उन राम के प्रति मन्थरा ने ऐसा क्योंकहा यहबार-बार शंका भूत के रूप में उत्पन्नहोने लगी। सब कुछ अपनी बात कहने के पश्चात कैकेयी ने मन्थरा से यही जानना चाहा। इर्ष्याका कार्य यह कितना भयंकर है। कैसी विचित्र कुचालि है और कैसा खोटा कार्य उसने किया जिसमें त्रिकाल में भी कोई दोष नहीं पाया जाता। उसके प्रति इर्ष्या ने अपना इर्ष्या का बीज बो दिया वह थी दशरथ के राज की रनिवास में रहनेवाली मन्थरा।

मन्थरा शब्दका अर्थ होता है जो शुद्ध मनको अशुद्ध कर दे, उसका स्थरण कर दे। ठीक उसने वही कार्य किया। भरत की माता कैकेयी के अन्तर में शंका का यही विषय बना कि हर्ष के समय तुमने क्यों विषाद किया। इसका कारणमुझे बताओ मैं पूर्व से कहता आ रहा हूं। इर्ष्या विपरीत चलती है और इसकी विपरीतता दूसरे को शंका का कारण बनाती है। कैकेयी ने ज्योंही प्रश्न किया कि मन्थरा को अपने इर्ष्या का अवसर प्राप्तहो गया। वह इर्ष्या भरी वाणी में बोली। एकबार तो कह कर मैंने अपने सभी आशा को पूरा कर लिया अब मैं क्या कहूंगी ? दो जीभ तो होती नहीं मेरा अभागा मस्तक फोड़ने योग्य है। मैंने अच्छीबात कहा उसे सुनकर आपको दु:ख हो गया। यह इर्ष्या की भाषा बड़ी मीठी है। पर इसका परिणाम बहुत दुखद, जैसे खाज हाथ से स्पर्श करने और घर्षण करने पर अच्छा लगता है पर उसके बाद उसमें जलन होती है। ठीक यहीबात मंथरा की वाणी में है। वह ऐसी मीठी वाणी का प्रयोग करती है जिसको सुनने के पश्चात व्यक्ति कभी शंका नहीं कर सकता। मन्थरा ने कैकेयी के समक्ष एक बड़ी रहस्यमयी बात कही। उसने कहा कि मैं स्पष्टवादिनी हूं मुझसे झूठ-मूठ बात नहीं आती। यहां उसकी बुद्धिमानी यह है कि न तो झूठ बोलती है न

तो सत्य, वह तो ईर्ष्या को एक दूसरे के प्रति उत्पन्न करती है। वह कहती है कि कहहिं भूठ फुरि बात बनाई। सो प्रिय तुम्हहि करुव मैं माई।[1] उसने यहहवाला देते हुए कहा कि भूठी बात को जो सच्ची बना के कहे वह आपको प्रिय है। अब मैंने भी यही निश्चित कर लिया है कि ठकुर सोहाती बात स्पष्टता को छोड़कर मैं करुंगी और यदि ऐसा मुझसे नहीं हो पाएगा तो मौन रहूंगी और अपने अवगुण को तरफ संकेत करके कहा करि कुरुप विधि परबश कीन्हा।[2] विधाता ने मुझे कुरुप बनाकर परबश कर दिया। अब तो मुझे वही प्राप्त करना है जो उसके द्वारा मुझे मिलेगा। फिर ईर्ष्या भरी वाणी प्रहार किया। कोउ नृप होइ हमहिं का हानि।[3]

कोई राजा हो मेरी क्या इसमें हानि है पर ईर्ष्या तो है ही क्योंकि जिनके ईर्ष्या कपिट विरोधी। पर सम्पदा सकइ नहिं देखी। इतना तो है ही ईर्ष्यालु व्यक्ति को हानि और लाभ क्या होगा। वह तो एक दूसरे के बिगाड़ने के षड्यंत्र में लगा रहता है। पुन: उसने अपने तरफ संकेत करते हुए कहा कि हमारा कपाल जारने योग्य है। यह बात सत्य है क्योंकि ईर्ष्या का काम है दूसरे के ऐश्वर्य प्रतिष्ठा को देखकर बिना किसी वैर मैत्री के स्वभावत: जलना पर मन्थरा में यह ईर्ष्या की भावना बल्कि कहा जाय ईर्ष्या का रूप प्रत्यक्ष इसी का था। और इसमें अपनी ईर्ष्यावश एक दूसरे में फूट डालने की रहस्यमयी विचित्रता थी। कैकेयी ने यह देखा कि यह हमारे परम हित की बात सोच रही है और मैंने इसे जो कुवाक्य कह दिया था उसका इसे महान् दु:ख है पर इस प्रकार की कोई बात नहीं थी। एक प्रदर्शन मात्र इसका था और यह इसलिये था कि उसकी बात पर कैकेयी विश्वास कर ले। इसीलिए उसने पहले अपने विषय में और अपने विचार की उलाहना देते हुए कहा कि हमारा स्वभाव ही ऐसा है कि आपका जो अपकार हो रहा है वह मैं नहीं देख सकती। ठीक वो यह कह रही है इस भाव के विपरीत स्वभावानुसार मैंने यह बात कही और आपके अनुकूल यह बात थी कि इसलिए कह दिया

१- रामचरितमानस : अयोध्याकाण्ड : दो०सं०१५, चौ० सं०२।
२- उपरिवत् : चौ० सं० ३। ३- उपरिवत् : चौ० सं० ६।

जिसमें मेरे रहते आपका अमंगल न हो । अब इसमें कोई बड़ी मेरी चूक आपकी दृष्टिगोचर होतो हो तो आप उसे क्षमा करियेगा । मन्थरा ने यह भी देखा कि मैं जो कुछ भी कहती जा रही हूं उसका परिणाम नहीं समझ में आ रहा है। हमारा प्रयोग ठीक हो रहा है या नहीं । इसलिये उसने कैकेयी से जानने की इच्छा प्रकट किया । कैकेयी ने केवल एकबार प्रश्न किया और उस प्रश्न का उत्तर देते देते मन्थरा यहां तक आ गयी पर पुन: कैकेयी ने कुछ कहा नहीं । अत वह जानना यह चाहती है कि मैं जो कह रही हूं वह प्रतिकूल हो रहा है या अनुकूल और यह तभी जाना जा सकता है कि जब सुनने वाला व्यक्ति अपना भाव प्रकट करे । अब मन्थरा ने कहा मेरी चूक को क्षमा करना मैं तो आपके हित में कहा और सोचा था । यह कपट भरे शब्द गूढ़ और जो सुनने में प्रिय थे। कैकेयी के मन को अनुकूल लगे । यह इर्ष्या कंडु रोग है और यह फैलता है इसके आ जाने के पश्चात ठीक मन्थरा ने जैसा किया था वैसे वह भी पात्र करने लगता है। कैकेयी ने वही किया ।

दशरथ अपने विनयावनत शब्दों से समझाते हुये मृत्यु के मुख में चले गये । राम को राज्य की इर्ष्या और विषमतावश उसने बनवास दे दिया । प्रजा, गुरु, राज्य का हित करनेवाले इन सबों की एक भी बात नहीं मानी ।यह इर्ष्या भी मानस रोग के अन्तर्गत गोस्वामी जी वर्णन करते हैं। यह इर्ष्या कण्डु रोग है ।

मानसिक क्षय रोग :-

क्षय रोग जो मानव के शरीर को क्षय कर देता है । यह भी रोग विनाशकारी है । स्वभावत: यह कुछ इर्ष्या रोग से मिलता है पर एक बीच यह नहीं होता है कि यह दूसरे का कुछ बिगाड़ सके यह अपना ही विनाश कर लेता है । दूसरे के सुख को देखकर जो हृदय में जलन होती है वही क्षय रोग है । पर सुखदेखि जरनि सोइ छई ।[१] यह जलते जलते प्राणी स्वयं

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२०, चौ० सं०३४ ।

को नाश कर लेता है। इस रोग के अन्तर्गत सुपंणखा आती है। सभी रोगों का कारण है स्पष्ट करते हुये गोस्वामी जी ने लिखा है -" मोह है। यह पायी रोग मोह से उत्पन्न हुआ रावण जो है उसकी बहन सुपंणखा ही पायी रोग है।[१]

पाडी रोगका लक्षण है बहुत तीव्रता से फैलता है यह बड़ा प्राण घातक है। इसका रक्षण बहुत कठिन है। केवल एक ही प्रकार से रक्षण होता है। इसके सम्पर्क से जीव वैराग्य ले ले नहीं तो इसके जो भी पास रहेगा वह नष्ट हो जायेगा। सुपंणखा ने यही किया सुख के रूप राम को देखकर वह अपने को सम्हाल न पायी। उसके मन में राम को देखकर व्याकुलता हो गयी क्योंकि यह दुष्टहृदय दारुण जस अहिनी पंचवटी में राम को इसने सर्वप्रथम देखा था राम को देखकर यह अपने मन को रोक न पायी जिस प्रकार सूर्यकान्तमणि सूर्य को देखकर द्रवित हो जाती है, वैसे ही यह द्रवित हो गयी। यह रोग उत्पन्न यहीं से होता है। सुखके धाम राम के समक्षअपने भी रुचिर रूप बनाकर उपस्थित हुयी और अपनी प्रसन्न मुद्राका प्रदर्शन करती हुयी बोली रुचिर रूप धरि प्रभु पहं जाई। बोली बचन बहुत मुसकाई।[२]

सर्वप्रथम उसने राम की प्रशंसा किया तत्पश्चात् अपनी तरफ संकेत किया विधाता की तरफ वाणी द्वारा संकेत कर संयोग की चर्चा की। मेरे अनुकूल संसार में पुरुष नहीं है। मैंने तीनों लोक में खोज कर यह देख लिया। इसी कारण से अब तक मैं क्वांरी रही। मन ने कुछ माना इसलिये तुम्हें निहारा, सुपंणखा ने राम से कहा कि मैं क्वांरी हूं पायी रोग क्वांरा ही रहता है। विवाह के बाद भी यह क्वांरा बना रहता है क्योंकि

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं० १६, चौ० सं० ३।
२- उपरिवत् : दो० सं० १६, चौ० सं० ७।

दूसरे के सुख को देखकर इसमें जलन होती है और इसी वह सुख प्राप्त नहीं होता । इसने राम को देखा और अपने अन्तर्भाव को भी अभिव्यक्त कर दिया । पर वह वंचित रही । राम से। राम ने उसे देखा भी नहीं उन्होंने लक्ष्मणा की तरफ संकेत कर दिया । फिर वह लक्ष्मणा के पास गयी । लक्ष्मण देखे कि यह मोह कोबहन आयी है । यह मेरे पास कहाँ से आ गयी । यह तो जहाँ भी जायेगी विनाश करेगी । गई लक्ष्मन रिपु भगिनी जानी, लक्ष्मण ने उसे समझ लिया और मार्ग भी उससे बचने का प्राप्त हो गया । उन्होंने देखा कि राम ने उसे कैसे हटाया । वही प्रयोग इन्होंने भी कर दिया वे कहे सुन्दरि जिनके पास तू गयी थी मैं उन्हीं राम का सेवक हूँ । मैं स्वयं से कुछ करने में असमर्थ हूँ । पराधीन हूँ वे कोशलपुर के राजा है जो कुछ भी वह करेंगे उन्हें शोभा देगा । मैं तो सेवक हूँ और सेवक सुख चह मान भिखारी । ---नभ दुहि दूध चहहिं ये प्रानी ।[१]

सेवक यदि सुख चाहता है और भिखारी मान का भूखा है व्यसनी धन की इच्छा करता है । व्यभिचारी शुभगति की और लोभी यश की तो इनके लिये गोस्वामी जी ने लिखा है । ये नभ को दुहकर के दूध चाहते हैं जो कभी संभव नहीं है। पुन: लक्ष्मण के संकेतानुसार राम के निकट आई । राम ने पुन: अपने पूर्वनीति का प्रयोग किया और वस्तुत: लक्ष्मण के पास चली गयी । पर लक्ष्मण इसबार पूर्व जैसा नहीं कर सके । उन्हें रोष आ गया । और उसके निन्दनीय कर्म की तरफ संकेत करते हुए कहा तुम्हारा जो वरण करेगा वह लाज को तृण के समान परित्याग करेगा । अभिप्राय तुम लज्जा विहीन ही तुम्हारे साथ, तुम्हारे अनुकूल प्राणी ही रह सकता है । तुम्हारा वरण कौन करेगा जो अपना विनाश चाहेगा । जब उसने लक्ष्मण के ऐसे कठोर वाक्य को सुनी पुन: उनसे रुष्ट होकर राम के पास गयी और अपने वास्तविक रूप का प्राकट्य किया जो बड़ा भयंकर था । यह पापी रोग का रूप देखकर उससे बचने के लिये लक्ष्मण ने उसे उचित दण्ड दिया । राम के संकेतानुसार नाक और कान उसके दोनों काट लिये । मानो उन्होंने इसी पापी रोग के माध्यम से मोह रूपी

१-- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं०१६, चौ० सं० १५,१६।

रावणकी चुनौती दिया । राम के सुख स्वरूप को देखकर पाने की चेष्टा से निष्फल हुई । सुर्पणखा हृदयमें जलती हुई क्षयी रोग से ग्रसित लक्ष्मण द्वारा कर्णनासिका विहीन रावण के पहिले खर दूषण त्रिसिराके पास गयी क्योंकि यह दूषित लोगोंके पास जो दूषण युक्त हैं जिनका जीवन पशुवत है गदर्भके समान हैं जिनमेंतीनों प्रकार के अवगुण हैं अर्थात् त्रिदोष हैं ऐसे लोगोंके पास गयी । यह मोह रूपी रावण द्वारा पालित है । उसके विलाप को सुनकर खर दूषण त्रिसिरादि ने पूछा तो सूर्पणखा ने बताया तुम लोगों के पौरुषको धिक्कार है वो दण्डकारण्य में रहने वाले तपस्वियों ने मुझ पर ऐसा अत्याचार किया ।

मैं पूर्व रूप से कहता आ रहा हूं कि दूसरे के सुख को देखकर जो हृदय में जलन पैदा होती है । अध्यात्म रोग के अन्तर्गत क्षयी रोग के रूप मेंबताया गयाहै । यह क्षयी रोग बड़ी भयंकरता से फैलता है व व सूर्पणखा के द्वारा यह रोग राक्षसों में प्रवेश कर गया और १४ सहस्त्र खल जो खर दूषण त्रिसिरादिके साथ थे मारे गये । ठीक सुर्पणखाको जिसकार्य से नाक कान से हाथ धोना पड़ा ठीक वहीकार्य इन लोगों ने किया । यह तो पहले रोषावेशमें राम से संघर्ष करने के लिये चले और समरांगणमें आते ही इनके मन: स्थिति में बहुत परिवर्तनहो गया । सभी के सभी लोग रामको देखकर थकित हो गये । जिस प्रकार सूर्पणखा राम के रूप को देखकर विकल हो गयी थी जैसा कि संततुलसी ने लिखाहै - 'होहि विकल सक मनहिन रोकी'[१]।

ठीक यही स्थिति खर दूषण त्रिसिराकी हुई । इनसबों ने अपने मंत्री को बुलाकर कहा यह कोउ नृप बालक नर भूषण ।[२] नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते । हम भरि जन्म सुनहु सब भाई । देखि नहीं अस सुन्दरताई ।[३] उनलोगों ने यह निश्चय कर लिया कि वे मारने

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं० १६, चा० सं० ६ ।

२- उपरिवत् : दो० सं० १८, चा० सं० २ ।

३- उपरिवत् : दो० सं०१८, चौ० सं० ३-४ ।

योग्य नहीं हैं ।यद्यपि हमारीभगिनी को इन्होंने कुरूपकर दिया यथा- यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा । बध लायक नहीं पुरुष अनूपा ।[१] पर इन लोगों में क्षयी रोग का प्रादुर्भाव ऐसे हो गया था कि यह सब देखने कहने के पश्चात् भी इन लोगों ने निश्चय किया कियदि तत्काल यह सुन्दर पुरुष अपनी नारि को दे देंतो दोनों भाई जीते हुए घर चले जायेंगे । दूतों के द्वारा समाचार खर दूषण द्वारा भेजा गया जब श्री राम को यह संदेश मिला तो राम ने मुसकराकर कहा हम बन में मृगयाकरते हैं तुम जैसे खल जो मृग है उनको खोजते फिरते हैं । बलवान से बलवान जो रिपु हैं उनसे मुझको लेश मात्र भी भय नहीं रहता। एकबार हम काल से भी संघर्ष लेते हैं। इस बात को सुनकर दूतों ने जाकर खर दूषण से कहा जैसे क्षय रोग का प्राणी अपनी सम्पूर्ण शरीर की शक्ति को क्षय कर देता हैऔर अन्त में उसकी चेतना भी उसको छोड़ देती है । ठीक यही निशिचरोंकी हुआ । यह सबके सब समाप्त हो गये । पर यह बढ़ता गया जब सूपनखा ने इन सबको विनष्ट देख लिया फिर भी शान्त न रह सकी । रावणके पास जाकर क्रोध युक्त वाणी में राजनीति कीबात धर्म की चर्चा, सत्कर्म विद्या, विवेक, श्रम, जती, राज, मान, लज्जा, प्रीति, गुणी, इन लोगों कीचर्चा रावण के सम्मुख की और अन्त में अपने रोग को बताया । रिपु रुज पावकपाप, प्रभु अहि गनिअ न छोट करि । अस कहि विविध बिलाप करि लागि रोदन करहिं । सभा के बीच में व्याकुल बहुत प्रकार से रोती हुई सुपर्णखा बोली तोहि जियत दशकंधर मोरिकि अस गति होइ । व्याकुल होकर पृथ्वी पर धराशायी हुई अभिभूत सूर्पणखा को रावण के सभासदों ने उसकीबाँह को पकड़ कर उठाया । रावण ने पूछा अपनी बातती कहो किसने तेरे नाक कान को काट लिया । उसने राम का सम्पूर्ण परिचय दिया और अपने गुप्त रोग ईर्ष्या से उत्पन्न क्षयी का भी परिचय दिया । सोभा धाम राम अस नामा।

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं० १८, चौ० सं० ५ ।

तिनके संग नारि एकश्यामा ।[१] असने खर दूषण त्रिसिरा के पूरे कटक के साथ संहार की चर्चा की । रावण ने खर दूषण के घात को सुनकर महान शोक प्रकट किया और उसका सम्पूर्ण गात जलने लगा और यह लक्षण मानस रोग का क्षयी रोग के अन्तर्गत आता है । सुन दशशीश जरे सब गाता ।[२] गयउ भवन अतिशोच बस, नींद परै नहिं रात ।[३] यह क्षयी रोग का परिचायक है। पर सुखदेख जरनि सोइ क्षयी और इस लोक में जो भी निशाचर ग्रस्त हुए वे नष्ट हो गये ।

दुष्टता एवं कुटिलता :-

अनेकानेक मानस रोगों में मन की दुष्टता एवं कुटिलई बतलाया गया है । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ।[४] स्फटिक शिला पर पुष्प आभूषणों से सुसज्जित श्री जानकी के साथ राम बैठे थे दुष्ट विचार का देवराज इन्द्र का पुत्र मन का कुटिल वायस वेशमें श्री राम के बल को सठ देखना चाहा जैसे पिपिलिका सागर का पता लगाना चाहे वैसे ही महादुष्टमति राम के बल को देखना चाहा यह मनका कुटिल सुरपति सुत वायस वेश में सीता के शरीर में चोंच मारकर भागा वायसवेश दुष्टता एवं कुटिलता का ही परिचायक है । क्योंकि इस जीव के जितने भी कर्म हैं सब के सब दुष्टता एवं कुटिलता से पूर्ण हैं । ऋषि लोमश ने शाप देते हुए भुशुण्ड जी से यही कहा था । सत्य वचन विश्वास न करहो वायस इव सबही ते डरहीं ।[४] इसीलिये सपदि होहु पक्षी चंडाला । यह शाप उन्होंने दिया । काक रूप आमिश भोगी

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं० २१, चौपाई सं०८ ।

२- उपरिवत : दो० सं० २१, चौ० सं० १२ ।

३- उपरिवत : दोहा सं० २२ ।

४- उपरिवत उत्तरकाण्ड : दो० सं० १११, चौ० सं०१५ ।

होता है । उसे अधिक प्यार से भी यदि पायस खिला के रखा जाय तो भी वह अपने दुष्टतावश निरामिश नहीं हो सकता ।इसके सभी शरीर के अंग में से सबसे ज्यादा कठोर अंग इसका चोंच होता है । आज भी वर्तमान में यदि काक पक्षी किसी के शीर्ष स्थान पर प्रहार कर दे तो महान् अपशकुन माना जाता है और उसके प्रायश्चित के लिये अनेक प्रकार के शान्ति कर्म किये जाते हैं । सीता के शरीरमें प्रहार काक वेश में इन्द्रकुमार जयन्त ने किया । श्री जानकी जी का शृंगार उसकाल में पुष्प आभूषणों से श्री राम ने किया था । और प्रसन्न होकर श्री सीताराम शान्त स्फटिक शिला पर बैठे थे । स्फटिक शिला भी राम के परमप्रसन्न मुद्रा एवं पुष्प आभूषणों से सुसज्जित सीता जी के अद्वितीय आभा से परम मनोहर कान्ति से सुशोभित थी । दुष्टमति कुटिलमन का जयन्त इस पर मनोहर दृश्य को देखकर शान्त न रह सका । उसकी दुष्टता और कटिलाई ने उसे कुटिल कर्म करने के लिये बाध्य कर दिया ।

वह मूढ़ मन्द मति जयन्त ऐसा कठोर प्रहार किया कि जगत् के नियंता नियामक ने भी जान लिया क्योंकि सीता के शरीर से रुधिर का चलना यह राम के जानने की होबात थी । कहाँ शृंगार पुष्प आभूषण जिसे राम ने स्वयंबनाया था और यह कहाँ विशाल कुटिल कर्म अत्यन्त विपरीत और वह कर्म करनेवाला जयंत काक वेशमें यहकाक वेश ही महान् उपहास्पद है । महाभारत की वह आख्यायिका जो समरांगण में जाते हुए कर्ण का सारथि शल्य कर्ण को सुना रहाथा बड़ी रहस्यमयी है । कर्ण आमिश भोगी वैश्यों के द्वारा पालित वह काक जब बड़ा हुआ तो एक दिन वैश्यों ने समुद्रतट पर एक श्वेत पक्षी देखा था और उससे पूछने पर कि तुम कितना उड़ सकते हो तो उसे हंस ने उत्तर दिया था कि मैं एक उड़ान और दुष्ट कौए से पूछा तो उसने उत्तर दिया १०१ । अन्ततोगत्वा हंस सीधे आकाश मार्ग की तरफ चला और वह कुटिल मति दुष्ट काक

चाण्डालों द्वारा पालित नीचे ऊपर पंख की संकोचन और प्रसारण करते हुए अपनी ४०१ उड़ान का मिथ्या प्रदर्शन करते करते समुद्र में गिर गया। हंस बहुत दूर जाने के बाद अपने साथ उड़ते हुए काक को न पाकर लौटा और समुद्र में गिरे हुए छटपटाते कौये को अपने पंखे से निकाल कर बाहर कर दिया और स्वयं मान सरोवर चला गया। अभिप्राय काकवेश महान् कुटिल और दुष्टवेश है। यह आख्यायिका यद्यपि शल्य ने पाण्डवों और कौरवों के जीवन संकेत में कहा था। यह काक वेश निन्दनीय है और महान् जघन्य कार्य भी किया क्योंकि मानस में इसे कुष्ट रोग कहा गया है।

यही मानस रोग का कुष्ट रोग स्वयं अयुक्त तो होता ही है पर दूसरे को भी ठीक नहीं देखना चाहता। दुष्टता और कुटिलाई यह दोनों जयन्त में विद्यमान थी, ऐसा व्यक्ति अपने इस दुष्टता कुटिलाई वश कहीं भी शांत नहीं पाता क्योंकि इसके कर्म ऐसे निर्दय होते हैं कि स्वयं अशान्त रहता है। सीता के शरीर में चोंच प्रहार करना इसकी दुष्टता है और श्री सीताराम को परमप्रसन्न स्फटिक शिलापर बैठे देख न पाना इसकी कुटिलाई का परिचायक है। सीता के शरीर से जब रुधिर प्रवाह चला तो राम ने इसके ऊपर सीक धनुष सायक सन्धना।[१] राम अन्तर्यामी हैं कुटिल और दुष्ट मति वाले अन्तर से बहुत निर्बल होते हैं और जब यह अपने ऊपर किसी प्राणघातक कार्य को देखते हैं तो अपने प्राणरक्षार्थ जिस किसी से भी अपने रक्षण चाहते हैं। पर यह मानस रोग के कुष्ट रोगी होते हैं। इसलिये अपने स्वभाव वश वहां भी अपनी कुटिलता और दुष्टता का त्याग नहीं कर पाते जो इनसे सावधान हैं वे इन्हें अपने पास बैठने तक नहीं देते। राम ने सोचा जब यह काक है और अन्तर का बहुत निर्बल है तो इसके लिये कौन सा बल दिखाया जाय। यह तो सामान्य भय का प्रदर्शन मात्र देखकर अपने जीवन रक्षण में व्याकुल, विह्वल, विकलांग व्यथित हो जाएगा। इसलिये सीक धनुष सायक सन्धाना।

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : सोरठा नं० १, चौ० सं०८।

रघुश्रेष्ठ श्री राम अत्यन्त कृपालु हैं और सदा दीनों पर प्रेम रखने वाले हैं। उनके साथ जाकर अवगुण का घर मूर्ख कौवे जयंत ने ऐसा अनुपयुक्त कार्य किया रहस्यमय बात राम के बाण की यह थी कि मन्त्र से प्रेरित होकर ब्रह्म सर चला और वायस वेश में जयंत भागा। मैंने पहले ही निवेदन कर दिया है कि अन्तरंग इसका बहुत निर्बल होता है। दुष्कर्मों के फल को प्राप्त यह जयंत अपने प्राण रक्षार्थ अपने वास्तविक रूप में अपने पिता के पास पहुंचा। इन्द्रने यह देखा कि यह तो दुष्टमति कुटिल राम से विमुख है इसलिये इसे अपने पास नहीं रखा और कहा मैं तुम्हें त्राण नहीं दे सकता। जब पुत्र अपने पिता से ही यह उत्तर पा जायेगा तो उसका रक्षक कौन हो सकता है। वहाँ भी यह गया निराश होकर लौटा यह उसके मन की कुटिलता और दुष्टता का परिणाम है। वह चारों तरफ से निराश हुआ। "भा निराश उपजी मन त्रासा।" यथा चक्र भय ऋषि दुर्वासा।[१] "यथाचक्र भय ऋषि दुर्वासा यह भाव बड़ा रहस्यमय है। भगवान् के चक्र से अधिक वेग दुर्वासा का नहीं है पर अपनी प्राण रक्षा के लिए उससे बचने हेतु पूरी शक्ति लगाकर दौड़ रहे थे।

यह दौड़ना भय का कार्य है। भय समाप्त हो जाता है तो व्यक्ति स्थिर हो जाता है। ठीक यही बात जयंत की थी। कौवा कितना उड़ सकता है। यह तो शल्य के उस आख्यायिका द्वारा ही स्पष्ट हो जाता है राम का छोड़ा हुआ बाण जो मंत्र से अभिषिक्त था उसे लगता है राम ने यही मंत्र दिया था कि केवल तुम इसके पीछे पीछे लगे रहना और देखना इस दुष्ट की रक्षा कौन करता है। राम का बाण बहुत तीव्र है उसे यह साधारणजीव के समाप्त करने को क्या बात कौवा कितना व उड़ सकता है। पर राम का स्वभाव कृपा का है, वह राम की शक्ति को कैसे जानता है। राम ने सोचा यह भय से भीत होकर अपने त्राण के लिये जहांतहांजायेगा कहीं

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं० १: चौ० सं० ३।

इसको राम की शक्ति का ज्ञान हो जायेगा । यह कितनी महान् मूर्खता और उसकी कुटिलाई है कि आज भी राम के बाणों से अधिक मैं भाग रहा हूं, यह मानता है । भागते भागते उसे सब तरफ से निराशा ही मिली । अब उसके मन में त्रास उत्पन्न हुआ अत्यधिक दूर तक गया ब्रह्म धाम तक पहुंचा । शिवपुर तक सारे लोकों में भ्रमण किया और इतने स्थानों में जहां जहां गया वहां वहां किसी ने बैठने तक नहीं कहा । वह अत्यन्त श्रमित हो गया भय और शोक से व्याकुल हो गया । राम के बल को सर्वत्र उसने पाया । राम के बाण में तो ऐसी शक्ति है कि वह जहां था वहीं तत्काल समाप्त हो गया होता पर ऐसे भीरु हृदयी को राम ने ऐसा करना नहीं चाहा दुष्ट और कुटिल कुष्ट रोगी को जो अपनी प्राण रक्षा के लिये भाग रहा है ऐसे भागते हुये जीव को भगवान् क्या कोई साधारण योद्धा भी नहीं मारता । उसे मात्र भयभीत करने से ही उसकी मरणासन्न स्थिति हो जाती है ।

केवल राम ने बाण से यही किया । जयंत के पीछे पीछे चलता रहा । वह इतना अधिक भयभीत हो गया कि सब कुछ करने के लिये तैयार हो गया । एकाएक परम भागवत योगी नारद की दृष्टि इसपर पड़ी उन्होंने इसे विकल देखा । इसकी विकलता के कारण इनके कोमल चित्त में दया आ गई क्योंकि नारद देखा विकल जयंता । लागि दया कोमल चित्त संता ।[१] क्योंकि संत थे इन्होंने किसी प्रकार से कहीं भी उसका रक्षण नहीं देखा तो इन्हें दया आ गयी और एक उपाय इसकी रक्षा का सूझा वह यह था कि यदि इसे राम के पास भेज दिया जाय तो इसकी रक्षा हो सकती है तत्काल उन्होंने इसे राम के पास भेजा और वह यह चाहता ही था कि किसी भी प्रकार मेरे प्राण की रक्षा हो जाय । उसे मन भाया हुआ उसका कल्याणकारी मार्ग मिल गया । अबतो यहां तक वह करने को

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं०२ : चौ० सं०५ ।

तैयार था कि जिन राम के बल को देखना चाहा और उनको सीता पर कठोर चंचु का प्रहार किया यदि कोई उसे यहभी कह दे कि जाकर राम सीता के चरणों में चरणों में गिरकर अपने प्राण दान की तुम क्षमा याचना करो तो वह सहर्ष तैयार था । ठीक यही हुआ नारद जी ने पठवा तुरत राम पहँ ताही । कहेसि पुकार प्रनत हित पाही ।[१] प्रणात पाल अपने शरण में आने वालों का हित करनेवाले प्रणात पाहि मां पाहि मां और अत्यन्त आतुर समय राम के पदको जाकर गह लिया । त्राहि माम दयालु रघुराई आप में अतुलितबल है आपको अतुल प्रभुता है। मैं मतिमन्द दुष्ट कुटिल हृदयो आपको मैं नहीं जान पाया मुझे दुष्टता और कुटिलता रूपी कुष्ट रोग हो गया उस कर्म का फल मैंने प्राप्त कर लिया अब प्रभु पाहिमाम् आपके शरण में मैं आया हूं । श्री राम ने देखा कि इसके हृदय में त्रास और भय इस प्रकार से व्याप्त हो गया है कि यह इस समय अपने प्राण रक्षा में विह्वल व्याकुल होकर केवल अपना त्राण चाहता है । इसने अब स्वीकार कर लिया कि निजकृत कर्म जनित फल मुझे प्राप्त हुआ है प्रभो ? मैं आपके शरण आया हूं ।

पूर्व रूप से यह चर्चा करता चला आ रहा हूं कि मोह के द्वारा ही समस्त मानस रोगों की उत्पत्ति है । यह भी दुष्टता और कुटिलता उसी के अन्तर्गत आता है । इसे कुष्ट रोग कहा जाता है । जयंत की आर्तवाणी को सुनकर राम ने उसे दण्ड देने का निश्चय किया । ऐसे व्यक्ति को कौन सा दण्ड दिया जाय तो उन्होंने देखा कि इसके दो नेत्र हैं एक कुटिलता और दूसरा दुष्टता का । राम ने सोचा इसको यदि कुटिलता नष्ट कर दी जाय तो दुष्टता अपने आप समाप्त हो जायेगी क्योंकि कुटिलतावश ही इसने सीता के शरीर में चोंच मारने की दुष्टता की है इसलिये इसका एक नेत्र जो कुटिल है उसे नष्ट कर दिया जाय । श्री राम ने वैसा ही किया ।

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं० १ : चौ० सं० १० ।

सुनि कृपालु अति कोमल बानी ।
एक नयन करि तजा भवानी ।।[१]

गोस्वामी जी कहते हैं कि इसने मोहवश द्रोह किया था इसका तो वध करना उचित था पर राम ने इस पर छोह करके छोड़ दिया । कीन्ह मोह बस द्रोह, यद्यपि तेहिकर बध उचित । प्रभु छाड़ेउ करि छोह, को कृपालु रघुबीर सम ।[२]

अहंकार :-

अहंकार अत्यन्त दु:खदायी रोग है । यह व्यक्ति के कर्मेन्द्रिय हाथ एवं पावों में अवस्थित जोड़ में पाया जाता है । यह अत्यन्त दु:खद इसलिये है कि जीव के समस्त इन्द्रिय जन्यकर्म समाप्त हो जाते हैं । इसकी चर्चा करते हुए सन्त तुलसी ने कहा कि अहंकार अति दु:खद डमरुआ ।[३] यह पराजित होने के पश्चात् भी अपने अहंकार बल से किसी प्रकार जीवित रहता है । अति दु:खद इसलिये कहा गया है कि कुछ न करने के पश्चात भी यह अनेक प्रकार का संकट लिये रहता है । पर कुछ करने में असमर्थ होता है । हमारे शरीर को विशेष रूप से अहंकार होसंचालित करता है । चेतना तटस्थ रहती है और अहंकार करने के लिये बल प्रदान करता है । चेतना का कार्य प्रकाश है । अहंकार का कार्य मन के साथ बुद्धि के साथ कार्यरत रहना । इस सन्दर्भ में एक कथा रामचरितमानस के भी अन्तर्गत है । राजा भानुप्रताप महाधर्मनिष्ठ जिसके काल में पृथ्वी कामधेनु के समान फल देनेवाली उसका मंत्री शुक्र के समान सेना का अपार बल अपने इस विशाल धर्म शक्ति द्वारा प्रताप भानु ने सप्तद्वीपवाली पृथ्वी को अपने भुजबल के वश कर लिया । समस्त अवनि मंडल में केवल एक प्रतापभानु राजा हो गया पर महान् धनी महान दानी वेद शास्त्र पुराण का श्रवण करनेवाला गुरु देवता सन्त पितर

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं०१, चौ० सं० १४ ।
२- उपरिवत् : सोरठा नं० २ । ३- उपरिवत्: उत्तरकाण्ड : दो० सं०१२०: चौ० सं० ३५ ।

ब्राह्मण इनको सदा सेवा करनेवाला ऐसा प्रतापशाली राजा अपनी शक्ति और प्रताप केवल से सारी पृथ्वी पर अकेले राज्य का कार्य करता था । जो मनसा, वाचा, कर्मणा से धर्म और कर्म यह करता समस्त भगवान् वासुदेव के चरणों में अर्पित कर देता, सहसा एक दिन बन प्रान्त में मृगया करने के लिये अपने साथ समाज से सुसज्जित विन्ध्याचल के गम्भीर बन में प्रवेश किया ।

बन में घूमते हुये उसे एक वाराह दिखायी पड़ा जो बड़ा ही विशाल आकृतिका था जो अपनी भयंकर आवाज से और जीवों को भयभीत करते हुए भाग रहा था । नील महीधर सिखर सम विशाल वाराह को देख कर राजा ने अपने घोड़े द्वारा उसका पीछा किया । जब उसने देखा घोड़े को पीछे दौड़ते हुए और अधिक लोगों को आते हुए वह वायु के समान भाग चला राजा ने तुरंत वाण का संधान किया पर वह बाण को आते देख पृथ्वी में समा जाताथा । बार बार राजा ने बाण चलाया पर छल करके उसे शरीर को बचा लिया परिणाम यह हुआ कि अत्यन्त घोर जंगल में राजा वाराह का पीछा करते अकेला हो गया । साथ के सभी लोग पीछे छूट गये परन्तु इतना होने के पश्चात भी राजा ने बराह के मार्ग को नहीं छोड़ा ।

वह वाराह आगे जाकर एक गिरि गुहा में प्रवेश कर गया उसे बहुत अगम समझकर राजा ने वाराह को छोड़ पश्चाताप करते हुए वहां से चला पर उस महावन में वह भूल गया । खेद खिन्न भूख प्यास से आकुल राजा घोड़े के साथ जल ढूंढने लगा उसकी कुछ अचेतावस्था हो गयी और ऐसी स्थिति मेंबन में घूमते राजा ने एक आश्रम देखा वहां एक मुनिवेश में व्यक्ति दिखायी पड़ा । वह व्यक्ति भी राजा था । भानुप्रताप के द्वारा पराजित होकर अपने प्राणारक्षार्थ बन में आकर रहने लगा । अपना असमय समझकर वह पुन: घर नहीं गया अपने क्रोध को हृदय में दबाकर राजा जंगल में निवास करने लगा । दैववशात उसी राजा के पास भानुप्रताप गया ।

यह अमरुआ रोग मानस का अत्यन्त दु:खद रोग है इसको मानस रोग के अन्तर्गत अहंकार कहा गया है और यही बिगड़कर अभिमान का रूप धारण कर लेता है। इस राजा के पास अभी राज्यपाने की कामना थी, परन्तु कुछ कर सकने में असमर्थ था। इसलिये भानुप्रताप के समय को अच्छा समझ कर वह अत्यन्त ग्लानि में पड़ा अपने असमय को व्यतीत कर रहा था क्योंकि राज्य पाने का अहंकार अब भी इसके शरीर में जागृत हो रहा था। गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहिं नृप अभिमानी।[१]

यह राजा अहंकारी एवं अभिमानी है पर अमरुआ रोग से ग्रसित होने के कारण अत्यन्त दु:खी है। उसके निकट राजा भानुप्रताप गया। राजा को देखते ही वह पहचान गया पर प्यास क्षुधा से अभिभूत ह राजा इसे नहीं पहचान सका। घोड़े से उतर कर उसे प्रणाम किया और परम चतुर राजा ने अपना नाम नहीं बताया। तृषित राजा को देखकर कपट वेश में मुनि ने सरोवर दिखा दिया घोड़े के साथ मंजन पान करके राजा अत्यन्त हर्षित हुआ। पुन: तापस अपने आश्रम पर ले गया बैठने के लिये आसन दिया सूर्य अस्त हो रहा था। पुन: तापस ने मीठी वाणी में पूछा तुम कौन हो इस वन में अकेले क्यों घूम रहे हो तुम सुन्दर युवा एवं चक्रवर्ती के लक्षण तुम्हारे शरीर में अधिक दृष्टिगोचर हो रहे हैं जिसे देखकर तुझ पर मुझे दया आ गयी। यह अहंकार रोग का लक्षण है।

दम्भ, कपट, मद और मान :-

मानस के अन्यान्य रोगों में दम्भ रोग आया है। जिसके विषय में चर्चा करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है कि - "दम्भ कपट मद मान नेहरुआ।"[२] जो दम्भी है और कपटी है वह मद और मान इन दोनों में लिप्त है। दम्भ से मद होता है और कपट से मान बढ़ता है। ये दोनों

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दोहा सं० १५७, चौ० सं०४।

२- उपरिवत्: उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२०, चौ० सं० ३५।

लिप्सा मद और मान की विचित्र सी है । कपटी व्यक्ति हमेशा अपने अवगुणकों दोष को अपने कुकृत्यों को छिपाता है और मान के लिये अपने सद्गुणों को लोगोंके समान गाता है या सामने गाता रहता है । यहमद और मान विशेषतर दृष्टि में पाया जाता है। रावण के द्वारा प्रेरितहोकर कालनेमि हनुमान के मार्ग में आकर उनके कार्य में अवरोधक बना । हमारे यहां किम्वदन्ति है कि जब किसी के मार्ग में कोई अवरोधक बनता है तो उसे कालनेमि के उपाधि से संबोधित करते हैं । यह कालनेमि दम्भ और कपट का साक्षात् रूप है । यह अपने नेत्र रोग को भी ठीक ठीक सूचना देता है जाते हुए मार्ग में मन्दिर, सर और बाग को देखकर जल पीने की इच्छा से हनुमान् वहां पहुंचे । कपटवेश कालनेमि का था ही जो स्पष्ट रूप से देखने को प्राप्त होता है ।

हनुमान ने कालनेमि को देखा जो राक्षस वेष में नहीं सुन्दर वेष में था और वह मद्रवेष सुशोभित हो रहा था । लगता था कोई मुनि है पर यह कार्य दम्भ और कपट दोनों मोह के अन्तर्गत आते हैं जैसे - मोहरूपी रावण के द्वारा प्रेरित राक्षस रूपी अनेक रोग मानव के शरीर में स्थान, समय और संसर्गप्राप्त होने के बाद उत्पन्न होते हैं । मोह रावण ने इसे आदेश दिया था कि तुम जाकर हनुमान के मार्ग में अवरोधक बनो और इसको प्रेरणा लेकर कालनेमि आया । इसे दम्भ था कि मैं हनुमान को मार्ग में रोक लूंगा क्योंकि मुझमें कपट बल अधिकहै ।

निशिचरों में दो महान् कपटी हैं । एक मारीच दूसरा कालनेमि। इसमें कपट का दम्भ था मैं अपने कपट मायाबल से किसी को भी पराजित कर सकता हूं । प्रबल वैराग्य स्वरूप श्री हनुमान को इसने मार्ग में रोका यह इसके कपट का ही बल था । जैसा कि गोस्वामी जीने लिखा है- राक्षस कपट वेश तहं सोहा । मायापति दूतहिं चह मोहा ।[१]

१- रामचरितमानस : लंकाकाण्ड : दो० सं०५६ : चौ०सं० ३ ।

अपने कपट बल से मायापति के दूत को मोहित करना चाहा । कालनेमि ने यह पूर्ण विश्वास किया था कि यदि मैं हनुमान को अपने कपट में उनके कार्य से उन्हें वंचित कर दूंगा तो निश्चय है रावण के द्वारा मुझे बहुत बड़ा मान प्राप्त होगा । उसने उसी प्रकार का कार्य किया । उसके पवट वेशको देखकर हनुमान जी ने जाकर उस कपटीको प्रणाम किया और तत्काल राम के गुण गाथा को गाना शुरु किया कालनेमि को जो श्रीहनुमान जी ने प्रणाम किया, यह कार्य कपटपूर्ण था और राम की गाथा को वह जो हनुमान के सामने गानेलगा यह कार्य दम्भ का था । राम की कथा के अन्तर्गत दम्भी कालनेमि ने इस समय राम क्या कर रहे हैं इसकी मुख्य रूपसे चर्चा की । उसने कहा कि मैं त्रिकाल दर्शी हूं राम और रावण में महान् युद्ध हो रहा है । मैं यहां बैठकर देख रहा हूं । यह नेहरुवा रोग है । कालनेमि की यहबात दम्भवश हो रही थी वह रावणद्वारा प्रेरित होकर आया है और उसे रावण ने युद्ध की सभी बातोंको समझाकर भेजाहै । उस बात को यह अपने रहस्यमय कपट ढंग से रहा है । जैसे—

यहां भए मैं देखउं भाई ।
ज्ञान दृष्टि बल मोहिं अधिकाई ।।[१]

जो बातें रावणद्वारा कही गयी थी उन सभी बातों को उसने ज्ञान दृष्टि बल मुझ में है । इसलिये मैं यहां से बता रहा हूं यहबात हनुमान से कहा, यद्यपि उसने अभी तक कुछ देखा नहीं है दृष्टिदोष यही है । अभी तक हनुमान जीने कालनेमि से कुछ कहा नहीं था ।अब तक वह उसके दम्भ और कपट को सत्य मानकर उचित व्यवहार उसके साथ कर रहे थे । पर उन्होंने जब यह देखा इस व्यक्ति में ज्ञानचक्षु बल है तो इस व्यक्ति का कमंडल शुद्ध होगा पात्र कीशुद्धता समझकर जलपात्र की ही याचना की इच्छा थी कि जल प्राप्त हो पर जलके स्थान में कमंडल हाथ आया जिसमें जल नहीं था

१ – रामचरितमानस : लंकाकाण्ड : दो० सं० ५६, चौ० सं० ६ ।

मांगा गया जल और मिला कमंडल । हनुमान को विशेष प्यास लगी थी सामान्य जल से उनकी तृषा समाप्त न होती इसलिये उन्होंने तत्काल उत्तर दिया मेरी पूर्ण तृप्ति इस थोड़े जल से नहीं होगी । राक्षस का वह अशुद्ध कमंडल हनुमानको अभिष्ट नहीं था क्योंकि यह रोगी तो थे नहीं और यह दम्भी कपटी राक्षस था । मद और मान को चाहने वाला जिसे मानसरोग के अन्तर्गत नेहरुवा रोग के रूप में कहा गया है । कालनेमि के द्वारा दिये हुये उस कमंडल के जल से हनुमान ने अनिच्छा प्रकट की, स्पष्ट कह दिया कि मैं इससे तृप्त नहीं होऊंगा । :- कहकपि नहिं अघाऊं थोरे जल ।[१] जब कालनेमि ने देखा कि यह अज्ञात अवस्था में भी हमारे वास्तविक रूप को न जानने के पश्चात् भी कमंडल जल से अनिच्छा प्रकट कर रहे हैं तो तालाब की तरफ संकेत किया और यह कहते हुये कहा कि सरके पास जाकर तत्काल मज्जन करके आ जावो वह हनुमान के शिघ्रतापूर्ण कार्य में अपने दम्भ और कपट के द्वारा विलम्ब करना चाहता था । उसने सोचा ऐसा न हो कि अपने उद्देश्य प्यास की तृप्ति होने के पश्चात् यह शिघ्र अपने कार्य में चला जाय । इसलिये तत्काल अपने पास आने की बात कही । हनुमान जीको तो केवलजल की आवश्यकता था और उन्हें कुछ नहीं चाहिये । पर इसने एक नया कार्य उत्पन्न किया जल पीने के पश्चात् जब तत्काल तुम मेरे पास आवोगे उस समय मैं तुमको ऐसी दीक्षा दूंगा जिसे तुम्हें मेरे जैसा ही दिव्यज्ञान प्राप्त हो जायगा । यद्यपि हनुमानजीको इस ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी तथापि कालनेमि जैसा गुरु बिना विनय और प्रार्थना के ही जिज्ञासा विहीन हनुमान को भी दीक्षा देने के लिये कटिबद्ध हो गया पर कालनेमि के इस शब्द की तरफ हनुमान ने लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया । सरोवर के पास पहुंच कर हनुमान उसमें प्रवेश किये और प्रवेश करते ही उसमें रहनेवाली अभिशाप के वश मकरी हनुमान के चरण स्पर्श करते ही व्याकुल हो गयी । यह भी कालनेमि और रावण के द्वारा हनुमान को अपने

१- रामचरितमानस : लंकाकाण्ड : दो० सं० ५६, चौ० सं० ७ ।

माया पाश में आबद्ध करने हेतु आदेश पा चुकी थी । हनुमान जी के पांवको इसने पकड़ लिया । कपि ने इसको मारा और हनुमान जी द्वारा मारे जाने के कारण यह अपने अभिशाप से मुक्त हो आकाश मार्ग की तरफ चली और आकाश में जाकर उसने बताया आपके दर्शन से मैं निष्पाप हूं । हे कपि मेरा शाप जो मुनिवर द्वारा दिया गयाथा वह समाप्त हो गया । मैं एक बात और आपको बताना चाहती हूं कि जिसे मुनि समझकर आपने प्रणाम किया है वह मुनि नहीं बल्कि कपटी है और घोर निशिचर है । मैं यह सत्यबात कहती हूं मेरी बात को मानियेगा । ऐसा कह कर वहअप्सरा चली गयी । निशिचर के निकट हनुमान आये जो महान दम्भी और कपटी था जिसे गोस्वामी जीने मानस रोग के अन्तर्गत दम्भ - कपट मदमान नेहरुआ कहा है । हनुमान ने कालनेमि से कहा जब उसके कपट को जान गए दोक्षा के पहले गुरुदक्षिणा दी जाती है तो पहले गुरुदक्षिणा ले लो पुनः पीछे हमें मन्त्र देना क्योंकि बिना कहे तुमने दीक्षाकी बात कही थी । तुमने दक्षिणा की चर्चा नहीं की थी ।

इसलिये पहिले गुरुदक्षिणा पीछे गुरुमंत्र । पहिले गुरु दक्षिणा लो पुनः गुरु मंत्र देना । हनुमान ने कालनेमि दम्भी कपटी के साथ वही किया । तत्काल इस रोगी को शिर में लंगूर लपेट कर नष्ट कर दिया और मरते समय उसने अपने कपट और दम्भ को प्रकट किया । निज तन प्रकटसि मरती बारा ।[१] यहहमारे रामचरितमानस के मानस रोग के अन्तर्गत दम्भ कपट रोग का रोगी है । इसे गोस्वामी जीने कहा है । मानस रोगके अन्तर्गत इसे नेहरुआ नामक शारीरिक रोग से तुलना की गयी है ।

तृष्णा :-

मानस रोगों का वर्णन करते समय गोस्वामी जी ने रामचरित-मानस के उत्तरकाण्ड में तृष्णा रोग का भी वर्णन किया है । उदर रोग की

१- रामचरितमानस : लंकाकाण्ड : दो० सं० ५७, चौ० सं०५ ।

तुलना रामचरितमानस में तृष्णा रोग से की गयी है । यह तृष्णा अन्यायार्जित द्रव्य ग्रहण करने के कारण उदरवृद्धि के कारण बढ़ती जाती है । "तृष्णा उदर वृद्धि अतिभारी ।"[1] इसका लक्षण है हर समय अतृप्त रहना सब कुछ प्राप्त हो जाने के पश्चात् भी तृष्णा का युवा अवस्था होना ही तृष्णा है । यह भी मोह परिवार से ही सम्बन्धित है । एक आख्यायिका श्री रामचरितमानस में इस संबंध में प्राप्त होती है । ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जब यज्ञादिकर्म को वन प्रान्त में करते उस काल में इनके यज्ञ विध्वंस के लिए मोह रूपी रावण के आदेश द्वारा तीन निशाचर बाधक हो जाते और अपने यज्ञ को अपूर्ण देखकर बहुत दुःख होता था । क्योंकि उस समय असुर भावाक्रान्त देवता, ऋषि, मुनि क्लान्त थे । इन्हें त्राण इन निशाचरों द्वारा नहीं मिलता था । अपने त्राण के लिये जब अवधेश नरेश दशरथ से इन्होंने यज्ञ रक्षार्थ राम लक्ष्मण को मांगा तो उस समय यही कहा था कि "असुर समूह सतावहिं मोहिं । मैं जाचन आयउं नृप तोही ।"[2]

यदि श्री राम को उनके अनुज के साथ मुझे आप अब अर्पित कर देंगे तो मैं अनाथ सनाथ हो जाऊंगा क्योंकि निशिचरों का वध होगा और मेरा क्लेश दूर होगा । "निशिचर वध मैं होब सनाथा ।"[3] उन निशिचरों के नाम प्रधान रूप से तीन थे ताड़का, मारीच और सुबाहु ।"

जहं जप जोग जग्य मुनि करहीं ।
अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ।।[4]

मारीच मायावी था । इसमें माया का बल अधिक था । जिसमें कपट तथा छल की बाहुल्यता थी और सुबाहु अस्थि तथा अग्नि वर्षण करने में चतुर

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२०, चौ० सं० ३६ ।
२- उपरिवत् : बालकाण्ड : दो०सं० २०६, चौ० सं० ८ ।
३- उपरिवत् :बालकाण्ड : दो० सं० २०६, चौ० सं० १०।
४- उपरिवत् : दो० सं० २०५, चौ० सं० ३ ।

था और ताड़का प्रजा का चर्वण बन प्रान्त के जीवों को क्लेश देना एवं बनप्रान्त को अपने घोर नाद से प्रकम्पित करना यह तृष्णा की रूप थी। जिस समय विश्वामित्र श्री राम और लक्ष्मण को लेकर बनप्रांत में प्रवेश किये इनके प्रवेश करते ही ताड़का बन में जो तृष्णा रूप थी इनका चर्वण करने के लिये भयंकर घोर रौद्रनाथ करते हुए राम, लक्ष्मण एवं विश्वामित्र कोतरफ दौड़ पड़ी। उसका बड़ा विशाल उदर था। यह मानस के अन्तर्गत तृष्णा है। इसका उदर कभी तृप्त नहीं होता यह सदैव अतृप्त रहती है क्योंकि जीवों के खा जाने का काम बन प्रान्त में रावण के आदेशानुसार यहकरती है। इसने अपने मुंह को फैलाया और दौड़ी। " सुनि ताड़का क्रोधकरि धाई।"[१] राम और लक्ष्मण ने जब ताड़का को आते हुए देखा तो उन्होंने उस तृष्णा रूपी ताड़का का एक हीबाण में वध कर दिया। यहां एक बड़ी रहस्यमय बात यह है कि उसकी मृत्यु के पश्चात श्री राम में उत्पन्न हुयी, वह थी सर्वप्रथम राम के बाण से स्त्री का वध।

राम को देखकर विश्वामित्र ने कहा है राम आप स्त्री वध करने में क्यों ग्लानि प्रकट कर रहे हैं। राम का उत्तर था। हे गुरुदेव। मैंने सर्वप्रथम अपने हाथ से इस बन प्रदेश में एक स्त्री का वद कर दिया। यह कार्य ठीक नहीं हुआ। इसके समाधान में विश्वामित्र ने कहा श्री राम नहिस्त्रीवधकृते घृणाकार्यानरोत्तमा, चातुर्वर्ण्यहितार्थंहि कर्तव्यं राज्यसूनुना।" राम आपको स्त्रीवध करते में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि यह घृणा कार्य नहीं है। चारों वर्णों के हित के लिये एक आततायी दुष्टा का वध करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। श्री रामने सर्वप्रथम अपने बाणों द्वारा ताड़का का वध कर मानो यह उपदेश दिया कि जो सत्मार्ग पर चलना चाहे वह सद्बुद्धि तथा सत्प्रयोग द्वारा अपनी तृष्णा का वध करे।

१- रामचरितमानस बालकाण्ड : दो० सं० २०८, चौ० सं० ५।

यह ताड़का तृष्णा है। जिस तृष्णा के वश जीव सदैव अतृप्त रहता है। इसी को गोस्वामी जी ने कहा -" तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी।

ईर्षणा :-

तृष्णा रोग के बाद आधी अर्द्धाली में ईषणा का भी वर्णन गोस्वामी जी करते हैं तृष्णा उदर वृद्धि करती है, और ईषना तीन प्रकार की है जो तरुण है और जिसके शरीर में आती है जिस रूप में आती है वैसे उसे जलाती है। गोस्वामी जी कहते हैं यह तीन प्रकार की है। यह मानवों में भी है। पशुओं के अन्तर्गत है देवता एवं मुनियों में भी इसे देखा गया है। कुछ लोगों ने इसे पुत्र, लोक एवं वित्त के रूप में ग्रहण किया है। यह आध्यात्म में भी है, आधिदैविक भी है एवं आधिभौतिक भी। यह प्राय: लोगों में पायी जाती है। जिस समय सेवरी मतंग ऋषि के आश्रम में रही से भी जब उसे त्राण नहीं मिला ऋषि मतंग की कृपा से रहने लगी उस काल में अन्य ऋषियों ने नीच जाति अध जन्म महि समझ कर इसका महान् तिरस्कार किया। यह जल के लिये पम्पासर जाया करती थी। स्नान आदि क्रिया वहीं सम्पन्न करती थी। अन्य ऋषियों को जब इसका पता चला उनको इसके लिये ईषना जागृत हुयी। इन लोगों ने सेवरी का तिरस्कार किया जैसी चर्चा भक्तमाल आदि ग्रंथों में प्राप्त होती है। श्री राम जब वन में गये और सेवरी के आश्रम में प्रवेश किया तो रामसे मुनियोंने यही कहा" हे राम हम लोग पम्परासर के जल से अपना नित्यकार्य करते आ रहे पर उस पम्पासरोवर का जल जो उज्ज्वल और विशुद्ध था वह बहुत विकृत हो गया। उसमें कीड़े पड़ गये हैं। हम सबों को महान कष्ट है। आज तक हम सब बहुत कष्ट पा रहे हैं। आप कृपाकर हम लोगों का कष्ट निवारण करें। राम ने वन प्रान्त में रहनेवाले मुनियों की बात सुनी और कहा हे मुनियों आप लोगों ने महान भक्त सेवरी का तिरस्कार किया है। इससे ईषना की है। इसलिये ऐसी ज्वर से आप लोग पीड़ित हैं। अतएव सेवरी को आप लोग कहें कि वह अपना पदांगुष्ठ पम्पासरोवर के जल

से स्पर्श कर दें तो पूर्ववत् जैसे वह उज्ज्वल एवं विशुद्ध था वैसा हो जायेगा । यह ईर्षना का कार्य है जिसके आ जाने से तुम लोग जल रहे हो । अतः इसका परित्याग करो और ईर्षना विहीनहोकर शैवरी से यह प्रार्थना करो कि वह पम्पाशर के जल को उज्ज्वल करे । निर्बल प्राणी को अपने से सबल शक्तिमान को देखकर लोकैषणा होती है। जैसा कि सुग्रीव के जीवन में आया था । बालि बलवान् था और सुग्रीव बालि से निर्बल । इसलिये राज्य परिवार की धन की ईर्षना के साथ साथ बालि से भीयह ईर्षना करता था और उसके त्रास से त्रसित था । यह व्रण के रूप में सुग्रीव को हो गयी थी जैसा कि किष्किन्धाकाण्ड में वर्णन आया है :-

बालि त्रास व्याकुल दिन राती ।
तन बहु व्रण चिन्ता जरि छाती ।।[१]

यह भी जल रहा था इसकाभी ज्वर जब कभी बालि के बारे में कोई चर्चा करता तो तिजारी की तरह जो मानस रोग में त्रिविध ईर्षना के रूप में कहा गया है हो जाता है ।

देवताओं को भी इस रोग ने नहीं छोड़ा । इन्हें भी स्वाभाविक रूप से किसी को सौन्दर्यता को देखकर ईर्षना का हो आना स्वाभाविक है जैसे लोकैषणा वित्तैषणा और पुत्रैषणा । किसी के पुत्र को देखकर के अपने पुत्र न होने के कारण ईर्षना होती है । जैसे दूसरे का सम्मान होते देखकर स्वयं में अपना सम्मान न होने के कारण ईर्षना का प्रादुर्भाव होता है । एक धनाढ्य व्यक्ति को देखकर व्यक्ति जिस प्रकार ईर्षना रोग से ग्रसित होता है । उसी प्रकार देवता भी ईर्षना रोग में कभी- कभी ग्रस्त दिखायी देते हैं । वन प्रान्त में रहने वाले महान् ऋषि गौतम की पत्नी अहल्या को देख देवताओं के स्वामी देवराज इन्द्र अपने लोक में उस अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न सौन्दर्यता से वंचित रहे ।

१- रामचरितमानस : किष्किन्धाकाण्ड : दो० सं० ११, चौ० सं०२ ।

उनमें ईषना जागृत हुयी एवं उस ईषना ज्वर से पीड़ित इन्द्र कपटवेश अहिल्या के पातिव्रतधर्मको नष्ट किया। यह इन्द्र की ईषना थी क्योंकि काम के लिये देवलोक में देवांगनाएं पर्याप्त थीं। पर उसको ईषना इस कुमार्ग को अपनाया। इतना ही जिस समय गोपांगनाएं सभी गोवर्धन पर्वत पर देवराज इन्द्र को यज्ञ को न कर श्रीकृष्ण के यज्ञ को करना शुरु किया और उनको आहुत हव्य दिया उस समय वह ईषना वश अपना जल वर्षण किया। समस्त ब्रज को इन्द्र अपने अपार जलद्वारा डुबाना चाहा यह देवेषणा है। इसी प्रकार अन्वेषण करने पर ऋषि, मुनि, देवता, मानव गन्धर्व आदि इस त्रिविध ईषना तरुणातिजारी[१] रोग में आबद्ध दिखायी देते हैं।

मत्सर :-

मानस रोग के अनेक विकारों का वर्णन करते हुए गोस्वामी दो और विकारों का उल्लेख करते हैं। वे थे मत्सर और अविवेक। यह मत्सर रूपी रोग जीव के क्रोधित होने पर शरीर में आता है। यह मत्सर अविवेक के समीप है जिस विषय का हमें ज्ञान नहीं फिर भी हम उसकी चर्चा अप्रामाण्य ढंग से तर्काधार से करें और उसकाखंडन जैसे विवेकी व्यक्ति द्वारा होने के पश्चात् तर्कयुक्त उत्तर देनेवाले व्यक्ति की जो अप्रतिष्ठा होती है और उस अप्रतिष्ठा में जो उसका मन, शरीर, चिन्तन करता है वही मत्सर ज्वर है। बिना किसी आधार के केवल जो तर्क का आश्रय लेते हैं। वह क्रोधित होते हैं। तर्कः अप्रतिष्ठानात् तर्क केवल अप्रतिष्ठा देता है और अप्रतिष्ठा प्राप्त हो जाने के पश्चात् व्यक्तिअपने सम्मान का तर्क लेकर अप्रतिष्ठा को उसके प्रतिकूल समझकर ज्वर रोग से पीड़ित होता है। यह एक ज्वर मत्सर इसी प्रकार से उत्पन्न होता है।

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२०, चौ० सं० ३६।

वह ऐसा कार्य अपनी क्रूरतावश करता है । इसी गोस्वामी जी ने महिषमत्सर क्रूर[१] । कहा है तथापि मत्सर वाला व्यक्ति क्रूर होता है । उसके प्रति कितना भी कोई क्षमा दया का भाव प्रकट करे पर वह इससे वंचित रहता है यहमत्सर रोग किसी दूसरे को कार्यमें रत देखकर न तो स्वयंआगे बढ़ताहै और न तो दूसरों को आगे बढ़ने देता है । इसमें प्रजापति दक्षका रामचरितमानस के अन्तर्गत चरित्र देखने योग्य है । जब ब्रह्मा द्वारा दक्ष प्रजापति नायक बनाया गया उस समय उनमें बड़ा अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् हृदयमें अभिमान आ गया । प्रभुता प्राप्त करने के बाद मद का आना स्वाभाविक है। दक्षप्रजापति ने मुनियों को बुलाकर एक बड़े यज्ञ का संकल्प किया । और उस यज्ञ में जो भी देवता यज्ञ भाग के अधिकारी थे उनको निमंत्रित किया । प्रजापति दक्षके आह्वान से किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, अपने बहुओं के साथ समस्त देवता विष्णु, ब्रह्मा यक्षके यज्ञ में चले । आकाश मार्ग में अनेक विविध प्रकार के विमान जाते हुए सती ने देखा जिसमें देव सुन्दरियां, गान करती चली जा रही थीं । उनके गानको सुनकर मुनियों तक का ध्यान भंग हो जाता था ऐसा गान वे कर रही थी ।

भगवान् शिव से पूछने पर यह पता लगा कि दक्ष प्रजापति अधिकार को प्राप्त किया है और उसी के यज्ञ में यह सब जा रहे हैं । यह जानकर सती शिव से अपनी इच्छा प्रकट की कि यदि आपका आदेश हो तो पिता के घर परमश्रेष्ठ उत्सव में मैं जाऊं । क्षमायतन यदि आपका आदेश मुझे प्राप्तहोगा तभी मैं यह कर सकती हूं । शिव ने सती की बात सुन यह समर्थन करते हुये कि तुम्हारी यह बात हमारे भी मनको भी अच्छी लगी पर्एक अनुचित कार्य यह समझ में आ रहाहै कि तुम्हारे पिता ने मुझे निमंत्रण नहीं दिया है । दक्ष ने सभी अपनी कन्याओंको बुलाया है पर हमारे कारण तुमको वह भूल गये । यह मत्सर बड़ा भयंकर है ।

१- विनयपत्रिका : पद सं० ६१ ।

ब्रह्म सभा हम सन दुख माना । तेहि ते अजहुं करत अपमाना ।[१] शिव जी ने यह कहा कि मत्सर के कारण प्रजापति दक्ष ने यह माना अर्थात् बात सत्य नहीं थी । पर अपने हृदय दोषवश उन्होंने यह मान लिया कि मेरा अपमान इन्होंने किया है और इसी कारण वह आज भी अपमान करते हैं । यह क्रूर महिष मत्सर है । जिसे मानसरोगों में ज्वर कहा गया है ।यह मत्सर ज्वर निर्दयी लोगोंके हृदय में मत्सर वालोंके पास आता है । शिवने कहा यदि बिना बुलाये तुम जाओगी तो शील स्नेह समाप्त हो जायगा ।

यद्यपि पिता गुरु, मित्र, स्वामी, के घर बिना बुलाए भी जाना चाहिये पर यहां भी यदि कोई विरोध मानता है तो इन स्थानों पर जाने के पश्चात् भी कल्याण नहीं होता । अनेक प्रकार से शंभु ने समझाया पर भावी प्रारब्ध सती को ज्ञान नहीं हुआ । शिव ने कहा यदि बिना बुलाए आप चली गयीं तो भली बात मेरे लिये मेरे विचार से नहीं होगी बहुत प्रकार से शिव ने रोकने की चेष्टाकी पर दक्ष कुमारी को देखा कि यह नहीं रुकेंगी तो अपने मुख्य गणोंको दिया और अपने यहां से विदा किया । पिताके भवन जाकर भवानी ने जो देखा वह मत्सर काही बल था । दक्ष के भय से किसी ने भवानी का सम्मान नहीं किया । आदर के साथ भली प्रकार से एक माता ही मिली और जितनी बहनें थीं सब बहुत मुसकराती हुयी मिली । दक्ष ने कुछ भी कुशल क्षेम सम्बन्धी प्रश्नोत्तर नहीं किया । बल्कि सती को देख कर उसका शरीर जल गया । मत्सर ज्वर है और ज्वर में शरीर जलता है । यह बिना किसी अपराध के अपने मत्सर के कारण केवल अपना अपमान अपने मन द्वारा ही मानकर मत्सर ज्वर का रोगी हुआ। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ।[२]

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दो० सं० ६१, चौ० सं० ३ ।

२- उपरिवत् : दो० सं० ६२, चौ० सं० ३ ।

सती ने जाकर पुन: यज्ञ को देखा पर वहाँ शंकर का भाग न देखने के कारण शिव के कहे हुए वाक्य का स्मरण हुआ। शिव के अपमान को समझकर हृदय दहकने लगा। जितने भी दु:ख थे हृदय में इस प्रकार व्याप्त नहीं हुए थे जैसा कि शिवका अपमान और तुलसी ने इस संदर्भ में कहा भी है कि यद्यपि संसार में बहुत दु:ख हैं पर सबसे कठिन जाति अपमान है। यह समझकर सती को महान कष्ट हुआ और हृदय में क्रोध आ गया। यद्यपि सती को माँ ने बहुत प्रकार से प्रबोध किया फिर भी शिव के अपमान के कारण हृदय में प्रबोध न हो सका। समस्त सभासदों को अपने वाणी द्वारा फटकारते हुए सती ने क्रोधयुक्त वाक्य में कहा समस्त सभासद एवं मुनि मेरी बात सुनें जिन्होंने भी शिव की निन्दा कही सुनी है वे सब तत्काल उसके भागी होंगे। भली प्रकार से पिता जी भी पश्चाताप करेंगे।
जगदात्मा महेस पुरारी। जगत जनक सबके हितकारी।[१]

पिता मन्दमति निन्दत तेही। भगवान शिव से मत्सर रखने वाला दक्ष मन्दमति था और मत्सर ज्वर से पीड़ित था। अन्ततोगत्वा सती ने योगाग्नि से अपना शरीर भस्म कर दिया। परिणाम बहुत ही अनुपयुक्त हुआ। रक्षा करने के बाद भी यज्ञ की रक्षा न हो सकी और समस्त देवता यज्ञफल से वंचित रहे। उन्हें दक्ष के साथ रहने का उचित फल प्राप्त हुआ। यह मत्सर व्यक्ति के अन्दर एक दूसरे के प्रति क्रूरता का भाव रखता है। इसलिये इसे महिष कहा गया है।

अविवेक :-

अविवेक रोग बड़े बड़े महान भक्तों में भी होते हुए देखा गया है। इतना ही नहीं भागवत पार्षद भी जो भगवान के अत्यन्त समीप रहनेवाले हैं वह भी इस रोग से पीड़ित हुये हैं। श्री राम जब अपने रणक्रीड़ा स्थल में इन्द्रजीत के द्वारा नाग पाश द्वारा स्वेच्छा से बंध गए थे उस काल में

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दो० सं० ६३, चौ० सं० ५।

नागपाश से मुक्त करने के लिये नारद द्वारा गरुड़ भेजे गये और गरुड़ ने उस बन्धन से राम को मुक्त किया। पर जिस समय गरुड़ राम को मुक्तकर चले गए उसी में उन्हें प्रचण्ड विषाद छा गया और उसका कारण यह था कि जिसे मैंने बन्धन से मुक्त किया वह सारे जीवोंको भवसागर से मुक्त करनेवाला है। और, उसे मेरी आवश्यकता अपने बन्धन से मुक्त होने की पड़ी जो व्यापक है ब्रह्म है, वाणी के परे हैं जो माया के उसपार है उसके बन्धन को मेरे द्वारा काटा गया। भव बन्धन ते छुटहिं नर जपि जाकर नाम। खर्ब निसाचर बाँधेउ नाग पास सोइ राम।[१]

यद्यपि गुरुड़ जी ने नाना भाँति मन को समझाया पर बोध नहीं हुआ। यह अज्ञान निश्चय सत्य वस्तु में तर्क एवं मन में खेद खिन्नता के कारण आता है। जहाँ मन में सत्य वस्तु के प्रति तर्क उत्पन्न होता है। वहाँ अज्ञानका आ जाना स्वाभाविक है। ज्ञानी अज्ञान के कारण ही मोहित होता है। ठीक गरुड़ मेंअज्ञान इसी कारण आया कि खेद खिन्नमन तर्क बढ़ाई। भयउ मोह बश तुम्हरी नाई।[२]

अपने इस अज्ञानको दूर करने के लिये गुरुड़ देवर्षिके पास गए, उन्होंने अपने संसय को नारद से कहा यह मानस रोग का अज्ञान ज्वर बहुत भ्रमित करता है। देवर्षि को गरुड़ की बात सुनकर बहुत दया आयी और उन्होंने राम कीमाया को प्राबल्यता कीतरफ भी संकेत किया। और कहा कि जो ज्ञानियों के चित्त का बलात अपहरणकरनेवाली एवंमन में विमोह पैदा करनेवाली जिसने मुझको बहुतबार नचाया है वही अज्ञान माया विहगे पति तुम्हें व्याप्त हो गयी। तुममे महा मोह उत्पन्न हो गया और यह महामोहअज्ञान तत्काल मेरे कहने से समाप्त नहीं हो सकता। इसलिये चतुरानन के पास जाने का कष्ट करो, वहीकाम करना जिससे तुम्हारा अज्ञान सन्देह नष्ट हो जाय। मानसरोग अविवेक द्वारा पीड़ित देवर्षि नारदके कथनानुसार

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० ५८।
२- उपरिवत् : दो० सं० ५८, चौ० सं० २।

गरुड़ विरंचि के पास पहुंचे, अपने अविवेककी चर्चा की । इनकी बात को सुनकर विधि ने मन में विचार किया और गरुड़ से कहा जिस अज्ञान मायाके कारण मैं बहुत बार नाच चुका हूं । गरुड़ वह अज्ञान मोह तुममें भी आ गया । इस अज्ञान ने बड़े बड़े लोगों को नचाया इसमें कौनसे आश्चर्य की बात है । मैं तुम्हें बताता हूं । तुम वहां जावो गरुड़ जो की अज्ञान स्वर इस प्रकार व्याप्त हो गया था कि वह नारद और ब्रह्मा के पास गये पर इन्होंने इन लोगों को प्रणाम तक नहीं किया, ब्रह्मा ने संकेत किया कि आप का अज्ञान हम लोगों से दूर नहीं होगा इसलिये शिव के पास जावो । वह परमज्ञानी हैं उनके द्वारा तुम्हारा भ्रम, सन्देह, अज्ञान नष्ट हो जायेगा। गुरुड़ जी विधाताकी इस वाणी को सुनते ही परमातुर विहगपति भगवान् शिव के पास आए । उस समय शिव कुबेर के पास जा रहे थे माता पार्वती कैलाश पर थीं । शिव ने कहा हे उमा । अत्यन्त अज्ञान से व्याकुल हुआ गरुड़ आकर मेरे चरण में मस्तक झुकाया । इसने किसी को भी प्रणाम नहीं किया था पर शिव के पास आते ही शिवपद में नत हो गया । पुन: उसने अपने सन्देह को सुनाया । उसके विनयावनत वाणी को सुनकर प्रेम के साथ शिव ने कहा गरुड़ मुझे तुम मार्गमें मिले, मैं तुझे किस प्रकार से समझाउं । यह संशय तो तभी नष्ट हो सकता है जब बहुत काल सत्संग प्राप्त होता है ।

जहां भगवान् की सुन्दर कथा प्राप्त हो जिसे नाना प्रकार के मुनियों ने गाया है, जिस कथा में आदि मध्य और अन्त प्रभु राम भगवान् प्रतिपाद्य हैं जिस कथा को सुनने से सन्देह दूर हो जाता है । मैं वहां तुझे भेज रहा हूं उत्तर दिशा में नीलाचल पर्वत पर सुशील स्वभाव के कागभुशुण्ड जी रहते हैं । रामभक्ति पथ में वह प्रवीण हैं " ज्ञानी गुन गृह बहु कालीना " कह वह श्री राम कथा निरंतर करते हैं आदर के साथ विविध प्रकार के श्रेष्ठ लोग उनकी कथा सुनते हैं जाकर तुम भगवान् के श्रेष्ठ गुणों की सुनो जिसके सुनने से तुम्हारा अज्ञान रूपी मोह दूर हो जायेगा । जब उसे शिव ने समझाकर भेजा तो पुन: हर्षित होकर गरुड़ भगवान् शिव के चरणों में मस्तक झुका

चल पड़े । मैंने उमा उसे इस लिए नहीं समझाया कि भगवान् की कृपा का मर्म मुझे ज्ञात हो गया - 'होइहिं कीन्ह कबहुं अभिमाना । सो खोवै चह कृपा निधाना ।' प्रभु माया बलवंत भवानी । जेहि न मोह कवन अस ज्ञानी ।[1]

ज्ञानी भगति सिरोमनि, त्रिभुवन पति कर जान ।
ताहि मोह माया नर, पावर करहिं गुमान ।।'[2]

यह अनेकानेक मानस रोग जिनका वर्णन पूर्व में किया गया है समस्त व्याधियों का मूल मोह जिनसे उत्पन्न काम, क्रोध, लोभ, ममता, ग्लानि, दुष्टता, अहंकार, दंभ, कपट, तृष्णा, ईर्षणा, अविवेक, मत्सर आदि रोगों का वर्णन किया गया है और भी अनेकान्य रोग जो गिने नहीं जा सकते क्लेश बहुल हैं । इन रोगों को गोस्वामी जी ने समय-संसर्ग, संशय आदि के द्वारा उत्पन्न होते बताया है । यद्यपि श्री रामचरितमानस के अन्तर्गत आनेवाले पात्र जो जिस रोग से पीड़ित रहा है उन लोगों की चर्चा उपर्युक्त दृष्टि से हुई ।

इस प्रकार से गोस्वामी जी द्वारा वर्णित मानस रोगों की व्याख्या की गयी है । यहां पर द्रष्टव्य है कि इन विभिन्न मानस रोगों से ग्रस्त प्रतिनिधि पात्रों का मानस में सृजन किया गया है । अत: रामचरितमानस श्री राम की कथा उपस्थित करनेवाला केवल एक महाकाव्य नहीं है, वरन् इसमें मनोविज्ञान एवं मानस रोग विज्ञान में विभिन्न मनोविकारों के प्रति-निधि पात्रों को उपस्थित करके एक अनूठे ढंग से मानव चरित्र का चित्रण किया गया है । गोस्वामी जी कितने बड़े मनोविज्ञानवेत्ता और कितने निपुण मानसोपचार शास्त्री थे । उपर्युक्त मानस रोगों का अध्ययन करके इसका अनुमान लगाया जा सकता है ।

रामचरितमानस चिकित्सा शास्त्र का ग्रंथ नहीं है, किन्तु उसमें मनोविज्ञान एवं मनोविकारों की इतनी सूक्ष्म व्याख्या इन पात्रों के

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० ६१, चौ० सं० ८,१० ।
२- उपरिवत् : दो० सं० ६२ ।

द्वारा उपस्थित को गयी है कि देखकर आश्चर्य होता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, आदि विभिन्न संवेगों का मानस रोगों के रूप में वर्णन आयुर्वेद सम्मत है । इन संवेगों की विकृत अवस्था मानव की विभिन्न मानसिक प्रतिक्रियाओं का चित्रण गोस्वामी जी ने बड़ी कुशलतापूर्वक किया है, इससे ज्ञात होता है कि इस संबंध में उनका चिन्तन और अनुभव अत्यन्त गम्भीर था ।

---000---

चतुर्थ अध्याय

रामचरितमानस से इतर तुलसी-साहित्य में मानस रोग :—

रामचरितमानस के अतिरिक्त गोस्वामी जी द्वारा विरचित और भी अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं। जिनमें प्रमुख रूप से कवितावली, दोहावली एवं विनयपत्रिका विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। इसके अतिरिक्त गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, वैराग्यसंदीपनी, बरवै रामायण, हनुमान बाहुक, हनुमान चालीसा, रामाज्ञाप्रश्न आदि भी उनके द्वारा लिखित माने गये हैं। दोहावली में अनेक दोहे रामचरितमानस से लिये गये हैं।

विनयपत्रिका, दोहावली एवं कवितावली आदि में भक्ति सम्बन्धी अनेक पद प्रस्तुत किये गये हैं। मन के अनेक विकारों एवं माया आदि का जो वर्णन मानस में आया है उनका प्रतिपादन इन पदों द्वारा होता है। मोह, अहंकार, लोभ, मत्सर, मान, मद आदि की विस्तृत व्याख्या और उनके द्वारा व्यक्ति को प्राप्त होनेवाले मानसिक कष्टों का वर्णन किया गया है। माया से बंधकर जीव अनेक कष्टों को   है और परमात्मा का अंश है। इस सत्य को भूल जाता है। गोस्वामी जी ने इसके लिये

भक्ति का आश्रय ग्रहण करने का निर्देश किया है, क्योंकि ईश्वर को वहोप्रिय है। माया भक्ति से भयभीत रहती है। विनयपत्रिका के अनेक पदों में गोस्वामी जी ने भगवान से प्रार्थना की है। इनमें उन्होंने माया द्वारा प्रेरित काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिन्ता आदि मानसिक विकारों का वर्णन करते हुए उनसे छूटने के उपाय भी सुझाये हैं।

उन्होंने प्राणियों की मूल प्रवृत्तियों एवं मन के विकारों की विस्तृत व्याख्या की है। त्रिविध एषणाओं का वर्णन करते हुए मानसिक विकारों की उत्पत्ति में उनके महत्व का प्रतिपादन किया है। मानसिक द्वन्द्वों एवं संवेगों के विकारों के कारण अनेक प्रकार के मानस रोग उत्पन्न होते हैं। इनसे निवृत्ति के लिए ईश्वर प्रणिधान, एवं उनकी भक्ति की प्राप्ति ही एकमेव उपाय है। मानस से इतर इन ग्रंथों में भक्ति के पदों की संरचना करके गोस्वामी जी ने प्राणियों को उस मार्ग पर अग्रसर होने के लिये प्रेरणा दी है। इन पदों में उन मानसिक भावों, संवेगों एवं विकारों की अधिक विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गयी है जिनका कि मानस में संक्षेप एवं सूत्ररूप में वर्णन किया गया है।

इन पदों में गोस्वामी जी ने मानव मन की विभिन्न भावनाओं एवं विकारों की व्याख्या करते हुये अपने को साधक के रूप में प्रस्तुत किया है और भगवान राम से उनकी निवृत्ति के लिये प्रार्थना की है। इन पदों से उनके कुशल मानसिक रोग चिकित्सक होने का आभास मिलता है। उनका अनुभव, उनकी साधना एवं चिन्तनशक्ति महान थी।

दोहावली में यद्यपि मानस के ही अनेक दोहों की आवृत्ति हुई किन्तु मानसिक विकारों की व्याख्या की दृष्टि से वे बहुत महत्वपूर्ण हैं।

दोहावली, कवितावली, विनयपत्रिका आदि ग्रंथों में लोभ, काम, क्रोध, माया, मोह आदि मानसिक रोगों की विविध विवेचना

को गयी है। माया के कारण मनुष्य बन्धन ग्रस्त हो जाता है। अत: उससे अपनी रक्षाहेतु प्रयत्नशील होना चाहिये। महर्षिजनों का तो संकेत है कि माया से मुक्त न होने पर जीव इधर-उधर भटकता रहता है परमतत्व तक पहुँचने के लिये माया का परित्याग आवश्यक है। माया और उसके सहायक तत्वों का उल्लेख करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं :-

> ब्यापि रहेउ संसारमहं, माया कटक प्रचंड।
> सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखण्ड ॥[१]

माया की प्रचंड सेना संसार भर में फैल रही है। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सर, वीर इस सेना के सेनापति हैं और दम्भ, कपट पाखण्ड उसके योद्धा हैं। जिस प्रकार सामर्थवान व्यक्ति को परिस्थिति विशेष में अपने सहयोगियों की शरण लेनी पड़ती है। इसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, रूपी सेनापति और दम्भ, कपट, पाखण्ड रूपी योद्धा माया की सेना को अधिक सशक्त बनाने में सक्रिय सहयोग देते हैं।

काम, क्रोध, लोभ का प्राबल्य सम्पूर्ण भौतिक जगत पर समान रूप से व्याप्त है :-

> तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
> मुनि विग्यान धाम मन, करहिं निमिष मन छोभ ॥[२]

इसी प्रकार विनय पत्रिका में विभिन्न मानसिक रोगों से सम्बन्धित विकार दृष्टिगत होते हैं :-

१- दोहावली : दो० सं० २६३ : गीताप्रेस, गोरखपुर।
२- उपरिवत् : दो० सं० २६४।

मोह दसमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित, काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ट विबुधांतकारी ।
द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन कपट, दर्प मनुजाद, मद शूलपानी ।।
अमितबल परम दुर्जय, निशाचर निकर सहित षड्वर्ग गो जातु धानो ।।
जीव भवदंघ्रि सेवक विभीषन, बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता ।
नियम यम सकल सुरलोक लोकेस लंकेस बस नाथ । अत्यंत भीता ।।
ग्यान अवधेश गृह गेहिनी भक्ति शुभ, तत्र अवतार भूभार हरता ।।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितु वाक्य कृत गमन किया गहन वैदेहि भरता ।।
कैवल्य साधन अखिल भालुमर्कट विकग्यान सुग्रीव कृत जलधि सेतु ।
प्रबल वैराग्य दारुन प्रभंजन तनय, विषय बन भवनमिव धूमकेतु ।
दुष्ट दनुजेस निर्बंस कृत दासहित, विश्व दुख हरन बोधैकरासी ।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी हृदय कमल वासी ।।[१]

हे विष्णु आप अविद्यारूपी चन्द्रमा को ग्रसने के लिये साक्षात राहु तथा अहंकार और काम रूपी मतवाले हाथियों के मर्दन के लिये सिंह हैं। शरीर रूपी ब्रह्माण्ड में जो प्रकृति है वही लंका का किला है। इसे मय रूपी मायावीदानव दैत्य ने निर्माण किया है। इसमें जो अनेक कोष हैं वे ही शरीर के पांच कोष हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय, सुन्दर महल हैं और सतोगुण आदि तीन गुण वहां के प्रबल सेनापति हैं। देहाभिमान ही महाभयंकर अथाह अपार और दुस्तर समुद्र है। जहां रागद्वेष रूपी घड़ियाल भरे हैं और सारी मनोकामनाएं तथा विषयासक्ति के संकल्प- विकल्प ही लहरें हैं। ऐसे भीषण समुद्र के तट पर बसी हुई लंका में मोहरूपी रावण, अहंकार रूपी कुम्भ कर्ण और शांति भंग करने वाले कामरूपी मेघनाद के साथ अटल राज्य करता है। वहां पर लोभ रूपी अतिकाय, मत्सर, रूपी दुष्ट महोदर, क्रोधरूपी महापापी देवान्तक, द्वेषरूपी दुर्मुख, दम्भ रूपी खर कपट रूपी अकम्पन, दर्परूपी मनुजाद और

१- विनय पत्रिका : पद सं० ५८ ।

मद रूपी सूलपाणि नाम के दैत्यों का समूह बड़ा ही पराक्रमी तथा कठिनता से विजितहोने योग्य है। यहो नहीं इन मोह आदि इन राक्षसों के साथ इन्द्रिय रूपी राक्षसिया भी हैं। हे नाथ आपके चरणारविंदों का सेवक जो जीव है वही मानो विभीषण हैं यह बेचारा चिन्ता के मारे इन दुष्टों से पूर्ण वन में दिन काट रहा है। यम नियम रूपी दसो दिग्पाल और इन्द्र इस रावण के अधीन होकर अत्यन्त भयभीत रहते हैं सो हे नाथ महाराज दशरथ के यहां कौशल्या के गर्भ से पृथ्वी का भार हरने के लिए सगुण अवतार लिया था। उसी प्रकार ज्ञान रूपी दशरथ के यहां शुभ कौशल्या के गर्भ से मोह आदिका नाश करने के लिये प्रकट होवें।

काम और क्रोध दोनों मानसिक विकार एक दूसरे के पूरक हैं। इच्छाया वासना की तृप्ति न होने पर सामान्य जन क्रोधाभिभूत हो जाते हैं पर काम पर विजय प्राप्त करके ही क्रोध पर नियंत्रण किया जा सकता है। अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति हेतु मनुष्य अहर्निश प्रयत्नशील रहता है। जब इच्छाओं की तृप्ति नहीं हो पाती या स्वाभिमान पर किसी प्रकार का प्रहार होता है तो व्यक्ति में क्रोध की स्थिति उत्पन्न होती है। रावण की भगिनी की नाक कटवा कर रामने उसे संग्राम के लिये विवश किया। इसलिये गोस्वामी तुलसीदास ने "काम क्रोध मद लोभरत गृहासक्त दुखरूप।"[१] काम, क्रोध, मद, लोभ सब नाथ नरक के पंथ," कहकर राम की भक्ति कीओर उन्मुख होने का संदेश दिया है। रावण साक्षात् अहंकार का स्वरूप है। उसका रोम-रोम दर्प और मद की भावना से आक्रान्त है। दर्प, मद, मान, मोह आदि विकार अहंकार के ही सहकर्मी है।

अपनी शक्ति का सम्यक ज्ञान न होने पर प्रतिपक्षी से अपने को सबल मानने की भावना अहंकार है। अपनी शक्ति का उचित ज्ञान रखकर स्व का बोध स्वाभिमान है। स्वाभिमानी व्यक्तिको संसार में प्रशंसा की दृष्टि से

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० ७३।

देखा जाता है तथा अहंकारी व्यक्ति निन्दित होता है। अहंकार को स्वामी जी ने अगरुआ (गठिया) नामक भयंकर रोगका नाम दिया है। मिथ्याभिमानी व्यक्ति अहंकार के प्राबल्यके कारण समाज में हेय दृष्टि से देखे जाते हैं। सामान्य जन से अपने को श्रेष्ठ मानने का भाव अहंकार का मूल है। कबीर, सूर, तुलसी आदि भक्त कवियों ने अहंकार से रहित होने का उपदेश दिया है। अहंकार से मुक्ति पाने के लिये ईश्वरके चरणों में अपने को समर्पित कर देना आवश्यक है। आत्मसमर्पण की भावना आने पर अहंकार का नाश हो जाता है और ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं।

आसुरी और दैवी दो प्रकार की प्रवृत्तियों से समाज प्रभावित होता है। आसुरी प्रवृत्ति के लोग अज्ञानी, दम्भी, पाखंडी और ईर्ष्यालु होते हैं। दैवी प्रवृत्ति के लोगों में संवेदनशीलता और उदारता का अंश विद्यमान रहता है। उद्धत स्वभाव के कारण अहंकार उत्पन्न होता है।

"सर्वं क्षणिकं" के सिद्धान्त के अनुसार यह संसार क्षणिक है। इसीलिये ज्ञानी जन इस संसार को क्षणिक मानकर ही निर्लिप्त भाव से कर्म करते हैं। इसी को गीता में निष्काम कर्मयोग कहा गया है। ध्यान योग, कर्मयोग, भक्तियोग, आदि सभी शास्त्रानुमोदित हैं :-

> नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।[१]
> शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ।।

विनय पत्रिका में गोस्वामी जी ने यह अनुरोध किया है कि हे रमापते। मुझे सत्संग दीजिये क्योंकि वह आपकी प्राप्ति का एक प्रधान साधन है। संसार के आवागमन का नाश करने वाला है। शरण में आए जीवों का भिनाशक है। हे मुरारी जो लोग सदा आपके चरणपल्लव के

१- श्रीमद्भगवद्गीता : ३।८। गीता प्रेस, गोरखपुर।

आश्रित और आपकी भक्ति में लगे रहते हैं। उनका अविद्याजनित सन्देह नष्ट हो जाता है। दैत्य, देवता, नाग, मनुष्य, पक्षी, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध तथा और भी जितने जीव हैं वे सभी सन्तों के संसर्ग से अर्थ, धर्म, काम से परे आप के उस नित्य परमपद को प्राप्त कर लेते हैं जो अन्य साधनों से नहीं मिल सकता। परन्तु केवल आपके प्रसन्न होने से ही मिलता है। संसार जनित भौतिक, दैविक तथा दैहिक तीनों प्रकार की पीड़ा का नाश करने के लिए आपकी भक्ति ही एक मात्र औषधि है और तत्त्वदर्शी भक्त ही वैद्य हैं। वास्तव में सन्त और भगवान में किंचित कोई भी अन्तर नहीं है।

मलिन बुद्धि तुलसीदास तो यही कहते हैं - दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से मुक्ति पाने के लिये राम नाम की औषधि की अपेक्षा होती है। यह संसार प्रपंचात्मक है। माया मोह के कारण ही जीव प्रपंचात्मक जगत् को वास्तविक मान लेता है। ज्ञानी जन प्रपंच का मोह छोड़कर संसार की अनित्यता का सम्यक् बोध करते हुए परमपद को प्राप्त हो जाते हैं। इस मुक्ति को जीवन्मुक्ति नाम से जाना जाता है। संसारिक प्राणी जो मोहरूपी भयंकर रोग से ग्रस्त है उन्हें ईश्वरानुराग रूपी रस विशेष का पान करना चाहिए। विलास क्षणिक रूप से सुखदाई भले हो पर ही उसका परिणाम भयंकर होता है। दुःख तो मानसिक विकार इच्छाओं के बाहुल्य और मनोरथों की अधिकता के कारण उत्पन्न होते हैं। इसीलिये अनावश्यक इच्छाओं का दमन ही योग है। गीता में भी इच्छाओं को सीमित रखने का उपदेश दिया गया है।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥[१]

१- श्रीमद्भगवद्गीता : ६।१।

रामचरितमानस में तो गोस्वामी जी ने स्पष्ट शब्दों में उद्घोष किया है कि "कोट मनोरथ दारु शरीरा, जाहि न लागइ घुन अस वीरा" । मनोरथ रूपी कीड़ा शरीर रूपी लकड़ी को खा जाता है कौन ऐसा ज्ञानी जन है जिसे मनोरथ नहीं सताते इच्छायें नहीं विकल करती, कामनाएं उद्विग्न नहीं करती । लौकिक इच्छाओं में पुत्र की इच्छा, धन की इच्छा, संसार में अधिक दिन तक जीने की इच्छा आदि के कारण अत्यन्त पुण्य से प्राप्त होनेवाली यह मानव योनि वासनाओं के कारण अशान्त हो जाती है । इसीलिए विशाल तृष्णावाले को दरिद्र के नाम से अभिहित किया गया है। जिस प्रकार आयुर्वेद में वात, पित कफ (त्रिदोष) का विवेचन होता है, उसी प्रकार वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों में दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से मुक्त होने का दिशा निर्देश किया जाता है । हनुमान बाहुक का नियमित पाठ शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के रोगों का समूल नाश करने वाला है । ग्रहों के अशुभ लक्षण भी बाहुक के पाठ से दूर हो जाते हैं ।

गोस्वामी जी को बाहु पीड़ा इसी रचना के निर्माण के उपरांत शांत हुयी थी। कलियुग के प्रकोप से अशान्त होकर गोस्वामी जी जैसे पवित्र हृदय सम्पन्न भक्त ने विनय पत्रिका का निर्माण किया था । यह कलियुग के विरोध में प्रस्तुत की गयी याचिका थी जो शक्ति, शील और सौन्दर्य के प्रतीक राम के दरबार में प्रस्तुत की गयी थी । कलियुग का वर्णन गोस्वामी जी ने उत्तरकाण्ड में भी किया है । कहीं-कहीं कलियुग वर्णन में पुण्य और पाप के चित्रण में पुण्य प्राप्त करने के सरलतम उपाय बताए गए हैं । जैसा कि प्रस्तुत चौपाई से स्पष्ट हो जाता है :-

> कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना ।
> एक अधार राम-गुन-गाना ।।[१]

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १०३, चौ० सं० ३ ।

कलियुग के प्रकोप से समोप्राणो त्रस्त हैं किन्तु जो हरिस्मरणारूपी औषधि का अहर्निश सेवन करते हैं वे संसार रूपी असाध्य रोग से सुविधा-पूर्वक मुक्ति पा जाते हैं। पाखंड मिथ्या, व्यवहार आदि विकार कलियुग के प्रधान सहयोगी हैं।

मानस रोगों में काम को वात, क्रोध को पित्त एवं लोभ को कफ नाम से अभिहित किया गया है। विषय मनोरथ शूल के समान है। ममत्व दाद, ईर्ष्या, जलन खुजली है। दूसरे के वैभव और सुखोपभोग के साधनों को देखकर हृदय में कलुषित भावना का उत्पन्न होना ही क्षयरोग है जिसे आयुर्वेद के विशेषज्ञ कुछ इसे राज्यक्षमा नामक असाध्य रोग से सम्बोधित करते हैं। कुटिलता हो कुष्ट रोग है। जो अत्यंत भयंकर और संक्रामक रोग है। अहंकार, दम्भ और कपट भेद भाव क्रमश: गठिया एवं नेहरुआ रोग हैं। तृष्णा जलोदर के समान और लोकैषणा, पुत्रैषणा, वित्तैषणा त्रिविध तिजारी हैं। मत्सर और अज्ञान भयंकर ज्वर हैं।

यह स्वाभाविक है कि रोग संयम से नियंत्रित होते हैं और असंयम से वृद्धि को प्राप्त होकर कष्टकर प्रतीत होते हैं। विषय - वासना रूपी कुपथ्य से ये अनियंत्रित रूप से बढ़ जाते हैं। इनके नाश के लिये सद्गुरु के वचनों में विश्वास का वैद्य तथा विषय की आशा के त्याग का संयम होना चाहिए।

> सद्गुरु वैद्य वचन विस्वासा।
> संयम यह न विषय कर आसा।।[१]

इन सब रोगों के नाश के लिये राम भक्ति संजीवनी मूल के समान है। किन्तु उसके साथ श्रद्धा का अनुपान चाहिए इसका उन्मूलन होने पर मन में ओज, वीर्य, और तेज से सम्पन्न वैराग्य की वृद्धि होगी।

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२१, चौ० सं० ३।

सुमति रूपी सुधा बढ़ेगी और विजय जन्यदुर्बलता दूर हो जायेगी ।
जब वह विमल जल में स्नान करेगा तब रामभक्ति हृदय पर छा जायेगी ।
यह मानस रोग तुलसी के मानस में स्नान करने से उसका जलपान करने से
दूर हो सकते हैं ।

मानसिक शान्ति तभी संभव है जब मनोविकार पूर्णतः
शान्त हो जायं । ये मनोविकार हमारे मन को आलोड़ित विलोड़ित
करके हमें अशान्त और विषयासक्त कर देते हैं । उन मनोविकारों के मूल
में सुखोपभोग की उन्मुक्त इच्छा इनके मूल में है। उद्देश्य ठीक है किन्तु उपाय
गलत है । वास्तव में प्रभु ही आनन्द सिन्धु हैं । हृदय में निवास करते हुए
भी हम उसकी खोज में इतस्ततः भटकते रहते हैं :-

आनन्द सिन्धु मध्य तव बासा । बिनु जाने कत मरत पियासा ।।
मृग भ्रमबारि सत्य जिय जानी । तहं तू मगन भयो सुख मानी ।।
तहं मगन मज्जसि, पान करि त्रय काल जल नाहिं जहां ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि अब आयो तहां ।।
निरमल निरंजन, निरविकार, उदार सुख तैं परिहर्यो ।
निःकाज राज बिहाय नृप इव सपन कारागृह पर्यो ।। [१]

हे जीव ! तेरा निवास तो आनन्द सागर में है । अर्थात् तू आनन्द-
स्वरूप ही है तो भी तू उसे भुलाकर क्यों प्यासा मर रहा है । तू विषय
भोग रूपी, मृगजल को सत्य जानकर उसी में सुख समझ कर मग्न हो रहा
है और उसी को पी रहा है । परन्तु उस विषय भोग रूपी, मृगतृष्णा
के जल में तो (सुख रूपी) सच्चा जल तीन काल में भी नहीं है । अरे
दुष्ट ! तू अपने सहज अनुभव रूप को भूलकर आज वहां आ पड़ा है । तूने

१- विनय पत्रिका : दो० सं० १३६ ।

अपने उस विशुद्ध, अविनाशी और विकाररहित परमसुख स्वरूप को छोड़ दिया है और व्यर्थ ही (इसी प्रकार दुखी हो रहा है) जैसे कोई राजा सपने में राज छोड़कर कैदखाने में पड़ जाता है और जब तक जागता नहीं मोह वश अपने संकल्प से राज्य से वंचित होकर तब तक व्यर्थ ही दु:ख भोगता है। इसी प्रकार जीव भी सच्चिदानन्द स्वरूप को भ्रम वश भूलकर जगत् में अपने को माया से बंधा मान लेता है और दु:खी होता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने वैराग्य संदीपनी जैसे ग्रंथों में भी अहंकार आदि को छोड़ने की बात पर विशेषबल देते हुए कह रहे हैं:-

अहंवाद मैं तैं, नहीं दुष्ट संग नहिं कोइ ।
दुख ते दुख नहिं ऊपजै सुख ते सुख नहिं होइ ।। [१]

अर्थात् जिसमें न तो अहंकार है, न मैं तू (या मेरा तेरा) है जिसके कोई भी दुष्ट संग नहीं है। जिसको दु:ख (दु:ख जब तक घटना) से दु:ख नहीं होता तथा सुख से हर्ष नहीं होता ऐसे लोग संसार में हरिकृपा से सुखी जीवन जीते हैं। इसीतरह कवि संत शिरोमणि एक स्थल पर कहते :-

राम नाम जपु तुलसी होइ बिसोक ।
लोक सकल कल्यान नीक परलोक ।। [२]

अरे मन। शोक (चिन्ता)रहित होकर राम नाम का जप करो। इससे इस लोक में सब प्रकार से कल्याण और परलोक में भी भला होगा।

दोष दुरित दुख दारिद दाहकनाम । [३]
सकल सुमंगल दायक तुलसी राम ।।

१- वैराग्य संदीपनी : दोहा सं० ३० ।
२- बरवै रामायण : दोहा सं० ५१ ।
३- उपरिवत् : दो० सं० ५८ ।

राम नाम समस्त दोषों, पापों, दुःखों और दरिद्रता को जला डालनेवाला तथा सम्पूर्ण श्रेष्ठ मंगल को प्रदान करनेवाला है। इस प्रकार संत कवि स्थल-स्थल पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, इर्ष्या, मत्सर इत्यादि रोगों के समन के लिये भगवान् नाम ही सर्वसुलभ एवं सर्वश्रेष्ठ बताया है।

काम, क्रोध इन विकारों में प्रमुख काम से हमें सुख होता है चाहे वह क्षणिक ही क्यों न हो काम को (सेक्स) के संकुचित अर्थ में नहीं ग्रहण करनाचाहिए। काम्यते इति कामः से यह धारणा स्पष्ट हो जाती है। काम प्रारम्भ में सुखदायक किन्तु पर्यवसान में दुखदायक होता है किन्तु क्रोध प्रारंभ और अन्त दोनों में दुखदायक होता है। दोनों को उपमा अग्नि से दी गयी है :-

दीप शिखा सम युवति तन मन जनि होसु पतंग।[१]

कामसंघाती है। महात्मा बुद्ध ने भी राग को अग्नि कहा है। तुलसी ने इसके प्रबल रूप की ओर बार बार संकेत किया है। कामी, क्रोधी, लालची इनसे भक्ति न होय ... सन्त कबीर ने भी इसीमत का अनुमोदन किया है।

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कैधार। मोह को सब व्याधियों का मूल माना गया है। ममत्व का प्रगाढ़ बन्धन ईश्वर प्राप्ति में बाधक सिद्ध होता है। अभिमान कामूल मोह में है।

मोह मूल बहुशूलप्रद त्यागहु तुम्ह अभिमान।[२]

काम-क्रोध दोनों ही रजोगुण से उत्पन्नहोते हैं। काम एवं क्रोध एषः रजोगुण समुद्भवः।

मानसिक रोगों की तुलसीदास जीने बड़ी सुन्दर उपमा दी है। यह जानते हुए भी कि ये सब क्षणिक है हम इनमें मोहित हो जाते हैं।

१- दोहावली: दोहा सं० २६६। गीता प्रेस, गोरखपुर।
२- [illegible]

काम की प्रबलता के उदाहरण स्वरूप नारद मोह का वर्णन प्रसिद्ध है। इसके विपरीत शंकर द्वारा कामदहन प्रबल भक्ति और ज्ञान का उदाहरण है। राम और रावण के रूप से मोयह समझाया गया है। मोह को रावण और कुम्भकर्ण को अहंकार का रूप दिया गया है।

काम और राम में पर्याप्त विरोध है। काम विश्राम का हारी है तो राम विश्राम दायक हैं :-

"जहाँ काम तहाँ राम नहिं जहाँ राम नहिं काम।
कबहुं न होत है रवि रजनी इक ठाम ।।"[1]

राम बाणों के सूर्योदय से मोहन्धकार रूपी राक्षसों का नाश हो जाता है :-

राम बान रवि उदय जानकी। तम बरूथ नहिं जातु धान की।।

तुलसीदास ने रोगों को तीन भागों में विभक्त किया है। बाधि (मानसिक) व्याधि (शारीरिक) तथा असत्य (वाचिक)।

बाधि मगन मन व्याधि विकल तन मलीन बचन मृठाई।[2]

इन्हीं तीनों को विनाश करना आवश्यकबतलाया गया है। राम प्रेम- पथ देखने के लिये विषय को पीठ देना आवश्यक है। क्योंकि विषय हमें अन्धा कर देता है।

राम प्रेम पथ देखिए, दिए विषय तनु पीठि।
तुलसी केंचुरि परिहरें, होत साँपहूं दीठि ।।[3]

गोस्वामी जी ने सारी आन्तरिक वृत्तियाँ शारीरिक सम्बन्धों तथा विषयों का भी उन्नयन राममक्ति के द्वारा करा दिया है। प्रेम, दया,

---

१- दोहावली : दो० सं० १२८। गीता भवन दोहा संग्रह (गीताप्रेस गोरखपुर)
२- विनय पत्रिका : पद सं० १६५।
३- दोहावली : दो० सं० ८२।

करुणा आदि उच्च वृत्तियां तो प्रभु के आश्रित होकर धन्य हो जाती हैं। किन्तु यदि काम क्रोध आदि कुत्सित वृत्तियाभो प्रभु में केन्द्रित हो जावें तो पवित्र हो जाती हैं।

काम का उदाहरण गोपियों का प्रेम है और क्रोध का रावणादि शत्रुओंका द्वेष, लोभ के लिए विभीषण प्रसिद्ध हैं। यद्यपि उनकी वासना भी प्रेम सरिता में वह गयी है। मोह में दशरथ जी अग्रगण्य हैं जो अपने को मूढ़ कहलाने में भी मानहानि नहीं समझते। मद में सुतीक्ष्ण का उदाहरण दिया जा सकताहै, जो प्रभु सेवक अभिमान सदा धारण किए रहते हैं। मत्सर से काग भुसुण्डि जो अपनी भक्ति प्रारंभ कोजो प्रत्येक मुनि से बढ़ाउपरि करते थे। चित्त शुद्धि या विषय विराग के लिए गोस्वामी जी ने ऊपरी तथाबाहरी बातों को अधिक महत्व नहीं दिया बल्कि अनेक बार उनकीनिन्दा की है। मनसा, वाचा और कर्मणा से मिश्रित आन्तरिक शुचिता पर गोस्वामी जी विशेषबल देते हैं। जहांतक ऊपरी बातें भक्ति की साधना है। वहांतक वे वाञ्छनीय हैं और जब वे भक्ति के अन्तर्गत प्रवेश न कर ऊपर ही ऊपर मडराती रहेंतो उनका साथ अवांछनीय है। बाह्य साधनों की निन्दा करते हुए विनय पत्रिका में कहा गया है :-

माधव ! मोह पास क्यों टूटै।
बाहर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ।।
घृत पूरनकराह अंतरगत, ससि प्रतिबिंब दिखावै ।।
ईंधन अनल लगाय कल्प सत, औटत नाश न पावै।
तरु कोटर महं बस बिहंग तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय विचार हीन मन शुद्ध होइ नहिं तैसे।
अंतर मलिन विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीक विविध विधि मारे।
तुलसिदास हरि गुरु करुना बिनु बिमल बिबेक न होई ।।
बिनु बिबेक संसार घोर- निधि पार न पावै कोई ।।

मन:शुद्धि से ही मुक्ति अथवा भक्ति उपलब्ध होती है। इसके लिये बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये दो प्रधान साधन है विवेक, दूसरी हरिकृपा ज्ञानमार्गी विवेक को ही प्रधान मानते हैं किन्तु भक्त लोग राम कृपा को ही प्रधानता प्रदान करते हुए विवेक को भी प्रधान मानते हैं।

इसी प्रकार इन्द्रियों के विषयों का भी गोस्वामी जी ने भक्ति में समन्वय कराया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ज्ञानेन्द्रियों के विषय है। इन्द्रियों की प्रवृत्ति अपने अपने विषयों कीओर स्वाभाविक रीति से होती हैं। जिसे देखकर गीता में स्वीकार किया है :-

"प्रकृतियान्तिभूतानि निग्रह: किं करिष्यति।"

ज्ञान और योग मार्ग विषयोन्मुख इन्द्रियों के निग्रहके लिए सम्यम आदि उपायों को उपयोगमेंलाते हैं। चित्तवृत्ति का निरोध ही योग की परिभाषा है। जब एक एक इन्द्रिय के कारण मीन, कुरंग, मृंगआदि विपत्ति में पड़ जाते हैं तब उस जीव की क्या दुर्दशा होगी जो कि पाँचों की खींचातानी में पड़कर उद्विग्न हो रहा है। मानस में इसका विस्तृत वर्णन है।गोस्वामी जी ने अपने प्रभु से इन्द्रियों के विरुद्ध बार-बार शिकायत की है।

इन्द्रिय निग्रह भी ईश्वर कृपा के बिना सम्भव नहीं है। सततगति शील रहनेवाली चंचल इन्द्रियां बलपूर्वक विषयों की ओर आकृष्ट होती हैं। सर्वशक्ति समर्थ नियन्ता ही इन्द्रियों को विषयों से विमुख करता है। नेत्र स्वभावत: नारीरूप की ओर, कान परदोष, रसना पर अपवाद तथा रसों की ओर और नासिका स्वभावत: सुगन्धित पदार्थों की ओर आकृष्ट होती है। अत: तुलसीदास ने निर्णय किया कि इनको रोक ने का उपाय निग्रह नहीं किन्तु अनुग्रह है। प्रभु अनुग्रह की प्राप्ति है। इस अनुग्रहकी प्राप्ति के लिए भी यही उपाय हैकि इन इन्द्रियों को विषयों

से विमुख कर राम के सम्मुख कर दिया जावे। नेत्रों को रामरूप कानों को रामचरित्र रसना को प्रभु प्रसाद, त्वचा को चरण स्पर्श तथा प्रभु अर्पित भूषणादि धारण और नासिका को प्रसाद गन्ध को ओर लगाया जावे। क्षणिक तृप्ति और स्थायी अस्थायी अतृप्ति इन्द्रिय तृप्ति का प्रधान लक्षण है। अग्नि में घृताहुति डालने के समान वह और भी अधिक तीव्र होती है किन्तु कहीं यही अतृप्ति ईश्वरकीओर लग जाये तो परितृप्ति हो ही जाय। उसमें भी भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे की भावना आनी चाहिए। जो इसे पाकर इसे तृप्त हो जाते हैं उन्होंने उसका विशेष रस ही नहीं जाना।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो महारोग ही मानस रोग है। वर्तमान युग (कलियुग) मानसरोगोंका पुंज है। इस प्रचंडयुग का प्रभाव ज्ञानी जन पर भी पड़ता है। विनय पत्रिका में स्थान स्थान पर कलियुगकी ओर संकेत किया गया है। कुछ स्थानों पर कलियुग की विशेष महत्ता प्रतिपादित हुयी है। जैसा कि निम्नलिखित पद से सिद्ध होता है।यथा-

कलि नाम काम तरु राम को।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घनघामको।
नाम लेत दाहिनो होत मन, बाम बिधाता बाम को।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को।
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित ललाम को।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को।।[१]

कलियुग में राम नाम कल्पवृक्ष है। वह दारिद्रय दुर्भिक्ष, दुःख, दोष और सांसारिक घन घटा तथा ताप संतापका नाश करनेवाला है अथवा भौतिक धूप से बचाने के लिए जलद तुल्य है। रामनाम लेते ही प्रतिकूल विधाता का प्रतिकूल मन अनुकूल हो जाता है। रूठा हुआ दैव भी प्रसन्न हो जाता है जिसे इस सुन्दर से भी सुन्दर राम नाम का बल भरोसा है।

१- विनय पत्रिका : पद सं० १५६।

समीसंसारी जीव प्राणान्तकारी रोगों से सतत पीड़ित हैं योग वाशिष्ठ में जीव के दु:खके दो कारणबताये गये हैं। आधि और व्याधि उनकी निवृत्ति मुख्य है। उनका क्षय मोक्ष है। देह दुख नाम व्याधि वासनामय दु:ख का नाम आधि है। जीव मन आधि से और तन व्याधि से पीड़ित रहता है। वस्तुत: आधि से ही व्याधि की उत्पत्ति होती है और आधि का क्षय होने पर व्याधि का भी क्षय हो जाता है। दूसरे शब्दों मेंमनोविकारों से मुक्त हो जाना ही निरोगता है। इन रोगों की संख्याबड़ी लम्बी है। अत: सोलह व्याधियों और उन्नीस आधियों की असाध्य कुरोग मानकर केवल उन्हीं कानामोल्लेख किया गया है। इनमें भी कुछ मानस रोग असाध्य हैं।

काम, मोह, क्रोध, लोभ, मद और मत्सर इन मनोविकारों में भी तीन बड़े ही प्रबल खल के समान हैं। काम, क्रोध और लोभ ये मुनियों के अनुशासित मन को भी पल भर में क्षुब्ध कर देते हैं। नारी काम को, कठोर वचन क्रोध को तथा इच्छा, दम्भ, लोभ को अतिशय बलवान बना देते हैं। उनमेंभी जीव कोप्रबलतम मन: प्रवृत्ति काम है। मैथुन प्रवृत्ति के प्रसंग में इसकी बलवत्ता की चर्चा की जाचुकी है। क्योंकि तुलसीदास ने उनका परिगणन करते समय कहीं काम को, कहीं क्रोध को और कहीं लोभ को प्रथम स्थान दिया है। इसलिये तीनों ही एक समान प्रधान हैं कोई एक दूसरे से कम नहीं है। यह मान्यता समीचीन नहीं प्रतीत होती। इस विषय में तुलसी द्वारा काम वृत्ति का इतना अधिक निरूपण एवं गीता भक्ति रसायन आदि प्रमाण हैं। तुलसी की दृष्टि मेंकामाभिभूत जीव तो मृतक तुल्य है। इन सब मानस रोगों में मोह का स्थान अन्यतम है। तुलसी ने मोह को समस्त शरीर और मानस रोगों का सभी प्रकार के मलोंका मूल माना है। क्योंकि सारे मोह विकार इसी से उत्पन्न होते हैं। जिनसे जीव संसार दु:ख का भागी बनता है। मोह की महिमा अतिशय बलवती है। वह समस्त भ्रम भेद बुद्धि का जनक है। जीव के सारे अकर्तव्य कर्म मोह से प्रेरित हैं।

मोह ग्रस्त पर उपदेशों का प्रभाव नहीं पड़ता । उसकी मोह श्रृंखला इतनी प्रबल है कि केवल राम के छुड़ाने से ही छूट जाती है।[1] मोह काम आदि की उत्पत्ति माया से हुयी है।[2] माया की संतान होने के कारण इन्हें माया का परिवार कहना सर्वथा सार्थक है। कृष्ण मिश्र के प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में मन और उसकी पत्नी प्रवृत्ति से जनित मोह आदि आठ पुत्रों मिथ्या आदि पुत्र वधुओं अहंकार आदि नातियों एवं ममता आदि नव वधुओंकी चर्चा की गयी है। यह भी निरूपित किया गया है कि प्रवृत्ति की कन्या वासना का विवाह ईश्वर की अदया के पुत्र अज्ञान से हुआ और उनसे संसय, विक्षेप आदि संतानोंका जन्म हुआ। मानस रोग निरूपण में तुलसी ने कृष्ण मिश्र की भांति सांगरूपक की प्रतीक योजना नहीं प्रस्तुत की किन्तु अपनी मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना को सरस और शक्तिमती बनाने के लिये खण्ड रूपकोंके संवलित चित्र मार्मिकता के साथ किये :-

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ।।
तृष्णा कीन्ह न केहि बौराहा । केहिकर हृदय क्रोध नहिं दाहा ।।
ज्ञानी तापस सूर कवि कोविद गुन आगार ।
केहि कै लोभ विडंबना कीन्ह न येहि संसार ।।
श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृग लोचनि के लोचन सर को अस लागि न जाहि ।।
गुनकृत सन्यपात नहि केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ।।
जौबन ज्वर केहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर जसु न नसावा ।।
मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ।।
चिंता सांपिनि को नहि खाया । को जग जाहि न व्यापी माया ।।
कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ।।

१- विनय पत्रिका : पद सं० ११५ ।
२- उपरिवत् : पद सं० ११४ ।

सुतवित लोक ईषना तीनी । केहि के मति इन्ह कृत न मलीनी ।।
यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमिति को बरनैपारा ।।

वंदीकृत, पराजित अथवा आक्रांत शत्रु के सदृश जीव को परिपीड़ित करनेवाले इन मनोविकारों को रूपांतर से तुलसी ने माया कटक भी कहा है । माया-परिवार के मुख्य सदस्य ही इस कटक के संचालक हैं। मकरूपी मय ने वपुष रूपी ब्रह्माण्ड में प्रवृत्ति रूपी लंका-दुर्ग का निर्माण किया है । मोह रूपी रावण उसका राजा है । अहंकार काम इत्यादि उसके कुटुम्बी तथा सेनापति हैं । असहाय विभीषण सदृश जीव चिंता ग्रस्त है। विभिन्न मनोविकारों से संकुल जीव का मनोमय जगत् प्राण घातक पशुपक्षियों भूत प्रेतों आदि से समाकीर्ण भीषण कांतार[१] एवं नर मत्स्य जल जंतुओं से पूर्ण घोर तरंगिणी के सदृश भयाकुल है ।

दर्शन का मुख्य प्रयोजन उक्त मानस रोगों की आत्यंतिक निवृत्ति है । अतएव रामचरितमानस के उपसंहार में तुलसी ने उन रोगों का सम्यक् निरूपण करके उनके मूलोच्छेद को संजीवनी औषधि भी बतायी है । ज्ञानवादी योग-वाशिष्ठकार[१] ने एक मात्र ज्ञान को ही मानसी चिकित्साका उपाय बताया है ।

रामचरितमानस के कागभुशुण्डि ज्ञान को केवल किंचित्साधनता ही स्वीकार करते हैं । उनका अभिमत हैकि ज्ञान इन मानस रोगों का केवल आंशिक क्षय करने में हीसमर्थ हैं । विषय कुपथ्य पाते ही ये परितापी रोग मुनियों के हृदय में भी पुनः अंकुरितहो उठते हैं । इनके आत्यंतिक नाश का एक ही उपाय है - रामभक्ति ।

इन्द्रियां दस हैं - श्रोत, त्वचा, चक्षु, रसना और नासिका- ये पांच ज्ञानेन्द्रियाहैं - वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ - ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं । मन सभी इन्द्रियों से संयुक्त होकर जीव को विषयों का भोग कराता है ।

१- आत्मज्ञानं विना सारोगाधिर्नश्यति राघव :-योगवाशिष्ठ :६।१।८१।२५।

अतः उसे ग्यारहवीं (उभयात्मक) इन्द्रिय माना गया है।[१] वह अतिइन्द्रिय है, अंतःकरण है। अतएव सामान्यतः उसकी गणना इन्द्रियों में नहीं की जाती। जब जीव एक स्थूल शरीर को छोड़कर दूसरा स्थूल शरीर प्राप्त करता है तब वह अपने मन एवं ज्ञानेन्द्रियों को भी साथ लेकर जाता है और उनको आश्रय बनाकर शब्दादि विषयों का सेवन किया करता है। तुलसी ने जिस षड्वर्ग के वशीकरण का उल्लेख किया है उसका एक अर्थ यह (मन और ज्ञानेन्द्रियों) का षड्वर्ग भी है। यही मनोमयकोश है। इसी का गीता में भी विवेचन किया गया है।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।।[२]

गोस्वामी जी ने कुछ मूल प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है जो सभी मनुष्यों में जन्मजात हैं।[३] वे हैं काम, क्रोध, अभिमान, लोभ, निद्रा, भय, क्षुधा और पिपासा।

सामाजिक मूल प्रवृत्ति उन आकाश, स्थल और जल के प्राणियों में देखी जाती है जो साथ भोजन करते, साथ जल पीते तथा साथ ही रहते हैं :-

गो खग, खे खग, वारि खग, तीनों माहि विसेक।
पीवें फिर चलैं, रहैं फिरें संग एक ।।[४]

इन प्रवृत्तियों का घर मन है। इनके कारण ज्ञान विज्ञान की गुंजाइश कम है। अनेक कामनाएं और वासनाएं भी हृदय- निकेतन में निवास करती हैं। इन प्रवृत्तियों एवं संवेगों से कोई व्यक्ति मुक्त नहीं है। मद-मार-विकार-युक्त

१- मनुस्मृति : २।९०,९२।

२- श्रीमद्भगवद्गीता : १५।९।

३- विनय पत्रिका : पद सं० २,४,१०५,१७७,२०१,२६० ।

४- दोहावली: दो० सं० ५३८ ।

मनुष्य आचार विचारको त्याग देते हैं। इन सब प्रवृत्तियों में काम, बड़ा प्रबल है, क्योंकि इसने सब देव-दानव, नाग नागादिकों पर विजय प्राप्त कर ली है। और यह श्रेष्ठातिश्रेष्ठ मुनि-यतियों के मार्गमें बाधक रूप से उपस्थित रहता है।[1]

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।[1]

लोभ भी ऐसाही बलवान है। कौन ऐसा यति मुनि योद्धा, कवि, विद्वान और बुद्धिमान है जो लोभ के वशीभूत नहीं होता। तथ्य यह है कि प्रवृत्तियां भोग से शान्त नहीं होती, प्रत्युत इस प्रकार वृद्धिगत होती हैं जिस प्रकार घृत से अग्नि।

मन पछतै हैं अवसर बीते।
दुरलभदेह पाइ हरि पद भजु, करम बचन अरु ही ते ।।
सहसबाहु, दसबदन आदिनृप बचे न काल बलीते ।।
हम हम करि धनधाम सवारे, अन्त चले उठि रीते ।।
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत, नकरु नेह इन्हीं ते ।।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर। तू न तजै अबही ते ।।
अब नाथहिं अनुराग, जागु, जड़, त्यागु दुरासा जीते ।।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुं विषय भोग बहु घी ते ।।[2]

इसी प्रकार विनय पत्रिका के एक पद में भी घृत से जैसे अग्नि की वृद्धि होती है उसीप्रकार भोगों सेकाम की। किन्तु वे प्रेत-पावक के समान मनुष्य को भ्रान्त कर देती हैं।

१- श्रीमद्भगवद्गीता : ३।३९।

२- विनय पत्रिका : पद सं० १९८।

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो ।
तजि हरि चरन-सरोज सुधारस, रविकर जल लय लायो ।।
त्रिजग देव नर असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो ।।
-- — —
छिन छिन छीन होत जोवन दुरलभ तनु वृथा गंवायो ।
तुलसीदास हरि भजहिं आस तजि, काल-उरग जग खायो ।।[१]

गोस्वामी जी ने तीन एषणाओं का उल्लेख किया है जिनका उन्मथन भगवद्भक्ति में हो सकता है। काक ने तीन एषणाओंका त्यागकर केवल एक इच्छा हृदय में रखी, वह थी श्री राम के चरणों की लालसा । आयुर्वेद के प्रख्यात प्रवर्तक ने तीन एषणाएं बतायी हैं : प्राणैषणा, धनैषणा, और परलोकैषणा । जिनमें बल, बुद्धि, प्रयत्न और क्रियाशीलता होती है । और जो ऐहिक और पारलौकिक कल्याण चाहते हैं, उनमेंतीन एषणाएं होती हैं । सूत्रस्थ में महर्षि चरक का कथन इस प्रकार है :-

इहखलु पुरुषेणानुपहत-सत्व-बुद्धि-पौरुष-पराक्रमेण हित मिह चामुष्मि-
ंल्लोके समनुपश्यता तिस्रएषणा: ।।
पर्येष्टव्या भवन्ति तद्यथा-प्राणैषणा, धनैषणा, परलोकैषणेति[२]।

किन्तु कुछ अन्य महानुभावों ने जिनमें तुलसीदास जी भी हैं, एषणाओं के नाम इस प्रकार गिनाए हैं : पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा अर्थात् सन्तान, धन और यश के लिएकामनाएं :-

महर्षि चरक का वर्गीकरण अच्छा प्रतीत होता है, क्योंकि प्राणैषणा में पुत्रैषणाका समावेश होता है, धनैषणा और वित्तैषणा पर्याय हैं तथा लोकैषणाका लक्ष्य इस जीवनमें यश और सामाजिक प्रतिष्ठा तथा परलोक में

१- विनय पत्रिका : पद सं० १९९ ।
२- चरक सूत्रस्थान अध्याय ११ ।

कल्याण की प्राप्ति है। एषणा का त्रिविध विभाजन ठीक वैसा ही है जैसा कि आधुनिक विज्ञान में चौदह मूल प्रवृत्तियों का त्रिविध वर्गीकरण। प्राणैषणा ही में भोजनान्वेषण, पलायन, युद्ध, विकर्षण, भोग, प्रजनन आदि प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है। अधिकार और दैन्य ये दोनों प्रवृत्तियाँ प्राणैषणा और वित्तैषणा के मध्यवर्ती हैं। वित्तैषणा में औत्सुक्य और संचय का समावेश है। विधायकता नामक प्रवृत्ति वित्तैषणा और लोकैषणा की मध्यवर्तिनी है। लोकैषणा में सामाजिकता, संरक्षण संवेदन(कपोल) और हास्य नामक प्रवृत्तियों का समावेश है।

लालसा :- अथर्ववेद (१६।७१।१) में मानव- जीवन के ये उद्देश्य बताये गये हैं - दीर्घ जीवन, बल, सन्तति, दुग्ध पशु, यान- पशु, यश, सम्पत्ति और मोक्ष। यजुर्वेद (३६।२४)के अनुसार हिन्दू की नित्य प्रार्थना है कि मैं सौ वर्ष तक अदीन होकर देखूं, सुनूं और बोलूं। पश्येम शरद: शतं, जीवेम शरद: शतं, शृणुयाम शरद: शतम्, प्रब्राम शरद: शतं अदीन: स्याम् शरद: शतम्। अथर्ववेद का पाठक देवता मनुष्य और पशुओं का भी प्यारा बनने तथा शक्ति एवं यश की प्राप्ति का इच्छुक है। वह मेधा और धी भी चाहता है।[१] अन्त में आनन्दात्मक मुक्ति के लिए अभिलाषा प्रकट की गयी है। ये तथा अन्य अभिलाषाएं एषणाओं की शाखाएं हैं, इन्हें लालसा कहते हैं। तुलसीदास के अनुसार काक की लालसा राम चरण दर्शन की थी।

एक लालसा उर अतिबाढ़ी, रामचरन वारिज जब देखी। एषणा शब्द संस्कृत के एष् अथवा इष से व्युत्पन्न हुआ है और आत्मभाषा के विश से साम्य रखता है। मानव स्वभाव में एषणा अव्यक्त रूप से रूढ़ है और वह पदार्थ विशेष के निमित्त लालसा के रूप से व्यक्त होती है। वासना वस् धातु से व्युत्पन्न है, और यह वह संकल्प है जो अचेतन में चिरकाल से अपरिचित एवं अपूरित बना रहता है।

१- यजुर्वेद: ३१।१८।

संवेग :-

एषणा त्रय के अनुरूप, संवेग त्रय हैं। राम ने लक्ष्मण से कहा था कि काम, क्रोध और लोभ ये तीन शत्रु बुद्धिमानोंके मनको क्षणमात्र में विचलित कर देते हैं। काम का शस्त्र नारी है, क्रोध का कटुवाणी है, और लोभ का आवश्यकता एवं अहंकारिता।

ये तीन प्रधान संवेग अन्य कुत्सित संवेगों को जन्म देते हैं, जिनकी संख्या छह तक पहुंच जाती है। परम्परागत और आलंकारिक भाषा में इन्हें षड्-रिपु कहा गया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। विनय पत्रिका में तम मोह,लोभ, अहंकार, मद, क्रोध, बोध, रिपु, मार आदिको तस्कर बताया गया है।

काम, क्रोध और लोभ ये प्रबल खल हैं जिनमें से पहला अर्थात् काम सकलंक है, दूसरा अर्थात् अकारण क्रोध, अकुशल एवंवरघात है, और तीसरा अर्थात् लोभ अकीर्त है। ये तीनों ही माया-संभव है।

मायाका परिवार बड़ा है। उसमें संवेग और प्रवृत्तियोंका निवास है। कौन सा ऐसा सन्त है जिसे मोह ने अन्धा न किया हो जिसे काम ने नहीं नचाया, जिसे तृष्णा ने मतवाला नहीं बनाया और जिसका हृदय क्रोध ने नहीं जलाया हो। ऐसा कौन-सा ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि, विद्वान और गुणी है। जिसकी विडम्बना लोभ ने न की हो। लक्ष्मी के मद ने किसको कुटिल नहीं बना दिया और प्रभुता ने किसको बहरा नहीं कर दिया? ऐसा कौन हो मृग नयनी के नयनबाणों से बिद्ध न हुआ हो, जिसे त्रिगुणों का सन्निपात न हुआ हो, जिसे मद और मान ने अछूता छोड़ा हो जिसे यौवन के ज्वर ने आपे से बाहर न किया हो जिसके यश का नाश ममता ने न किया हो जिसे मत्सर ने कलंक न लगाया हो, जिसे शोक पवन ने विचलित न कर दिया हो और जिसे चिन्ता सर्पिणी ने न डसा हो।

गोस्वामी जी ने चिन्ता की एक भगिनी है जिसका नाम आशा देवी है। बड़ी ही विचित्र है क्योंकि जो उसकी सेवा करता है उसे तो शोक और सन्ताप प्राप्त होता ही है। ऐसा और जो उससे बचता है उसे सुख आशा से आवश्यकताओं की उत्पत्ति होती है। जैसा कि --

तुलसी अद्भुत देवता आशा देवी नाम।
सेये सोक समर्पई, विमुख भए अभिराम।।[1]

ऐसा कौन धीर पुरुष है जिसके शरीररूपी काष्ठ में मनोरथ रूपी घुन न लगा हो, जिसे पुत्र धन और लोक प्रतिष्ठा की, प्रबल इच्छाओं ने मलीन न कर दिया हो? माया का यह परिवार महाकठोर अपार है।

माया की सेना विशाल और विश्व-व्याप्त है। इसके सेनापति काम, क्रोध और लोभ हैं तथा दम्भ, कपट और पाखण्ड योद्धा हैं। गोस्वामी जी के विचार से माया सेनापति है, जिसके नीचे काम, क्रोध, कपट, पाखण्ड नामक प्रमुख योद्धा हैं। प्रवृत्तियाँ और संवेग सिपाही हैं। यद्यपि माया समस्त संवेगों और प्रवृत्तियों का स्रोत है तथापि गोस्वामीजी उसका तादात्म्य मोह से कर देते हैं जो काम-लोभ के बन्धुत्व से माया के अधीन है। माया रूपी मोह बीर एक प्रबल धारा है जो काम, क्रोध, लोभ और मद से संकुल है। मोह की उपमा विपिन से और नारी की उपमा ऋतुओं से दी गयी है।[2]

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह विपिन कहुँ नारि बसंता।।
जप तप नेम जलाश्रय भारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी।।[2]

मोह के कारण मनुष्य सन्मार्ग से विचलित हो जाता है, स्वार्थी बन जाता है और अनेक पापापराध करके परलोक को नष्ट कर लेता है। मोह उस हृदय में उत्पन्न होता है जो ज्ञान और वैराग्य से हीन है। लोभ

१- दोहावली : दो० सं० २५८।
२- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं० ४४, चौ० सं० १।

कदाचित् आत्माभाषा के लब शब्द की व्युत्पन्न करता है और अपने व्यापक रूप में प्रेम और परहित को भी समाविष्ट कर लेता है। लाभ से लोभ की वृद्धि होती है और प्रभुता से मद की उत्पत्ति होती है। प्रभुता पाकर किसको मद नहीं होता ? मत्सर का निवास हृदय में तब तक रहता है जब तक धनुर्धारी राम का निवास नहीं होता। सज्जन कभी परद्रोह नहीं करते। राग द्वेष नाम के दो उलूक ममता रात्रि में रामभक्ति सूर्योदय तक उड़ते रहते हैं, मान, अभिमान अथवा गर्व दुष्ट-समुदाय का सदस्य है जो हृदय को कलुषित करता रहता है और मोह की वृद्धि करता रहता है। मिथ्या भाषण और कपट का वही प्रभाव प्रेम पर पड़ता है जो अम्ल का दुग्ध पर। संशय और शोक अज्ञान उत्पन्न करते हैं। स्वार्थ से मोह और मोह से पाप होता है।

स्वार्थी मनुष्य लंपट, कामी, क्रोधी और लोभी होते हैं तथा पारिवारिक कलह को जन्म देते हैं। वे माता पिता गुरु की बात नहीं सुनते अतएव स्वयं नष्ट हो जाते हैं और दूसरे का नाश निरन्तर करते हैं। यह संसार स्वार्थी मित्रों से परिपूर्ण है। माता-पिता तथा अन्य लोग भी स्वार्थरत हैं। स्वार्थ सम्पूर्ण अवगुणों का मूल है ।

गोस्वामी जी ने आधुनिक मनोविश्लेषण के जन्मदाता सिगमण्ड फ्रायड की अपेक्षा काम अर्थात् यौन प्रवृत्ति पर कुछ कम ध्यान नहीं दिया। काम शब्द में सब प्रकार की कामनाएं निहित हैं। ऋग्वेद में लिखा है :-

कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसोरेतः प्रथमं यदासीत्[१]।

अर्थात् आरम्भ में काम उत्पन्न हुआ जो मन का प्रथम बीज था। उपनिषदों में भी काम शब्द इच्छा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा-आदि (३।२।५)। काम का यह रूप अयौन था छान्दोग्य का कथन इस प्रकार है :-

सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय।[२]

१-ऋग्वेद : १०।१२९।४। २-छान्दोग्योपनिषद् : ६।२।३।

यहाँ काम का रूप यौन और अयौन के मध्यस्थ है। परमात्मा को अकेलापन खला। अत: उन्होंने दूसरे की इच्छा की। वे नारी बन गये और उन्होंने पति-पत्नीका रूप ग्रहण किया। उससे मानवों की सृष्टि हुई[1]। काम का यहरूप यौन है। मूर्त रूप में काम कामदेव हो गए। चार पदार्थों में काम का स्थान है और उस पर अनेकों ग्रंथ हैं जैसे- रति रहस्य, रतिमंजरी, अनंग रंग। महर्षि वात्स्यायन ने काम की जो परिभाषा प्रस्तुत की है वह आधुनिक युग के हैवलोक एलिस के तों से बहुत कुछ मिलती है।

कामदेव सब पर समान रूप से प्रभाव डालता है। कौन उनके अधीन नहीं हो जाता। उन्होंने पुष्पवाटिका में तथा सीताहरण के पश्चात् राम को वशीभूत किया था। राम और सीता को संयोग और वियोग में जो प्रेम की अनुभूति हुई थी तुलसी दास ने उसकी पुष्टि जगह जगह पर की है। अपराधिनी कैकेयी के सम्मुख दशरथ आसक्त थे क्योंकि कामदेव ने उन्हें जर्जर कर दिया था। नारद जी ने एक बार भगवान शंकर से यह आत्मश्लाघा की थी कि मैंने काम पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है। किन्तु वे भी विश्वमोहिनी के सौन्दर्य से कामासक्त हो गए।

प्रेमी अधिकतर से, किन्तु मूर्खतावश, अपने गुणों को तथा अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य को औचित्य से अधिक मूल्यवान समझता है। वानर मुख नारद जी स्वयंवर में बैठे हुए अपने को सर्वातिसुन्दर समझ रहे थे। अतएव गोस्वामी जी मानते हैं कि प्रेम और बैर दोनों ही अन्धे हैं।

तुलसी बैर सनेह दोउ, रहित विलोचन चारि।[2]

गोस्वामी जी से इंग्लैण्ड के महाकवि शेक्सपियर से तुलना की गयी है।

१- बृहदारण्यकोपनिषद् : १।४।१-३।

२- दोहावली : दो० सं० ३२९।

विषय-जन्य सुख विवेक को हर लेते हैं इस संबंध में सुग्रीव ने हनुमान जी से और लक्ष्मण जी से भी स्वीकार किया है कि विषय के समान कोई मद नहीं है क्योंकि यह क्षणमात्र में मुनियों के मन में भी मोह उत्पन्न कर देता है। तदनन्तर वे राम जी से कहते हैं कि देखा, मनुष्य और मुनि सभी व्यक्ति विषयों के वश में हैं। मैं तो पामर पशु और पशुओं में भी अति कामी बन्दर हूं। वास्तव में वही जागता है जिसे स्त्री का नयन बाण नहीं लगता जो जीवों के द्रोह में रत, मोह के वश, राम से विमुख और काम में आसक्त है, क्या उसे स्वप्न में भी सम्पत्ति और शान्ति प्राप्त हो सकती है? ज्ञान निधान मुनि भी मृगनयनी के विधुमुख को देखकर विवश हो जाते हैं जो पुरुष नारी का त्याग कर सकते हैं वे विरक्त और मतिधीर होते हैं। विषयासक्त कामी पुरुष ऐसा नहीं कर सकते हैं।

कामी के शब्दों से सन्यासी ऐसी अविचलित रहती है जैसे शंकर जी का धनुष मोह का उतार है : ज्ञान और अनासक्ति का सर्जन विष्णु जी ने नारद जी से कहा था कि ज्ञान और विराग से हीन हृदय में मोह व्याप्त होता है। मतिधीर एवं ब्रह्मचर्यव्रत- निरत पुरुषों को काम क्या कष्ट दे सकता है? निस्सन्देह सन्यासी अपरिहार्य लक्षण विराग है। पार्वती जी ने शंकर जी की प्राप्ति के निमित्त सहस्रों वर्षों तक निराहार और तपस्या की, तथापि उनका प्रेम वासना-हीन था। जब समझाने के लिए सप्तर्षि उनके पास पहुंचे और बोले कि शंकर जी ने कामदेव को भस्म कर दिया है। अतएव आपकी तपस्या व्यर्थ है, तो वे ऋषियों से बोलीं : आपके इस कथन से कि महादेव जी ने कामदेव को भस्मसात् कर दिया है। यह प्रतीत होता है कि वे परिवर्तनशील हैं, किन्तु मैं तो उन्हें सदा से जानती हूं, वे निर्विकार हैं। मैंने मनसा, वाचा, कर्मणा, उनकी सेवा की है, वे कृपालु हैं अतएव मेरे प्रण को वे अवश्य पूरा करेंगे। आपका यह कथन है कि उन्होंने कामदेव को नष्ट कर दिया है आपकी विवेक शून्यता को व्यक्त करता है।

अग्नि का स्वभाव परिवर्तित नहीं होता, हिम उसके निकट नहीं रह सकता, यदि निकट आयेगा तो नष्ट हो जायेगा । इसी प्रकार महादेव जी के समक्ष काम भी । भगवती पार्वती का प्रेम, अपने पति के प्रति सत्यनिष्ठ था और उन्हें अपने प्रेम पर विश्वास भी राम के प्रति सीता की भी भावना यही थी, उन्हें विश्वास था कि :-

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ।।

उन्नत प्रेम के रूप का दर्शन भगवान् के सान्निध्य में होता है । चित्रकूट में रामचन्द्र जी के आश्रम के निकट हाथी, सूकर, बन्दर, एवं हरिण वैरभाव छोड़कर विहार करते थे । नीलकंठ, कोकिल, शुक, चातक, चक्रवाक, चकोर आदि पक्षीगण कर्ण सुखद तथा मनोरम कलरव करते थे । कोल किरात, भील आदि बनवासी पवित्र एवं सुन्दर अमृतोपम स्वादिष्ट मधु को तथा कन्द, मूल, फल आदि को दोनों में भरकर और उनके गुण और नाम आदि बताबताकर अत्यन्त विनय के साथ रामचन्द्र जी को भेंट करते थे । जब रामचन्द्र जी उन्हें उसका मूल्य देते थे तो वे प्रेम के कारण यह कहकर नहीं लेते थे :-

मानत साधु प्रेम पहिचानी ।
और राम को भीतो प्रेम ही प्यारा था ।

रामहि केवल प्रेम पिआरा । जानि लेउ जो जाननिहारा ।।

इच्छाओं के दमन से ग्रंथियाँ बन जाया करती हैं । गोस्वामी जी के अनुसार जड़ इन्द्रियां ग्रंथियां जड़ और चेतन के संयोग से अर्थात् अज्ञान और भ्रम के कारण पड़ जाती हैं । यद्यपि ग्रंथि वास्तव में मिथ्या होती है तथापि उसका खोलना अत्यन्त कठिन है और जब तक वह नहीं खुलती तब तक सुख नहीं मिलता । जबसे जीव स्वार्थी होने लगता है तब से यह ग्रंथि पड़ने

लगती है। उसको सुलझाने के लिये जितना ही प्रयत्न किया जाता है वह उतनी ही और उलझती जाती है :-

> जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। यदपि मृषा छूटत कठिनई।।
> तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथ न होइ सुखारी।।
> श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक उरझाई।।[१]

ग्रंथि के कारण शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। व्याधियों के समान आधियां भी कष्ट प्रद हैं। इन्हें गोस्वामी जी ने मनसम्भव दोष बताया है। आयुर्वेद से अनभिज्ञ रोगी अपने वैद्य से कुपथ्य मांगा करता है, इसी प्रकार आधियों से पीड़ित मनुष्य अपने रोग के निदान से अनभिज्ञ होने के कारण काम-क्रोधरत रहता है। यह तो विशेषज्ञ ही कह सकता है कि अमुक रोग का कारण क्या है और उसकी शान्तिका क्या उपाय है।

भगवान विष्णु ने नारद जी को अहमिति ग्रंथि को दूर किया था। क्योंकि नारद जी को यह घमण्ड था कि मैंने काम पर पूर्ण विजय प्राप्त की है। किन्तु इस संसार में ऐसा कौन है जिसे मोह ने अन्धा न किया अथवा काम ने नहीं नचाया हो।

इस प्रकार जगत् में समस्त जीव रोगी हैं क्योंकि हर्ष-शोक, प्रीति भय आदि से समन्वित हैं। रोग-निवारण के लिये अनेक उपाय हैं, यथा, नियम, धर्म, आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान और औषधियां भी किन्तु अनेक उपचारों के रहते हुए भी व्याधि कम नहीं होती, क्योंकि केवल कतिपय लोग इन रोगों को जानते हैं। विषय रूपी कुपथ्य को पाकर मुनियों के हृदय में भी ये रोग अंकुरित हो उठते हैं, एक साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या है?

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड :दो० सं० ११७, चौ० सं० २,३।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इच्छाओं और मूल प्रवृत्तियों का प्रकाशन, दमन अथवा रूपान्तरीकरण होता है। स्मृतियों के पाठकों को विदित है कि ब्रह्मचर्य के पालन पर कितना आग्रह किया गया है। सन्तों के द्वारा कामिनी-कंचन त्याग का परामर्श कदाचित् कुछ लोगों को खलता भी है।

प्राचीन ऋषियों ने संवेगों के नियमित अभिव्यंजन का महत्व समझा, अतएव उन्होंने होली पर आचारशिथिलता और गोवर्धन पर द्यूत क्रीड़ा के लिए किंचित् स्वातंत्र्य दे दिया है। विदेशों में भी है डे तथा एप्रिल फूल मनाया जाता है। विवाहों के अवसर पर स्त्रियां शृंगारिक एवं अश्लील गीत गाती हैं। पार्वती परमेश्वर एवं सीता राम के विवाह के दोनों अवसरों पर तुलसीदास जी स्त्रियों से गालियां गवाना नहीं भूले। इस प्रकार के गीत तुलसीदास जी के समय में गाये जाते थे और इनका प्रचार प्रसार आज भी ब्रज और अवधी प्रान्त में है। तुलसीदास जी को ऐसे गीत सुनने में कदाचित् आनन्द आता रहा होगा क्योंकि वे विनोदी थे। उनकी वर्णन शैली से यह जान पड़ता है कि वे इस प्रथा को बुरा नहीं समझते थे। यद्यपि वे गालियों के दोषों से भी अनभिज्ञ न थे। उन्होंने कहा है कि ब्रह्मा जी ने गाली को अमृत और विष के निचोड़ से रचा है, इसलिये गाली बैर और प्रेम दोनों की जननी है। इस रहस्य को बुद्धिमान समझते हैं, ग्रामीण नहीं :-

> अमिअ गारि गारेउ गरल गारि कीन्ह करतार।
> प्रेम बैरि की जननि जुग जानहिं बुध न गंवार।।[1]

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार भी अश्लील शब्द यदा-कदा रेचक अतएव हितकारी सिद्ध होते हैं।

गोस्वामी जी सांसारिक कष्टों से इतने दुःखी हैं कि वे अपनी दीनता श्री राम के चरणों में ही अर्पित करना चाहते हैं क्योंकि उन्हें और

1- दोहावली : दो० सं० ३२८।

कोई उस विपत्ति को हटानेवाला नहीं दिखलाई पड़ रहा है :-

> मैं केहि कहौं बिपति अति भारी । श्री रघुबीर धीर हितकारी ।।
> मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहं बसे आइ बहु चोरा ।।
> अति कठिन करहिं बरजोरा । मानहिं नहिं बिनय निहोरा ।।
> तम मोह लोभ अहंकारा । मद, क्रोध, बोध-रिपु मारा ।।
> अति करहिं उपद्रव नाथा । मरदहिं मोहिं जानि अनाथा ।।
> मैं एक अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ।।
> भागेहु नहिं नाथ ! उबारा । रघुनायक, करहु सँभारा ।।
> कह तुलसिदास सुनु रामा । लूटहिं तसकर तव धामा ।।
> चिंता यह मोहिं अपारा । अपजस नहिं होइ तुम्हारा ।। [१]

संत भक्त अपनी पुकार सुनाते हुए कहते हैं हे नाथ तुम्हें छोड़कर अपनी दारुण विपत्ति किसे सुनाऊं ? हे नाथ मेरा हृदय है तो तुम्हारा निवासस्थान परन्तु आजकल इस स्थान पर अर्थात् तुम्हारे मन्दिर में चोरों ने अपना निवास स्थान बना लिया है । मैं उन्हें निकालना चाहता हूं किन्तु वे निकलते नहीं हैं । सदा जबरदस्ती ही करते रहते हैं । मेरी विनती निहोरा कुछ भी नहीं मानते । इन चोरों में प्रधान सात हैं - अज्ञान, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध और ज्ञान का शत्रु काम । हे नाथ। ये सब बड़ा ही उपद्रव कर रहे हैं । मुझे अनाथ जानकर कुचल डालते हैं । मैं अकेला हूं और इन उपद्रवी चोरों की संख्या बहुत है । कोई मेरी पुकार तक नहीं सुनता । हे नाथ, भाग जाऊं तो भी इनसे पिण्ड छूटना कठिन है, क्योंकि ये पीछे पीछे सताते ही रहते हैं । अब हे रघुनाथ जी आप ही मेरी रक्षा कीजिये ।

गोस्वामी जी कहते हैं कि हे राम । इसमें मेरा क्या जाता है, चोर तुम्हारे ही घर को लूट रहे हैं । मुझे तो इसी बात की बड़ी चिन्ता लगी रहती है कि कहीं तुम्हारी बदनामी न हो जाय ।

१- विनय पत्रिका :पद संख्या १२५ ।

आपका भक्त कहलाने पर भी मेरे हृदय के सात्त्विक रत्नों को यदि काम, क्रोध आदि डाकू लूट ले जायेंगे तो इसमें बदनामी आपकी ही है ।

विनय पत्रिका में एक स्थान पर तुलसीदास जी ने लोभ रूपी मगर, क्रोध रूपी दैत्यराज हिरण्यकश्यपु, दुष्ट कामदेव रूपी दुर्योधन का भाई दु:शासन ।ये सभी मुझे गोस्वामी जी को दारुणदु:ख दे रहे हैं । हे उदार रामचन्द्र जी । मेरे इन शत्रुओं का नाश कीजिये । गोस्वामी इनतीनों प्रबल शत्रुओं से पीड़ित होकर उलाहना दे रहे हैं । नाथ आपने गजेन्द्र, प्रह्लाद, द्रौपदी आदि को पीड़ित जानकर अतिशीघ्र कृपा कर उन्हें उनके शत्रुओं से बचाया था किन्तु यहाँ मुझे तो बहुत से शत्रु असह्य कष्ट दे रहे हैं । मेरी यह भव पीड़ा आप क्यों नहीं दूर करते ।

> कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ।
>
> -- -- --
>
> एक एक रिपुते त्रासित जन, तुम राखे रघुबीर ।
>
> अब मोहिं देत दुसह दु:ख बहु रिपु कस न हरहु भव पीर ।।
>
> लोभ ग्राह दनुजेस क्रोध कुरुराज बंधु खलमार ।
>
> तुलसिदास प्रभु यह दारुन दु:ख भंजहु राम उदार ।।"[१]

दोहावली में भीइसी प्रकार से संत कवि कहते हैं कि स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र जब अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने में ही संतुष्टहोते हैं । अपनी रुचि के प्रतिकूल किसी कीबात नहीं सुनते और मनमानी करके आपही काम बिगाड़ लेते हैं तथा फिर रुठ भीजाते हैं, तब ए बारोंमनको काटेके सदृश चुभने लगते हैं तात्पर्य यह हैकि मानसिक अशान्ति इन उपर्युक्त स्वजनों से भी पर्याप्त रूप से होती है तभीतो एकाग्र निर्णयात्मक बुद्धि भक्त की हो जाती है और सहसा निवेदन करता है – "सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह इन्हों से, अंतहु तोहिं तजैंगे पामर तू न तजै अबहीते ।"

१– विनय पत्रिका : पद सं० ६३ ।

अर्थात् अशान्त मन की शान्ति करने के लिये इनका परित्याग करो जैसे अग्नि में घृत डालने से वह प्रज्वलित होहोगी उसी प्रकार विषय भोग भोगने से बढ़ेंगे होमन उनसे तृप्त नहीं होगा हमेशा अतृप्त होरहेगा ।

लठहिनिज रुचि काजकरि रुठहिं काज बिगारि ।
तीय तनय सेवक सखा मनके कंटक चारि ।।[१]

कवितावली में भी कई स्थलों पर काम, क्रोध, लोभ से बचने के लिये कहा है :-

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिंकीन्हों ।
को न लोभ दृढ़ फंदबांधि त्रासन करि दीन्हों ?
कौन हृदय नहि लागि कठिन अति नारि नयन सर ।
लोचन जुत नहिंअंधभयो श्री पाइ कौन नर ?
सुर-नाग-लोक महि मंडलहुं को जु मोह कीन्हों जय न ?
कह तुलसिदास सो ऊबरौ, जेहि राख राम राजीवनयन ।।[२]

क्रोध ने किसको नहीं जलाया ? काम ने किसको वशीभूत नहीं किया । लोभ ने किसको दृढ़ फांसी मेंबांधकर त्रस्त नहीं किया ? किसके हृदय में स्त्रियों के नेत्ररूपी कठिनबाण नहीं लगे । और कौन मनुष्य धन पाकर आंखों के रहते हुए भी अन्धा नहीं हुआ ? सुरलोक पृथ्वी मंडल तथा नाग लोक में ऐसा कौन है जिसको मोह ने न बांधा हो । गोसाईं जी कहते हैं कि इनसे तो वही बच सकता है जिसको रक्षा कमलनयन श्री राम करते हों ।

१- दोहावली : दो० सं० ३०६ ।
२- कवितावली : पद सं० ११७ ।

कवितावली में एक स्थल पर गोस्वामी जी कहते हैं :-

एक तौ कराल कलिकाल सूल-मूलता में,

कोढ़ में की खाज-सी सनीचरी है मीन की ।

बेद-धर्म दूरि गये, भूमि चोर भूप भये,

साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीन की ।।

दूसरे को दूसरो न द्वार, राम दया धाम,

रावरीयै गतिबल बिभव बिहीन की ।।

लागै गी पैलाज वा बिराजमान बिरुदहि,

महाराज! आजु जौं न देत दादि दीन की ।।[1]

यह संसार स्वयं ही दु:खरूप है, उसमें भी कलि का आगमन, सम्पूर्ण दु:खों का मूल भूत यह भयंकर कलिकाल और उसमें भी कोढ़ में खाज के समान मीन राशि पर शनिश्चर की स्थिति है । इसी से इस समय वेद धर्म भी लुप्त हो गये हैं । लुटेरे ही राजा हो गये तथा बढ़े हुए पाप की गति देखकर साधुजन दु:खी हैं । इस प्रकार जगह जगह पर मानस रोगों का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास कलियुग के जीवों में विशेष कर मानव मात्र में काम, क्रोध, लोभ आदि का प्राबल्य राम के विमुख होने पर ही होगा तथा जीव इन अन्यान्य रोगों से पीड़ित होने पर ही होगा ।

बार-बार जीवन और मृत्यु का दु:ख भोगता रहेगा जैसा कि जगतगुरु आदि शंकराचार्य एक स्थल पर कहते हैं :-

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनं ।

इह संसारे खलु दुस्तारे कृपया पारे पाहि मुरारे ।।

इन व्याधियों से बचने के लिये तो परमात्मा की कृपा ही सफल एवं सुगम मार्ग है अन्यथा कोई औषधि नहीं है । राम की लेशमात्र कृपा से ही

१- कवितावली : पद सं० १७७ ।

भव के बन्धन रोग नष्ट हो सकते हैं। सांसारिक कष्टों से पूर्णब्रह्म ही मुक्ति दिला सकते हैं या उनके दास जैसा कि हनुमान चालीसा में भी गोस्वामी जी कहते हैं :-

संकट से हनुमान छुड़ावें, मन क्रम वचन ध्यान जो लावें ।।
संकट कटै मिटै सब पीरा, जो सुमिरै हनुमत बलबीरा ।।[१]

इस प्रकार दु:खों का समूह जिस संसार को अपना घर बना लिया है। अनेक प्रकार की आधि व्याधि यत्र-तत्र- सर्वत्र है वहां संयमनियम का ध्यान रखते हुए परमात्म विश्वास ही सारतत्व है तथा संसार विषय बेलि के सदृश है उसके नाश का सरलतम उपाय है ।

उक्त ग्रंथों के अध्ययन-मनन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी द्वारा रचित ये पद, मानस में वर्णित मानस रोगों के संक्षिप्त वर्णन को व्याख्या में सहायक होंगे । मानसिक रोगों की निवृत्ति में सहायक भक्ति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा भी ये प्रदान करते हैं ।

१- गोस्वामी तुलसीदासकृत : हनुमान चालीसा ।

पंचम अध्याय

मानसरोगों की चिकित्सा :—

रामचरितमानस में वर्णित मानस रोगों की विस्तृत व्याख्या पिछले अध्यायों में की जा चुकी है। इनके अध्ययन से गोस्वामी जी की मनोविज्ञान के क्षेत्र में गहरी पैठ का अनुमान होता है। जितनी कुशलतापूर्वक उन्होंने विभिन्न मानसरोगों की व्याख्या की है उससे भी अधिक उपयोगी उनके द्वारा प्रस्तुत मानस रोगों की चिकित्सा योजना है।

आयुर्वेद में चिकित्सा को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। ये हैं - दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय तथा सत्वावजय। जिस चिकित्सा में मंत्र, औषधि, मणि, मंगल, बलि, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपात, तथा गमन आदि उपादानों का प्रयोग किया जाता है उसे दैवव्यपाश्रय चिकित्सा कहते हैं। युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा में आहार, औषधि आदि द्रव्यों का योजनाबद्ध रूप में प्रयोग किया जाता है जिसके द्वारा मन को अहित अर्थों की ओर जाने से रोका जाता है और उसे नियमित एवं नियंत्रित किया जाता है उसे सत्वावजय चिकित्सा कहते हैं।[1]

१- चरक : सूत्रस्थान ११।५४ ।

मानस रोगों की चिकित्सा में दैवव्यपाश्रय एवं सत्वावजय चिकित्सा विधियों का विशेष महत्व है। दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का आदि स्रोत अथर्ववेद है। अथर्ववेद से ही यह आयुर्वेद में आयी।

शरीर पर मणियों को धारण करने की प्रथा वैदिक काल से है। वेदों में वर्णित ये मणियां विभिन्न प्रकार के काष्ठों से निर्मित होती थीं। आयुर्वेद में ये रत्नों कोवाचक हैं। इन्हें धारण करने से ग्रह सम्बन्धी दोष दूर होते हैं। मन्त्र उन शब्दों या वाक्यों को कहते हैं जिनका जप देवताओं की प्रसन्नता, अरिष्ट, निवारण अथवा कामनाओं की सिद्धि के लिए किया जाता है। मंगल से तात्पर्य मांगलिक पाठों या क्रियाओं से है। बलि और उपहार देवताओं तथा ग्रहों को दी जानेवाली भेंट को कहते हैं। व्रत, उपवास और प्रायश्चित का भी मन के शोधन में उपयोग किया जाता है।

प्रायश्चित द्वारा मन की शुद्धि होती है। यम पांच माने गये हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह। नियम भी पांच बतलाये गये हैं - शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान। अनुपयुक्त तथा प्रतिकूल संवेगों से विचारों, भावों तथा अविद्या आदि क्लेशों से मन की रक्षा करना आभ्यन्तरिक शौच कहलाता है। सामर्थ्य के अनुसार किये गये प्रयत्न अथवा कर्तव्याकर्तव्य के पालन के पश्चात् जो भी फल मिले अथवा जिस अवस्था में भी रहना पड़े उसी में प्रसन्न चित्त बने रहना तथा किसी प्रकार की अनावश्यक तृष्णा या कामना के वशीभूत न होना सन्तोष कहलाता है। तप के अन्तर्गत शरीर, प्राण, इन्द्रिय तथा मन को उचित रीति से वश में रखते हैं। अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक मान्यताओं के अनुरूप आचरण को उन्नत तथा वृत्तियों को उत्कृष्ट बनाने वाले साहित्य का पठन पाठन स्वाध्याय है। ईश्वर की भक्ति, उसकी शरण में जाना तथा फल सहित अपने समस्त कर्मों को उसे समर्पित करना ईश्वर प्रणिधान।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि रामचरितमानस में उपर्युक्त दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के विभिन्न उपादानों का मानस रोगों की चिकित्सा का मुख्य तत्व माना गया है। गणेश, हनुमान आदि को प्रार्थना मानसिक शान्ति और आत्मकल्याणके लिए की गयी है। राम के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण, उनकी शरण में जाना और उनकी भक्ति को सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा स्वीकार किया गया है। यम, नियम और सदवृत पालन को आत्मकल्याण, आध्यात्म एवं मानसिक सुख शान्ति की प्राप्ति का मुख्य साधन माना गया है।

सत्वावजय चिकित्सा का प्रयोग मुख्य रूप से मानसिक रोगों के उपचारार्थ किया जाता है। मानसरोग ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि से शान्त होते हैं। ज्ञान, विज्ञान, आदि सत्वावजय चिकित्सा के मुख्य अंग हैं। सत्वावजय शब्दका अर्थ होता है। मन पर विजय प्राप्त करना। इसका मुख्य उद्देश्य है मनको अहित अर्थों की ओर जाने से रोकना।

मानसिक रोगों के उपचार में स्वयं अपने को, अपनी मानसिक प्रक्रियाओं को (आत्मज्ञान) तथा देशकाल आदि वातावरणगत उपकरणों को (विज्ञान) समझने पर विशेषबल दिया है। इसके लिये रोगी की धी, धृति, स्मृति और चित्त कोएकाग्रता को विकसितकरना आवश्यक है। मानसिक प्रक्रियाओं में व्यवस्था आने से प्राणी में अन्तर्दृष्टि का विकास होता है। मानसोपचारशास्त्री उसे मनोबल देता है। इससे रोगी अपने को समर्थ और सुरक्षित अनुभव करने लगता है।

मानसिक स्वास्थ्य के विश्वकोश के अनुसार मानसोपचार के सभी रूप रोगी को ऐक ऐसी अनुभूति प्रदान करने का प्रयास करते हैं, जो उसे अपने भयों, आशंकाओं पर विजय पाने, अपनी नैतिकता को ऊपर उठाने तथा अपनी समस्याओं के समाधान के लिए अधिक सफल उपायोंको खोज निकालने में सहायक होगा।[१]

१ - इंसाइक्लोपीडिया आफ मैंटल हैल्थ : पृ० १७२८।

रामचरितमानस में इसीलिये किमल ज्ञान और विवेक के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। सत्य ज्ञान से ही मोह, क्रोध, लोभ, आदि विकृत संवेगों को छुटकारा मिल सकता है। यह सत्यज्ञान सत्संग और गुरु की कृपा से ही संभव है। चिकित्सा-विज्ञान में जो स्थान मानसोपचारशास्त्री को प्राप्त है, रामचरित मानस में वही महत्त्व गुरु को प्रदान किया गया है।

चरक के अनुसार सत्वावजय चिकित्सा वही व्यक्ति कर सकता है जो मानव-मनोविज्ञान, और मानसोपचारशास्त्र का पूर्ण ज्ञाता हो। ज्ञान विज्ञान से परिपूर्ण हो, जिसका अपनी वाणी पर पूर्ण नियंत्रण हो तथा जो धर्म, अर्थ आदि विषयों का विज्ञ हो, सुहृद हो और रोगी के अनुकूल हो।

सुहृदस्त्वानुकूलास्तं स्वाप्ता धर्मार्थवादिनः।
संयोजयेयुर्विज्ञानधैर्य स्मृति समाधिभिः ॥[१]

गोस्वामी जी ने मानस चिकित्सकका कार्य करने वाला गुरु को माना है। उनके अनुसार गुरु सदव श्रेष्ठ चुनना चाहिये क्योंकि सद्गुरु ही सत्य ज्ञान के साथ साक्षात्कार करा सकता है। अतः सद्गुरु को उन्होंने सर्वोच्च स्थान दिया है।

मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा भी गोस्वामी जी ने प्रस्तुत की है। उनका कथन है, मन स्वस्थ तब मानना चाहिये जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाय, सुमति रूपी क्षुधा नित्य बढ़ती रहे और विषय रूपी दुर्बलता नष्ट हो जाय। निर्मल ज्ञान जब प्राप्त हो जाता है तो राम की भक्ति को प्राप्त करने में व्यक्ति समर्थ हो जाता है।

१- चरक : चिकित्सा : १०-६३।

राम की भक्ति को गोस्वामी जी ने सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। ज्ञानयोग का वर्णन करने के पश्चात् उन्होंने भक्तियोग को प्रस्तुत करते हुये उसके महत्व का प्रतिपादन किया है :-

कहेउँ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई ।
सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ।।
राम भगति चिन्तामनि सुन्दर ।
बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ।।
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई ।
हारहिं सकल सलभ समुदाई ।।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं ।।
बसइ भगति जाके उर माहीं ।।
गरल सुधासम अरि हित होई ।
तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ।।
व्यापहि मानस रोग न भारी ।
जिन्हके बस सब जीव दुखारी ।।[१]

इस राम भक्ति को प्राप्त करने का मुख्य साधन सत्संग को बताया गया है। सत्संग द्वारा सत्य ज्ञान का विकास होता जाता है और मानसिक वृत्तियों एवं संस्कारों का उचित निर्माण भी होता है।

मानस रोगों की उत्पत्ति में ग्रहों को भी कारण माना गया है। सांसारिक प्राणि जीव ग्रहों की प्रतिकूलता के कारण विघ्न बाधाओं से सन्तप्त होकर नाना प्रकार के मानसिक विकारों से घिर जाता है। गणेश को विघ्नहरण कर्ता और प्रथम देव माना गया है। यदि मनुष्य को विघ्नबाधाओं पर विजय प्राप्त करनी हो तो शुद्ध भाव से गणेश की वन्दना करनी चाहिए। गणेश की कृपा से गोस्वामी जी की ऐसी मान्यता है कि मूक

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० २०४, चौ० सं० १-४ ।

मूक व्यक्ति मुखर हो जाता है, पंगु अत्यन्त सुविधापूर्वक भयंकर पहाड़ पर चढ़ जाता है। सामान्य देवता की कृपा से यह गुरुतर कार्य किसी भी स्थिति में संभव नहीं है। कलियुग के प्रभाव से उत्पन्न शारीरिक और मानसिक रोग गणेश की कृपा से सुविधापूर्वक नष्ट हो जाते हैं।

मानसिक रोगों के उन्मूलन में गुरु की कृपा भी कम महत्व-पूर्ण स्थान नहीं रखती। महामोह रूपी अज्ञान को दूर करने में गुरु ही एक मात्र समर्थ है। जैसा कि -

महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर।[२]

उपर्युक्त सोरठा से स्पष्ट होता है कि सांसारिक भोगों से उत्पन्न जो भव रोग है उनको रामचरितमानस रूपी सुन्दर अमृत और चूर्ण दूर करने में सर्वथा सक्षम जान पड़ता है।

राम नाम का स्मरण मनन और चिन्तन से विष अमृतवत् फल देने लगता है। नाम के प्रभाव के ही कारण शिव ने विष जैसे भयंकर पदार्थ को ग्रहण कर लिया। जैसे --

नाम प्रभाउ जानि शिव नीको।
काल कूट फलु दीन्ह अमी को।।[३]

लेशमात्र भी उसका प्रभाव शिव को प्रभावित न कर सका। गोस्वामी जी की ऐसी मान्यता है कि राम का नाम सम्पूर्ण अमंगलों का नाश करनेवाला है। राम के चरित्र रूपी सरोवर में बिना स्नान किए उस श्रम को किसी भी स्थिति में दूर करना संभव नहीं है। सीता के युगल चरणों

१- जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि राशि शुभ गुन सदन।।
मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।।
जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमलदहन।।
- बालकाण्ड सोरठा नं०१-२-

२- उपरिवत् : सो० नं०५। ३- उपरिवत् :दो० सं० १८,चौ० सं०८।

की वन्दना करके कवि यह विश्वास करता है कि निर्मल बुद्धि की प्राप्ति इसी से ही हो सकती है ।

गोस्वामी जी का ऐसा विश्वास है कि जनमन मंजु से विषयी का कल्याण होगा । उसके मन का विकार दूर होगा । तंत्र शास्त्र की रीति से वशीकरण होता है इस चौपाई में मलहरनी में उच्चाटन गुनगनबस करनी में वशीकरण आदि तंत्र प्रणालियों का प्रयोग किया गया है । तुलसी के साहित्य में गुरु को विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । अन्धकार से प्रकाश की ओर उन्मुख करनेवाली शक्ति विशेष का नाम गुरु है । प्रकाश का सामान्य अर्थ न लेकर विशेष अर्थ लेना चाहिए । प्रकाश ज्ञान का और अन्धकार अज्ञान का प्रतीक है ।

गोस्वामी जी की ऐसी मान्यता है कि गुरु के कोमल चरणों के नखरूपी मणिसमूह के प्रकाश का स्मरण करते ही हृदय में ज्ञान का प्रकाश प्रतिभाषित होने लगता है ।[1]-

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती ।
दिव्य दृष्टि हिय होती ।।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः कहकर इसकी पुष्टि गीता भी करती है ।

गुरु के चरणों के नख की ज्योति अज्ञान (मोह) रूपी अन्धकार का नाश करनेवाला है । जिस भक्त के हृदय में नख ज्योति का ध्यान आता है वे अतिशय भाग्यशाली हैं । संक्षेप में कह सकते हैं कि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश का महत्व है उसी प्रकार गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान का भी महत्व है ।

१- रामचरितमानस :बालकाण्ड : सोरठा नं० ५, चौ० सं० ५ ।

उपर्युक्त नखों के प्रकाश से हृदय के ज्ञान और वैराग्य रूपी दोनों नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात के जो दु:ख हैं वे समाप्त हो जाते हैं।-

उघरहिं विमल विलोचन ही के ।
मिटहिं दोष दु:ख भव रजनी के ।।[1]

ज्ञान और वैराग्य रूपी नेत्रों के खुलने के परिणाम स्वरूप श्री रामचरित्र रूपी मणि और माणिक्य जिस खान में गुप्त और प्रत्यक्ष हैं दिखाई पड़ने लगते हैं :-

सूझहिं रामचरित मनिमानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक ।।[2]

तुलसी की दृष्टि में गुरु के चरण रज का विशेष महत्व है । यह पवित्र रज नेत्रों विषयक विविध प्रकार के रोगों को दूर करने वाला है ।

राम कथा, पंडितों के लिये विश्रामरूपा, सब प्राणियों को प्रसन्न करनेवाली और कलियुग के पापों का नाश करनेवाली है । राम कथा कलियुग रूपी सांप के लिए मोरिनी तुल्य है :-

रामकथा कलिपंनग भरनी ।
पुनि विवेक पावक कहु अरनी ।।[3]

विवेक रूपी अग्नि को उत्पन्न करने के लिये अरणी के सदृश है । रामकथा का कलियुग में विशेष महत्व है । अत: इस युग में इसे कामधेनु

१- रामचरितमानस :बालकाण्ड : सोरठा नं० ५, चौ० नं० ४ ।
२- उपरिवत : बालकाण्ड : सोरठा नं० ५, चौ० नं० ४ ।
३- उपरिवत : दो० सं० ३०, चा० सं० ६ ।

के सदृश फलप्रद और संजीवनी जड़ी के समान गुणप्रद एवं जीवनप्रद कहा गया है :-

> रामकथा कलिकामद गाई ।
> सुजन सजीवन मूरि सुहाई ।।[१]

भूमंडल पर वही कथा अमृत की नदी है । यह भय का विनाश करनेवाली और भ्रमरूपी मेंढक को निगल जानेवाली सर्पिणी के समान है ।:-

> सोइ वसुधातल सुधातरंगिनि ।
> भय भंजनि भ्रम भेक भुवंगिनि ।।[२]

सकाम भक्तों के लिये राम कथा को कामधेनु और निष्कामों के लिए संजीवनी मूरि कहा गया है जैसे श्री पार्वती जी ने दुर्गा रूप से देव समाज के कल्याणार्थ असुरों की सेना का नाश किया उसी प्रकार यह कथा साधु समाज के लिये नरक समूह को निर्मूल करती है । संत समाज रूपी क्षीर सागर के लिए राम कथा लक्ष्मी जी के समान है और सारे संसार का भार धारण करने को अचल पृथ्वी के समान है । यह कथा यमराज के गणों के मुख में स्याही लगाने के लिये संसार में यमुना जी के समान है और जीवों को मुक्ति देने के लिये एवं जीवन्मुक्ति दशा प्राप्त करने के लिये मानो काशीपुरी ही है ।

राम की जन्मभूमि अयोध्या सब प्रकार से मनोहर और समस्त सिद्धियों को प्रदान करनेवाली एवं सब मंगलों की खान है । इस कथा के श्रवण करने से काम, मद और दम्भ का नाश हो जाता है । इस कथा का नाम रामचरितमानस है । कानों से इसका श्रवण करते ही विश्राम प्राप्त हो जाता है । मनरूपी अनियन्त्रित हाथी विषय रूपी दावानल में जल रहा है । यदि वह इस सरोवर में अवगाहन करे तो उसे आनन्द की प्राप्ति हो । मुनियों के मन को रुचिकर

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दो० सं० ३०, चौ० सं० ७ ।
२- उपरिवत् : चौ० सं० ८ ।

प्रतीत होनेवाले इस पवित्र राम चरितमानस को श्री शिव जी ने सृजित किया था :-

रचि महेस निज मानस राखा ।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ।।[1]

यह कायिक वाचिक एवं मानसिक दोषों, दु:खों और दरिद्रताओं का नाश करने वाला है और कलियुग के कुत्सित आचरणों तथा पापों का नाश करनेवाला है ।

यदि संतप्त लोगों की मन: स्थिति का निरीक्षण करें तो उनमें मन और बुद्धि के इस अन्तर्द्वन्द्व का दर्शन होगा । मानव मन अभ्यास के अनुकूल प्रिय प्रतीतहोनेवाली वस्तुओं की ओर जाना चाहता है तो बुद्धि जिन्हें श्रेष्ठ समझती है उसे पाने की प्रेरणा प्रदान करती है । इन दो प्रकार के खिंचावों में पूरी तरह वह किसी भी दिशा में अग्रसर नहीं हो पाता भगवद्प्राप्ति के लिये तो यह और भी अपेक्षित है कि हमारी बुद्धि, मन समग्र जीवन एक ही उद्देश्य के लिये प्रयत्नशील हों । आन्तरिक विश्वास से प्रेरितहोकर जहाँ बुद्धि और मन एक ही लक्ष्य भगवद् अवतरण के लिये सचेष्ट हो जाते हैं वहाँ सफलता अवश्यम्भावी है ।

मानव जीवन की अशान्ति के कारण के रूप में गोस्वामी जी ने मानस रोगों का वर्णन किया है । रोगग्रस्त व्यक्ति जैसे सारी भोग सामग्रियों के बीच भी अपने को अशान्ति अनुभव करता है । इसी तरह से जब मन अस्वस्थ होता है तब समस्त वैभव और सुखोपभोग के लौकिक साधन व्यक्ति को संतुष्ट नहीं कर पाते । मानव जिन दुर्गुणों से घिरा रहता है । गोस्वामी जी रोग के रूप में उन्हीं का चित्रण करते हैं ।

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दो० सं० ३४, चौ० सं० ११ ।

आयुर्वेद में रोग की उत्पत्ति का सम्बन्ध त्रिदोष कफ, वात, पित्त, एवं त्रिगुण विशेष रूप से रज एवं तम से माना जाता है। गोस्वामी जी द्वारा वर्णित मानस रोग विषयक विविध औषधियों का वर्णन धर्मशास्त्रों में विस्तृत रूप से किया गया है। इस संदर्भ में एक दोहा इस प्रकार है :-

नेम धर्म आचार जप जोग जग्य ब्रत दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहि हरिजान ।।[१]

औषधियों के रूप में ही शास्त्रों ने इनका वर्णन किया है क्योंकि शास्त्रों का लक्ष्य भी मानवीय दुर्गुणों का समूल उन्मूलन ही है। इसकी दूसरी समस्या का सामना मानस रोग में करना पड़ता है। शारीरिक रोग सामान्य औषधियों द्वारा तो उपचार से शान्त हो जाते हैं किन्तु मानसिक रोगों को नष्ट करने के लिये भक्तिरूपी औषधि का सेवन करना पड़ता है। शारीरिक रोगों में बहुधा एक दो रोग ही एक साथ आक्रमण करते हैं। एक रोग होने पर उसकी चिकित्सा सरल होती है किन्तु मानस रोगों में एक साथ अनेक रोगों का प्रकोप देखा जाता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि ऊपर वर्णित समस्त रोग एक साथ प्रत्येक व्यक्ति के मन में पाये जाते हैं। गोस्वामी जी तो साधिकार कहते हैं कि स्थिति का पता लगाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता वह सुनिश्चित रूप से है ही। यह तो अवसर की बात है कि किस समय कौन सा रोग उमड़ कर सामने आ जाता है। उनका दावा है :-

मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सबकें लखि बिरलेन्ह पाए ।।
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे ।।
जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी ।।[२]

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२१।
२- उपरिवत् : दो० सं० १२१, चौ० सं० २,४,३ ।

औषधि की जटिल समस्या यह है कि अनेक रोगों का एक साथ प्राबल्य होने से औषधि एक रोग को नष्ट करती है वहीं दूसरे रोग को बढ़ानेवाली हो जाती है। उपर्युक्त मत की पुष्टि के लिए रामचरितमानस के वर्तमान ख्यातिलब्ध व्यास राम किंकर उपाध्याय के विचार इस प्रकार हैं :-
दान एक औषधि है, जिसकी महिमा का शास्त्र पुराणों में वर्णन भरा पड़ा है। कहा जाता है कि प्रजापति ब्रह्मा ने देव, दैत्य और मनुष्यों द्वारा आदेश मांगे जाने पर उन्हें द द द का उपदेश दिया था। दैत्य में हिंसा वृत्ति प्रखर होती है, अत: उसके लिये द का अर्थ दया था। देवता भोगपारायण हैं, अत: उनके लिये द में इन्द्रिय दमन का संकेत था और मनुष्य की लोभी प्रवृत्ति पर अंकुश रखने के लिये द के द्वारा दान का उपदेश और आदेश दिया था[१]। यथा-

प्रकट चारि पद धर्म के कलिमहं एक प्रधान।
जेन केन विधि दीन्हें दान करइ कल्यान ।।[२]

दान से ही मनुष्य का कल्याण हर प्रकार से संभव है। यह उदाहरण दान की महत्ता का सूचक होने के साथ साथ यह भी स्पष्ट करता है कि दान से लोभ का विनाश हो जाता है। स्वाभाविक है कि लोभ का परित्याग किए बिना दान देना सम्भव नहीं है। मानसरोग के विनाश की दृष्टि से कह सकते हैं कि दान कफ वृद्धि का उन्मूलक है। एक व्यक्ति की कफ वृद्धि के कारण इस तरह के रोग हो जाते हैं किसी भी समय इसका आक्रमण रोगी को बेचैन बना देता है। लोभ की स्थिति भी ठीक ऐसी ही है। लोभी व्यक्ति अहर्निश धनोपार्जन हेतु उद्विग्न रहता है। क्षणभर के लिए उसे मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त होती, दान देना से लोभ वृत्ति का समन होता है किन्तु अहंकार बढ़ जाता है। अत: पहली समस्या तो यही है कि शास्त्रीय औषधि से एक रोग तो शान्त हो जाता है किन्तु दूसरा रोग अपना प्रभाव अलग दिखाने लगता है।

१- रामकिंकर उपाध्याय : रामचरितमानस में शिवतत्व : पृ० ७२।
२- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १०३ ।

कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि क्या औषधियां एक रोग का भी पूरी तरह विनाश कर सकती हैं। क्या उन्मुक्त हस्त से दान देकर लोभ नामक विकार पर विजय प्राप्त की जा सकती है। जिस समय दान दिया जाता है उस समय अवश्य लोभ वृत्ति दब जाती है किन्तु पुन: दान देने के लिये धन चाहिये। अत: पुन: लोभ उत्पन्न होता है। इस तरह दान लोभ का कभी न समाप्त होनेवाला चक्र प्रारंभ हो जाता है। दान की महत्ता बताने के लिए जिन महत्वपूर्ण फलों का वर्णन किया गया है। वे भी तो दुर्गामी लोभ को ही वृत्ति को बढ़ावा देते हैं। अत: यह स्पष्ट है कि औषधियां क्षणिक शान्ति को छोड़कर और कुछ देने में असमर्थ हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ऐसे चिकित्सक हैं जो भवरोग को दूर करने के लिये आध्यात्मिक औषधि का सहारा लेते हैं। उनका मानस एक ऐसा विशिष्ट रसायन है जो एक साथ समस्त रोगों पर विजय प्राप्त कर सकता है। भगवद् भक्ति का आश्रय ग्रहण करके मानस रोगों से मुक्ति प्राप्त हो सकती है किन्तु उस औषधि का अनुपान सेवन विधि और पथ्य की व्यवस्था तो आचार्य ही बता सकता है। सद्गुरु जो त्रिभुवन के गुरु शिव का ही प्रतिनिधित्व करता है सद्गुरु पर भी महत्वपूर्ण अनुबन्ध यही है कि उसके अन्तर्तत्व को हम स्वीकार करते हैं। अभिप्राय स्पष्ट है कि यदि सद्गुरु में विश्वास स्थापित नहीं कर पायें तो गुरु में शिवभावना नहीं बन पायी है और तब औषधि के प्राप्त होने की सम्भावना नहीं है। संकर भगति बिना नर भगति न पावै मोर' कहें अथवा बिनु विश्वास भगति नहीं तेहि बिनु द्रवहिं न राम के रूप में स्वीकार करें। जहां शिव है वहां शक्ति अवश्यम्भावी है। अत: विश्वास के साथ श्रद्धा का होना आवश्यक है। मानस रोग के प्रसंग में श्रद्धा को अनुपान, दवा के साथ दी जाने वाली वस्तु का रूप दिया गया है जिसके अभाव में औषधि की शक्ति का ठीक उदय नहीं होता :-

सद्गुरु बैद बचन विश्वासा, संयम यह न विषय कै आसा।
रघुपति भगति सजीवनि मूरी, अनूपान श्रद्धा मति पूरी ।।

एहि विधि भलेहि सो रोग नसाहीं, नाहित जतन कोटि नहिं जाहीं ।।

समस्त रोगों का मूल मोह है, उसके नष्ट होने पर सब रोग नष्ट हो जाते हैं। वैद्य, अधिकारी रोगी, संयम, औषधि और अनुपान एकत्रित हो जायें तो रोग निवारण रूपी सिद्धि निश्चित है। जिसके वचन से मोह का उन्मूलन हो वह सद्गुरु है जिस भांति कुशल वैद्य रोगी के रोग को भली-भांति पहचान कर उसकी अवस्था के अनुसार उसकी चिकित्सा का विधान करता है उसी भांति सद्गुरु शिष्य के मानसिक रोगों का तारतम्य समझकर तदनुसार मंत्र ध्यानादि की व्यवस्था करता है।

मानस रोग भी अन्य रोगों की भांति भूलों के ही परिणाम स्वरूप उत्पन्न होते हैं। अपितु सत्य तो यह है कि मानसिक रोग पहले उत्पन्न होते हैं और उन्हीं की प्रतिक्रिया में शरीर भी रुग्ण हो जाता है। मन की भूख प्यास अत्यन्त प्रबल है। सभी इन्द्रियों के माध्यम से वह रस लेकर अपनी भूख प्यास मिटाने की चेष्टा कर रहा है। इन्द्रियाँ थक जाती हैं तो वह निद्रा में स्वप्न लोक का निर्माण कर प्रयास करके वह तृप्ति का प्रयास करता है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुकूल तो स्वर्ग, नरक, और पुनर्जन्म में मन का यही अतिरिक्त कारण है। विषयों के अतिशय उपभोग से शरीर रुग्ण हो जाता है। दूसरी ओर मन की स्थिति और भी निराली है। इच्छित विषय की तीव्र कामना उत्पन्न होते ही काम वात का उदय हो जाता है और उसका परिणाम दो रूपों में दृष्टिगत होता है। इच्छा पूर्ण होने पर लोभ रूप कफ का प्राबल्य और इच्छापूर्ति के अभाव में क्रोध रूप पित्त की प्रबलता। इस तरह त्रिदोष का क्रम सम्पन्न हो जाता है। फिर यही मानसिक क्रोध और लोभ के भाव ही अन्य विकारों के रूप में प्रकट होते हैं। दम्भ, कपट, मान, मद, अहंकार ये सब लोभ शाखा के रोग हैं।

उचित उपचार :-

यदि उचित उपाय का अवलम्बन किया जाय तो मानसिक रोग

अर्थात् आधि का उन्मूलन किया जा सकता है। उपचार द्विविध है। नकारात्मक और भावात्मक। नवरस- विरति, विषय- कुपथ्य, त्याग और पर द्रोह त्याग नकारात्मक हैं, ये संयम है। इनके अतिरिक्त व्याधि मुक्ति के निमित्त, रोगी को आवश्यकता है सद्गुरु रूपी वैद के वचनों में विश्वास की, भक्ति रूपी संजीवनी जड़ी की और श्रद्धा समन्वित बुद्धि रूपी अनुपान की। सत्संग से रोगी का मनोविनोद होता है। गोस्वामी जी ने रोग के निदान और उपचार का उल्लेख करते हुए आधुनिक मनोविश्लेषक से प्रतीत होते हैं। आधि व्याधि की शान्ति तन्निदान- ज्ञान से ही सकता है।

सांसारिक कष्ट और दम्भ के विनाश के लिये, वे समता का उपदेश देते हैं। समता का लक्षण है। अत्यन्त आदर पाने पर हर्ष न होना, निरादर होने पर जल न मरना और हानि-लाभ, सुख-दु:ख, भलाई, बुराई में चित्त को सम रखना। अनुकूल साधन, अनुकूल समय और अभिष्ट सिद्धि की प्राप्ति पर, तीनों कालों में एक रसता का नाम समता है जिसकी प्राप्ति विनय, विरति और विवेक के द्वारा होती है :-

साधन समय सुसिद्धि लहि उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनिउ समय सम ते महि मंगल मूल ।।[१]

सनकादि चारों ऋषियों ने भगवान् राम से समता की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की थी। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गोस्वामी जी स्वार्थ के स्वरूप से पूर्णत: अनभिज्ञ थे। इससे न देवता, न मुनि न मनुष्य मुक्त है : यहाँतक कि माता- पिता भी नहीं। यह पाप और दुराचार के लिये प्रेरणा देता है।

समता परोपकार का अव्यक्त रूप है और वह विनय, विराग तथा विवेक से पुष्ट होती है। ईसाई धर्म और इस्लाम में अपराध को पाप मान

१- दोहावली : दो० सं० ५३६।

लेने की प्रथा प्रचलित है, इससे छिपा हुआ मन का और प्रकट हो जाता है। धर्म निरपेक्ष मनोविश्लेषक भी रोगी के मन को पढ़कर लगभग यही बात करता है। तन्निमित्त वह मोहिनी शक्ति के द्वारा रोगी को निद्रावस्था में ले आता है। उसके स्वप्नों का विवेचन करता है अथवा उन्मुक्त सम्बन्ध के उपाय का अवलंबन करता है। गोस्वामी जी ने विवेक की संस्तुति की है जो निःस्वार्थ और नियमित जीवन से प्राप्य है। इन सबका परिणाम है परोपकार आजकल के मनोवैज्ञानिकों का भी यही मत है कि स्वार्थ सब व्याधियों का स्रोत है। उससे व्यथा और व्यथा से क्रोध उत्पन्न होता है। व्यथित मनुष्य अपने ऊपर क्रोध किया करता है। मानसोद्यान में स्वार्थ अनभिष्ट घास-पात के समान है जिसका उन्मूलन ही श्रेयस्कर है और संसार का अभिशाप वह जेल एवं पागल खानों को भरता है।

गोस्वामी जी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हटकर और गहराई में जाते हैं। वे अति मनोविज्ञान (पर साइकोलाजी) में निमज्जन कर व्याधियों के लिए रामबाण औषधि प्रदान करते हैं। यह भगवद्भक्ति अथवा रामभक्ति। रामभक्ति क्या है ? राम कथा श्रवण राम-स्तुति, तथा राम-नाम जप। जिसके पास ऐसी भक्तिमणि है उसको आधिव्याधि नहीं सताती। वह स्वप्न तक में इनसे तनिक भी आक्रान्त नहीं होता। राम भक्ति संजीवनमूल है, क्योंकि राम के प्रसाद से क्रोध, काम, लोभ, मद, मोह, सब छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

यही है जीवन का लक्ष्य और साधन, किन्तु इसकी कसौटी क्या है कि उक्त योग (नुस्खे) से मनस्वस्थ हो रहा है ? तुलसी दास जी का उत्तर है कि मन को निरोग तब समझना चाहिए जब हृदय में वैराग्य रूपी बल आये। सुबुद्धि रूपी क्षुधा नित्य प्रति बढ़े। विषय और आशा रूपी दुर्बलता घट, जाये तथा रोगी विमल ज्ञान रूपी जल में स्नान कर ले और उसका हृदय रामभक्ति से ओत-प्रोत हो जाय।

सुमति छुधा बाढ़इ नित नई । विषय आस दुर्बलता गई ।
बिमल ज्ञान जल जब सो नहाई । तब रह राम भगति उर छाई ।।[1]

आत्मज्ञान से परमार्थ की प्राप्ति होती है । आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्य:[2] तथा नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:[3] आदि औपनिषद वाक्य आत्मज्ञान पर आग्रह करते हैं । मानसिक चिकित्सा के निमित्त श्री जी० सी० युंग आत्मज्ञान की प्रशंसा करते हैं । मनुष्य अपने विषय में जितना सज्ञान होता जाता है उतना ही विशाल हृदय और उदार-चेता भी । गोस्वामी जी भी इस बात को भलीभांति जानते हैं और उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा भी है कि ज्ञान से आधियों का शमन हो जाता है किन्तु पूर्णत: नहीं ।

गोस्वामी जी ने दो नुस्खे लिखे हैं जिनमें एक मनोविश्लेषणात्मक है, दूसरा अतिमनोवैज्ञानिक । पहला तो कदाचित् विफल भी हो जाय, किन्तु दूसरा नितान्त अचूक है । अभी कहा जा चुका है कि मनोविश्लेषणात्मक योगसमता का है जिसमें तीन विं तत्व हैं अर्थात् विनय, विवेक, विराग । इन तीनों में से पहला तो इन्द्रियों को नियमित मन को संयमित तथा दूसरे के लिए मार्ग प्रस्तुत करता है; दूसरा ज्ञान द्वारा भले बुरे की पहचान और संसार का वास्तविक स्वरूप उपस्थित कर तीसरे के मार्ग को प्रशस्त करता है और तीसरा इच्छा तथा स्वार्थ का नाश करता है । इन तीनों का संयुक्त परिपाक ही समता है, जो परोपकार अथवा लोक संग्रह के और सुख अथवा आनन्द के रूप में आविर्भूत होती है ।

गोस्वामी जी के अनुसार ज्ञान अथवा विवेक तो केवल एक तत्व है । उन्होंने तो समता की संस्तुति की है जिसमें, विनय, विवेक और विराग तीन तत्व होते ही हैं । हैडफील्ड ने पूर्ण आत्मानुभव (कम्प्लीट सैल्फ रियलाइजेशन) की कल्पना की है, जो तुलसीदास के सन्निकट है ।

---

१ - रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२१, चौ०सं०१०,११
२ - बृहदारण्यकोपनिषद् : २।४।५। ३ - मुण्डकोपनिषद् :३।२।४।

परन्तु गोस्वामी जी जानते हैं कि ये त्रिविध विरुद्ध दशाओं में कदाचित् विफल हो जायं अतएव उनका अन्तिम नुस्खा रामभक्ति है, क्योंकि जैसा कि कार्लि जेम्स ने बताया है असीम पर निर्भरता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अनन्त में मिलकर आत्मा स्वयं अपने को असीम और स्वतंत्र अनुभव करने लगता है।[१]

वर्तमानयुग घोर भौतिकवादी है। भौतिकवाद अध्यात्म की उपेक्षा करता है। भौतिकवाद से मुक्ति पाने के लिये संतजन रामचरितमानस में निर्दिष्ट चिकित्सा का परामर्श देते हैं। मानस शूल स्वरूप जो त्रिताप है, उनका उन्मूल है। ताप को दूर करने के लिये शीतल पदार्थ की अपेक्षा होती है।

रामचरितमानस की भक्तिरूपी शीतल पीयूषधारा त्रैतापों का नाश करती है। शीतलता से दाहकता का नष्ट होना स्वाभाविक ही है। भक्ति की अमृत धारा में अवगाहन करके दिग्भ्रान्त जन भी ईश्वरीय अवलम्बन के माध्यम से भवसागर को पार कर जाते हैं।

भवरोगों का अधिकार क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। जन्ममरण का चक्कर भी एक प्रकार का सांसारिक रोग ही है जिसे भवरोग कहा जाता है। संसार में जितनी लौकिक कामनाएं हैं वे किसी न किसी रूप में भवरोगों से जुड़ी हुयी हैं। सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति भौतिक बन्धनों को और अधिक प्रगाढ़ करती है।

रामकृपा नासहिं भव रोगा।[१]
जौं एहि भाँति बनै संयोगा।।

राम की अमोघ कृपा के माध्यम से सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। किन्तु इस प्रकार का सुअवसर प्राप्त होना अत्यन्त सौभाग्य की बात है।

---

१ - रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२१, चौ० सं० ५।

शिव,ब्रह्मा, सनकादिक, नारद आदि भवरोग से मुक्ति पाने के लिये :-

> सबकर मत खगनायक ऐहा ।
> करोय राम पद पंकज नेहा ।।[१]

का उपदेश देते हैं । विभिन्न प्रमाणों द्वारा गोस्वामी जी ने यह बतलाने की चेष्टा की है कि ईश्वर के प्रतिकूल होकर सांसारिक सुखों को नहीं माँगा जा सकता । जैसे --

> श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं ।
> रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ।।[२]

बन्ध्यापुत्र, खरगोसको सींग आदि असम्भव उदाहरणों द्वारा रामभक्ति को विशेष रूप से उजागर करने की चेष्टा की गयी है । भवरोग से मुक्ति भवरोग से विरति होने पर ही सम्भव है । भक्ति भवरोग से मुक्ति दिलाती है । योग भक्त को ईश्वर से जोड़ता है । उपासना के माध्यम से भवरोगों से उत्पन्न कुप्रवृत्तियाँ, कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं । हृदय का मल धुल जाता है । विचार अध्यात्म की रसमयी धारा में अवगाहन करने लगते हैं । मानसकार कर्मलीन होने की शिक्षा देते हैं । अत: इन उद्धरणों से सिद्ध होता है कि ईश्वर के चरणामृत की शीतल धारा से ही भवरोगों की दाहकता को शांत किया जा सकता है । भोग और रोग दोनों भव के आत्मज है । भव के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाने पर भोग और रोग दोनों एक साथ समाप्त हो जाते हैं । यदि रोग का कारण नष्ट हो जाय तो रोग को नष्ट करना और सरल हो जाता है । रोग और भोग दोनों से बचाने के लिये भवभय हरण ईश्वर पादानुराग की अपेक्षा है ।

मानस रोग प्रसंग के अंतिम चरण में गोस्वामी जी ने रोगों को दूर करने के अनेकात्मक उपायों का निर्देश किया है, जैसे नियम एवं धर्म का पालन, उत्तम आचारण, तप ज्ञान यज्ञ, जप, दान, करना इत्यादि । उनका विचार

है कि ये उपचार मानसिक रोगों से सर्वथा मुक्ति नहीं दिलवा सकते । अत: अतएव: सर्वोत्तम उपाय तथा परिणाम श्री राम की भक्ति ही है । उनका कहना है कि यदि संशय नाशक सच्चा श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिल जाय तथा वेद वचन में विश्वास हो और संयम का पालन करते हुये श्रद्धापूर्वक राम के चरणों का आश्रय लिया गया तो ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं । राम की भक्ति के अभाव में भव रोगों का निवारण होना असंभव है :-

कमठ पीठ जामहिं बरु बारा ।
बंध्या सुत बरु काहुहि मारा ।।
तृषा जाइ बरु मृग जलपाना । बरु जामहि सस सीस बिषाना ।।
अंधकार बरु रविहि नसावै । रामविमुख न जीव सुख पावै ।।
हिमते अनल प्रकट बरु होई । विमुख राम सुख पाव न कोई ।।
मसकहि करहिं विरचिं प्रभु अजहिं मसक ते हीन ।
अस विचारि तजि संसय रामहिं भजहिं प्रवीन ।।
बारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरिभजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल ।।[१]

रामभक्ति से रोग किस प्रकार दूर होंगे इसे स्पष्ट करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि राम की भक्ति से धोरे धोरे विषयों से विराग उत्पन्न होगा तत्पश्चात् सद्बुद्धि बढ़ेगी, शुद्ध ज्ञान की धारा बहेगी और अन्त में सभी मानस रोगों से छुटकारा मिल जायेगा ।

गोस्वामी जी द्वारा बतायी गयी चिकित्सा अर्थात् रामभक्ति का जब मूल्यांकन करते हैं तो हमारा ध्यान सर्वप्रथम योग प्रक्रियाओं की ओर जाता है । मन का संतुलन करना और मानस विकृतियों का निवारण करना योग के मुख्य विषय है । उनके द्वारा भक्ति चिकित्सा योग की चिरप्रतिष्ठित पद्धति भक्तियोग ही है ।

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२२ ।

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः,[1] अभ्यास वैराग्याभ्यांतन्निरोधः,[2] ईश्वर प्रणिधानाद वा,[3] तत्परं पुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्[4] ।

योगी पतंजलि ने भी मानसिक स्वस्थता को दृष्टिगत करते हुए योग के ही महत्व का विशेष प्रतिपादन किया । सूत्रकार का कहना है कि चित्त वृत्तियों का निरोध, सतत अभ्यास के द्वारा निरंतर वैराग्य भावना का जब हृदय से चिन्तन मनन होगा तभी जाकर चित्तवृत्तियोंका पूर्ण रूपेण निरोध हो सकता है ।

इस वैराग्य प्राप्ति के लिये मानव जब चारों ओर से जीवन के आशा जनित सम्बन्धों को स्वप्नवत् समझ कर उनसे व्यवहार करता है और दिनोत्तर उसका प्रेम परमात्मा के प्रतिबढ़ने लगता है; आत्मसमर्पण की भावना चरमोत्कर्ष की स्थिति में जब पहुंच जाती है तब अनायास ही चित्त की वृत्तियोंका निरोध हो जाता है और अशान्त मन शान्ति की खोज करते करते उस स्थल पर पहुंच जाता है जहां पर पूर्ण विश्रान्ति उसे प्राप्त हो जाती है । अतः मैं इस संबंध निर्दिष्ट करना चाहता हूं कि मानसिक रोगों जैसे काम क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मात्सर्य आदिका पूर्ण शमन जीवन में जब भक्तियोग का पूर्ण विकास हो जाता है तो इसके लिये आवश्यक है, पतंजलि योग के अष्टांग भेदों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का अहर्निश व्यवहृत जीवन सम्पन्न हो ।

हठयोग एवं भक्तियोग में अन्तर केवल इतना ही है कि योग वैयक्तिक भेदों के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों को, विभिन्न देवी-देवताओं की भक्ति का निर्देश करता है । जब कि गोस्वामी जी ने सबके लिये केवल

१- पातंजलियोगसूत्र १।२।
२- उपरिवत् : १।१२।
३- उपरिवत् : १।२३।
४- उपरिवत् : १।१६।

राम की भक्ति ही करने का उपदेश दिया है। जो वैयक्तिक मानसिक भेदों के कारण विभिन्न मात्रा में किसीको शीघ्र तथा किसी को देर से लाभ पहुँचाने वाली चिकित्सा होगी। हठयोग के अन्तर्गत शारीरिक और मानसिक वृत्तियों का शमन पूर्ण रूपेण हो जाता है पर भक्ति योग हठयोग की अपेक्षाकृत उत्कृष्ट माना जाता है।

दैव व्यपाश्रय चिकित्सा के अन्तर्गत वर्णित, मणि, मंत्र,तंत्र, जप, उपवास, यज्ञ, संयम, ज्ञान, संकल्प, औषधि सेवन प्रायश्चित,दान, भक्ति, पूजा, मंगल कर्म इत्यादि में तुलसीदास जी द्वारा निरूपित आठ सामान्य उपचार ही नहीं उनकी विशिष्ट उपचार पद्धति- पूजा एवं भक्ति भी सम्मिलित है।

जब हम पाश्चात्य मनश्चिकित्सा - विज्ञान में वर्णित चिकित्सा पद्धतियों की विस्तृत सूची देखते हैं तो धर्म चिकित्सा आदि ऐसी पुरानी चिकित्साएं भी दृष्टिगत होती है, जो भक्ति एवं पूजा- उपचार को ही दूसरे नाम से अभिहित करती है। अत: गोस्वामी जी द्वारा निर्दिष्ट भक्ति चिकित्साका मूल्यांकन योग, आयुर्वेद और पाश्चात्य मनश्चिकित्सा पद्धतियों की तुलना में की जा सकती है।

दोषमानस रोग मनुष्य के सांसारिक कर्मों से उत्पन्न होते हैं। अत: उनका उपचार भी सांसारिक एवं सरल है। किन्तु जात प्रकृतिजन्य विकारों एवं दोषों को दूर करना बड़ा ही दुष्कर है। इस गम्भीरता को गोस्वामी जी ने भलीभांति पहिचाना है और उसके लिये उचित उपचार- रामभक्ति अर्थात भक्तियोग को ही बताया है। मानस रोग मुक्ति का चिह्न है। संसार से उपरति विषयेच्छा से मुक्त और सुमि सुमति तथा सद्‌ज्ञानकी निरंतर वृद्धि होती रहती है।

गोस्वामी जी ने जिन मानस रोगों का वर्णन किया है, वे मनुष्य में पाये जानेवाले जीवनके मूल भूत दोषपूर्ण मनोभाव है। जीवन के

सुख- समृद्धि एवं सब प्रकार के अभ्युदय के लिए इनका नष्टहोना आवश्यक है, अन्यथा ये रोग उग्ररूप धारण कर मनुष्य को सदा के लिये दुःखी बना देते हैं। सर्व प्रजानुरंजक श्री राम के परमभक्त तुलसीदास जी से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे केवल सीमित वर्ग के मानस रोगों का ही विवेचन एवं उपचार बताते। वे सर्वजन हिताय सोचते और कार्य करते हैं।

संकट सोच विमोचन मंगल गेह।
तुलसी राम नाम पर करिय सनेह ।।[1]

अतएव उनके लिये स्वाभाविक है कि वे उन्हीं रोगों का उपचार बताते, जिनसे मनुष्य मात्र पीड़ित रहते हैं। भक्तियोग का आश्रय लेने पर मनुष्य की आधारभूत प्रकृति बदल जाती है। इहलोक और परलोक दोनों ही सुधर जाते हैं और साधक कृतार्थ हो जाता है। इसीलिये तुलसीदास जी ने भक्तियोग को मानस रोग का अमोघ उपचार बतलाया है।

कवनउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भवभय नासा।।[2]
गोस्वामी जी के कहने का आशय यहहै कि न तो बिना विश्वास के कोई सिद्धि ही मिल सकती है और न बिना राम की भक्ति के संसार के भय का नाश ही हो सकताहै। राम की भक्ति से ही पापों का समूह नष्ट हो सकता है और किसी भी उपाय से यह कार्य सम्भव नहीं। जब अतंरंग और बहिरंग निर्मलहो जाता है तो उस समय सभी विकार अपने आप भस्म हो जाते हैं और तब मानव मात्र इस भक्तियोग के द्वारा पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो जाता है। आत्मा परमात्मा स्वरूप हो जाती है।

समस्त मानस रोगों का कारण मोह को बताया गया है और मोहमें पड़ाहुआ प्राणी अन्धा हो जाता है। वह सीधी वस्तु को उल्टे ग्रहण

१- बरवै रामायण : उत्तरकाण्ड : दो० सं० ४७।
२- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० ८६।

करता है। मोह रूपी रावण से अंगद ने यही कहा था रे रावण तुम अन्धे हो और मोह न अन्ध कोन्ह केहि केहि, मोह में पड़ा हुआ प्राणी अन्धा हो जाता है। बीसहुं लोचन अंध वह स्थिर नौका को चलते हुए देखता है। मानस महारोग कानिदान है। इस महारोग का विवरण प्रस्तुत करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि जो केवल अपनी बात कहे और सुने किसी सीधी वस्तु को उल्टा गृहीत करे वह मोह रोग से ग्रसित प्राणी है। इस मोह को दूर करने को औषधि गोस्वामी जी के अनुसार राम की भक्ति ही ह।

महात्माओं के समुदाय में जो उनके द्वारा सत्संग प्राप्त होता है और जिस सत्संग में भगवत्कथा मिलती है। वहां से मोह भाग जाता है। भगवत्कथा रूपी महौषधि का पान करने से मानस महामोह रूपी रोग तत्काल नष्ट हो जाता है। मोह को महात्मा तुलसीदास जी ने दरिद्र भी कहा है। यह दरिद्र मोह राम की भक्ति रूपी सुन्दर चिन्तामणि महाऔषधि का जो पान करता है उसके निकट नहीं जाता क्योंकि मोहके साथ लोभ रूपी बात सहायक होता है। यदि लोभ रूपी वायु चेष्टा भी करे कि परम प्रकाश रूपी चिन्तामणि श्री रामभक्ति को हम बुझा दे तो वह कथमपि समर्थ नहीं हो पाता क्योंकि राम भक्ति चिन्तामणिका परम प्रकाश स्वप्रकाशित है। रामभक्ति चिन्तामणिको पात्र, घृत, बाती आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती, ऐसे स्व प्रकाशित रामभक्ति चिन्तामणि को लोभ रूपी वायु कुछ बिगाड़ नहीं सकती अविद्या का जो अंधकार है वह नष्ट हो जाता है :-

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा ।
लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ।।[१]

क्योंकि महाऔषधि मोह दरिद्र को दूर करने के लिये :-

राम भक्ति चिन्तामणि सुन्दर ।
बसहिं गरुड़ जाके उर अन्तर ।।[२]

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० ११९, चौ० सं०४।

परम प्रकाश रूप दिनराती, जहाँ परम प्रकाशरूप राम की चिन्तामणिभक्ति आ जाती है वहाँ पर प्रबल अविद्यातम मिट जाऐ वहाँ मोह के सहायक कामादि, लोभादि, क्रोधादि मानस रोग नहीं जा सकते ।

खल कामादि निकट नहीं जाहीं ।
बसइ भगति जाके उर माहीं ।।[1]

मोहका रोगी जीव बिनाभक्ति मणि के सुख नहीं प्राप्त कर सकता। मानस रोग इससे अलग रहने पर व्याप्त होता है एवं इनको धारण करने पर व्यापहि मानस रोग न भारी । जिनके बस सब जीव दुखारी ।।

यह मानस रोग जो सबसे महान मोह है उसकी महौषधि है और उसका निदान है यह भारी रोग की औषधि है। जिनसे समस्त मानस रोग उत्पन्न होते हैं उस मोहके निवारण के लिये इसी महौषधि का वर्णन गोस्वामी जी ने किया है । जो सन्तों के सत्संग द्वारा प्राप्त होती है । अथवा मुख्यतस्तु महत्कृपैव भगवत्कृपा लेशाद्वा[2] । मुख्य रूप से यह महान पुरुषों की कृपा से या भगवान के लेशमात्र कृपा से प्राप्त होती है भक्ति प्राप्त करने के दो स्थल हैं। इसे देवर्षि नारद ने बताया है । रामचरितमानस में भी सो बिनु सन्त काहु नहि पाई, और सन्त जब द्रवै दीन दयाल राघव, साधु संगति पाइए । मोह के बाद काम जिसे वात के रूप में वर्णन किया गया है ।

काम :-

यह काम वात रोगी उसका निदान लक्षण यह है कि इस रोग का रोगी काम के बस नाचता है । को जग काम नचाव न जेही । यह काम वश अपनी और नहीं देखता जहाँ इसका काम सिद्ध होता है सब कुछ उसी को मानता है । इसमें व्यक्ति विशेष सामान्य की बात नहीं होती यह रोग किसी को भी हो सकता है । इसमें दशरथ योगीमुनि ब्रह्म लता, जड़, चेतन

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड :दो० सं० ११९, चौ० सं० ६ ।
२- [illegible] : नारद भक्ति दर्शन सूत्र सं० ३८ पृ० सं० ११४

आदि सभी आ जाते हैं। मये काम क्स जोगीस तापस पावरम्हि की को कहै। इस काम के प्रकोप से उनका धैर्य समाप्त हो जाता है, मनसिज का कार्य मनका मन्थन करना है पुन: इन्द्रियां उसके अनुरूप कार्य करती हैं। यह शरीर के सभी अंग में व्याप्त हो जाता है और जीव विवेक संकल्पहीन हो जाता है - जैसा कि महाराज दशरथ को हुआ। दशरथ ने अपनी कामेच्छा पूर्ण करने के लिये कैकेयी को दो वरदान भी दे दिया, इसमेंकामी व्यक्ति बड़ी-बड़ीबातें करता है वह भी दशरथ ने किया और इसकी औषधि श्री राम नाम है क्योंकि राम नाम पापमय पृथ्वी में जो भाव का द्वन्द्व काम है उसके लिये सिद्ध औषधि है। अज्ञान रात्रि को नष्ट करने में सूर्य के समान है क्योंकि राम शब्द में जो प्रथम बीज रकार है वह अग्नि है और अग्निकार्य जलाना है। रकारो अनल: बीज:" यह काम वात इस रकार अनल के द्वारा नष्ट होता है क्योंकि राम के न मिलने के बाद दशरथ इसी काम से समाप्त हो गये यदि राम मिल गये होते तो इनकी मृत्यु न हुयी होती। इस काम वात को समाप्त करनेवाली महाऔषधि श्री राम नाम है।

इस उपर्युक्त औषधि के द्वारा काम नष्ट हो जाता है। शिव ने जो काम को जलाया उसमें यही प्रधान औषधि थी क्योंकि जलाने का काम औषधि का ही है। इसीलिये रकार औषधि को अग्नि के रूप में व्यक्त किया गया है। शिव ने काम को नेत्र द्वारा जिसे तीसरा नेत्र कहा जाता है उसी से जलाया था।

> तब शिव तीसर नयन उघारा।
> देखत काम भयउ जरि छारा।।[१]

तीसरे नेत्र को अग्नि नेत्र भी कहा जाता है क्योंकि नेत्र का देवता सूर्य माना जाता है और सूर्य अग्नि प्रधान है। इसे ज्ञान नेत्र भी कहा जाता है जिसके खुल जाने पर समस्त अज्ञान रूपी तिमिर नष्टहो जाताहै। गीता में ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं कहा गया है। ज्ञान अग्नि के द्वारा समस्त

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दो० सं० ८६, दो० सं०६ ।

कर्म दग्ध हो जाते हैं। अतएव काम को नष्ट करने के लिये श्री रामनाम महान औषधि का रकार बीज उपयुक्त है। यही इस रोग की औषधि एवं निदान है।

लोभ :-

इस रोग का रोगी बार-बार लोभ वश अपनी बात कहता है। सीतास्वयंवर में आये हुये राजा लोभवश बारबार अपनी ही बात कहते हैं। अपनी मर्यादा की तरफ ध्यान नहीं देते जैसे कफ का रोगी बार बार स्वभावतः कफ को बाहर निकालता है और कफ की मात्रा में कमी नहीं होती वैसे ही लोभी व्यक्ति लोभवश अपनी बात कहता है पर उसकी लोभ सम्बन्धी बातें कम नहीं होती बढ़ती ही जाती हैं। लोभ का रोगी कीर्ति से वंचित रहता है क्योंकि प्रत्येक स्थल पर अपकीर्ति ही पाता है। लोभी लोलुप कल कीरति चहई।[1]

यह इससे सर्वदा वंचित रहता है क्योंकि सीता स्वयंवर में आए हुए राजा लोभवश यह कहते थे कि किसी भी प्रकार सीता को पाना है यद्यपि उनमें शक्ति नहीं है। श्रीराम के धनुष तोड़ने के पश्चात् भी इनका लोभ कम नहीं हुआ क्योंकि यह व्यक्ति क्रूर, मूढ़ और मन के भूठे क्रोध का प्रदर्शन करनेवाले होते हैं। यह इनका निदान है इनको भूठा प्रदर्शन करना बहुत अधिक आता है। सीता स्वयंवर में श्री राम के धनुष तोड़ने के पश्चात् ये लोग लोभवश कैसा भूठा गाल बजाते हैं। उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँतहँ गाल बजावन लागे।[2] और कहने लगे कि लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ।

१- रामचरितमानस :बालकाण्ड : दो० सं० २६६, चौ० सं० ३।

२- उपरिवत् : दो० सं० २६५, चौ० सं० ३।

ये सब लोभवश जोवत इमहिं कुंवर को बरई । यह लोभ के वश बराबर अपने रोग को कफ के रूप में वर्णित मानते हैं । ये कीर्ति विहीन हैं जो कफ लोभ है उसे मच्छर भी कहा गया है :-

तब लगि हृदय बसत खल नाना ।
लोभ मोह मच्छर मदमाना ।।[१]

लोभी का सबसे प्रधान निदान यह हैकि वह विरति की बात नहीं सुनना चाहता" अति लोभी सन विरति बखानी लोभी के सामने वैराग्य कीबातें व्यर्थ हैं । इसकी औषधि गोस्वामी जी ने बताया हैकि उपदेश है गुरु उपदेश देनेवाला यदि व्यक्ति हो तो कफ लोभ में कल्याण हो सकता है क्योंकि लोभी व्यक्ति जो पाना चाहता है उसके प्रति वह सिवाय पाने के और कुछ नहीं सोचता । वस्तु पात्र काज्ञान उसे नहीं होता इसलिये अप्राप्य वस्तु में भीवह लोभवश मूठा संकल्प लिये लगा रहता है पर उसे यदि उपदेश रूपी औषधि मिल जाय तो उसके रोग का समन हो सकता है क्योंकि उसे यह ज्ञान हो जायेगा कि इस वस्तु को प्राप्तकरने योग्य हम है या नहीं । लोलुप राजाओं के समीप बैठे हुए कुछ साधु स्वभाव के भी राजा उपस्थित थे वे सब इन लोभियों को देखकर जो लोलुप थे औषधि दिया । साधु भूप बोले पुनि बानी । राजसमाजहिं लाज लजानी ।बल प्रताप बीरता बड़ाई । नाक पिनाकहिं संग सिधाई ।। सोइ सूरता की अब कहुं पायी । असि बुधि तव विधि मुंह मसि लाई ।। यही थी लोभी मानस कफ के रोगी की औषधि ।

क्रोध :-

काम, वात, कफ लोभ के पश्चात क्रोध रूपी पित्त का वर्णन प्रस्तुत किया गया है यह क्रोध रूपी पित्त सदैव व्यक्ति के हृदयस्थ हो ज्वलित करता रहता है । यह मानस रोग रूपी क्रोध का निदान है सदैव क्रोधी व्यक्ति को छाती जलती रहती है । यह रोग स्वयं को प्रज्वलित करता

१- रामचरितमानस : सुन्दरकाण्ड : दो० सं० ४६ ।

हुआ पाया गया है । क्रोधी व्यक्ति का वाक्य कठोर होता है इसको चाण्डाल भी कहा गया है । मनुष्य को चाण्डाल और नारी को चण्डी कहा गया है । ये दोनों क्रोध की अधिष्ठात्री हैं । क्रोध पित्त का रोगी केवल अपनी बात कहता है और दूसरे को अपने क्रोधबल से पराजित करना चाहता है । यह सब मोह का ही परिवार है । क्रोध को पाप का मूल भी कहा गया है । क्रोध पाप का मूल इसमें मनुष्य बहुत प्रकार से अनुचित कार्यों को कर जाता है । इस संबंध में विनय पत्रिका में " क्रोध पापिष्ठ बिबुधान्त कारी "[१] कहा गया है । यह मोह का ही परिवार है जिसे मोह की दृष्टि में राक्षस कहा गया है । इसके परिवार क्रोध को महापापी देवान्तक कहते हैं । इसमें दया नहीं होती । अपने पक्ष को सदैव सबल मानता है ।

पाप में इसकी प्रबल प्रवृत्ति होती है । हिंसा करना इसका सरल स्वभाव है । यह सर्वदा कटु वाणी का प्रयोग करता है । यह क्रोध मानसरोग का जिसे पित्त कहा गया है अवसर पाकर सभी लोगों में प्रवेश करता है । परशुराम को महान् क्रोधी कहा गया है । इनका क्रोध अत्यन्त उग्र है । इनके क्रोध से समस्त प्राणी त्रस्त होते हैं । और क्रोध को जो भोजन चाहिए उसे अपनी तरफ से अर्पित करते हैं ।

> पितु समेत कहि कहि निज नामा ।
> लगे करन सब दण्ड प्रनामा ।।[२]

पित्त जिसे क्रोध कहा गया है उसके नेत्र अत्यन्त ही उग्र होते हैं । ऐसा व्यक्ति जिसकी तरफ देख लेता है उसके देखने मात्र से मानव भयभीत हो जाता है । यह सबल अपने वाक्य में कठोर शब्दों का क्रूर वाक्यों का प्रयोग करता है । इसे भगवद्कथा अच्छी नहीं लगती, ऐसे व्यक्ति के साथ मन्द बोलने व्यक्ति सदा पराजित रहता है । इसे अपने क्रोध बल का महान् अभिमान होता है । इसके प्रश्न का उत्तर देनेवाला

१- विनयपत्रिका : पद सं० ५८। २- रामचरितमानस:बाल०दो०सं०३०१,चौ०सं०१।

व्यक्ति कटु शब्दों का प्रयोग करनेवालाहोनाचाहिये । जैसे परशुराम के समक्ष राम ने नम्र एवं विनयावनत शब्दों का प्रयोग किया । राम ने कहा नाथ शिव धनुष को तोड़नेवाला कोई आपका सेवक ही ठहर सकताहै । पर यह शब्द ठीक परशुराम के विपरीत लगे और उन्होंने तत्काल उत्तर दिया कि शिव धनुष तोड़नेवाला व्यक्ति मेरादास नहीं बल्कि मेरा शत्रु है । ऐसी शत्रु को शिघ्रतापूर्वक समाज से विलग कर दो नहीं तो एक के कारण सभी राजा लोग मारे जावोगे । इस पर लक्ष्मण जी ने जब कठोर वाक्यों का प्रयोग किया उस समय इनका क्रोध और बढ़ गया । क्रोध पितका समन गोस्वामी जी बताते हैं कि इस रोग को पूर्ण बढ़ाकर पुन: औषधि दी जाती है । जब यह अमर्यादित वाक्योंका प्रयोग करना शुरु कर देता है उस समय इसका क्रोध अपनी सीमा तक पहुंच जाता है । हाथ में हत्या करनेके लिये जब यहकठोर शस्त्र को धारण करता है । उसी समय इनको भगवान् के यश कीर्ति गुण शक्तिरूपी औषधि को दियाजाता है ।

जब हाथमें कुठार लेकर लक्ष्मणको मारने के लिये परशुराम दौड़े उस समय समस्त सभासद हाय- हाय पुकारने लगे । ठीक ऐसे ही समय में जिस समय क्रोध रूपी अग्नि भृगुवर उत्पन्न हुयी उस समय उसे और बढ़ाने के लिये लक्ष्मण ने अपने उत्तर रूपी आहुति औषधि को प्रदान किया । रोग को बढ़ाकर शान्त किया जाता है । यह गोस्वामी जी का अपना अभिमत है ।

जब लखन आहुत सरिस, भृगुवर कोप कृशानु, ऐसी स्थिति थी उसी समय उसरोग को समाप्त करने के लिये जल के समान शीतल वाक्यों का अर्थात् औषधि का प्रयोग श्रीराम ने किया । रोगी ने यह स्वयंस्वीकार किया कि मुझे कुछ दृष्टिगत हो रहाहै ।

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने ।[1] परन्तु लक्ष्मण ने तत्काल एक आहुति परशुराम के क्रोध रूपी पित्त जो छाती जलानेवाला है जिसकी अग्नि से परशुराम जल रहे थे आहुति दे दिया । हसत देखि नख सिख रिस ब्यापी ।[2]

क्रोधी पित्त के रोगी का मन मलीन होता है । जब वह अपने को निर्बल मानता है उस समय उसे क्रोध, पित्त जो सदैव छाती जलाने वाला है उससे त्राण मिल जाता है । क्रोध का बढ़ना और घटना यह उस औषधि का ही प्रबल प्रभाव दिखायी पड़ता है । जब वह पराजित हो जाता है अपने से बलवानका ज्ञान प्राप्त हो जाता है । गोस्वामी जी कहते हैं क्रोध, पित्त के रोगीका लक्षण वाणीकर्मद्वारा जाना जाता है और इसकी औषधि, राम के ऐश्वर्य का गुणगान है । निशम्य कर्माणि गुणानुतुल्यानि जिसके कर्मगुण और किसी में नहीं पाये जाते वह केवल उन्हीं में हैं ऐसे प्रभु के ऐश्वर्य को क्रोधरूपी पित्त जो मानस रोग के अन्तर्गत है उसके लिये यही पुनीत औषधि है ।

जब राम के प्रभाव को परशुराम ने जान लिया इनका शरीर क्रोध से जल रहा था शान्त हो गया । इनकोहृदय ज्वाला शीतल हो गयी, प्रभु का ऐश्वर्य एवं उनकी शक्ति बल अद्वितीय है । इनके समान कौन है । साधारण जीव की क्या हिम्मत । जब राम के प्रभावको परशुराम ने जान लिया उस समय उनका क्रोध जो मानस रोगके अन्तर्गत है जिसे पित्त के रूप में वर्णित किया गया है वह शान्त हो गया है । जाना राम प्रभाउ तब पुलकि प्रफुल्लित गात । जोरि पानि बोले बचन हृदय न प्रेम समात ।[3]

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दो० सं० २७६, चौ० नं० ५ ।
२- उपरिवत् : चौ०सं० ६ ।
३- उपरिवत् : दो० सं० २८४ ।

सन्निपात :-

काम, क्रोध, लोभ, बात, पित्त, कफ, इन तीनों का अभी तक अलग- अलग वर्णन किया गया है पर जब ये तीनों एक साथ मिल जाते हैं पुन: सन्निपात रोग प्रादुर्भूत होता है। काम, बात, कफ, लोभ, अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। प्रीति करहि जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्निपात दु:खदायी।[१]

यह सन्निपात रोग तीनों के प्रीति से होता है। इसमें भी भेद है यह सन्त महात्मा, ऋषि, ज्ञानी, राक्षस दैत्य, दानव, गन्धर्वादि को भी प्राय: हो जाता है जो ऋषि महात्माओं को होता है उसे गुणकृत सन्निपात कहते हैं जो राक्षसादि को होता है उस सन्निपात को अवगुण कृत सन्निपात कहते हैं। गुणकृत एवं अवगुणकृत सन्निपात का पूर्व में वर्णन किया गया है।[२]

अब इस रोग का लक्षण और औषधि क्या है ? गोस्वामी जी इसके बारे में अपना विचार प्रकट करते हैं। गुणकृत सन्निपात के अन्तर्गत देवर्षि नारद हैं। इनको अपने गुण का मान और मद हो गया है। गुणकृत सन्निपात नहीं केही। कोउ न मानमद तजेउ निबेही।[३] इन्हें कामादि विषयों पर अपनी तपस्या द्वारा अधिकार प्राप्त हो जाने के पश्चात् मद हो गया और सर्वत्र इन्होंने स्वयं से उसका प्रचार किया। इनमें मान और मद दोनों हो गया। क्योंकि प्रचार करने का उद्देश्य ही यह था कि मेरा मान हो। मैंने काम को जीत लिया यह मद है और ऐसा ही हो जाना सन्निपात रोग का लक्षण बताया गया है।

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२०, चौ० सं० १८,१६।
२- द्रष्टव्य : प्रस्तुत शोधप्रबंध का चतुर्थ अध्याय : शोधार्थी।
३- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० ७०, चौ० सं०१।

सन्निपात का रोगी भागता है। कवाक्यों का प्रयोग करता है वह सभी बातें नारद में पायी जाती हैं। इन तीनों के होने का कारण मोह भी बताया गया है, क्योंकि उन्होंने जब विष्णु से अपने काम जीतने की बात कही थी। तो विष्णु ने तत्काल इनसे कहा था कि केवल काम जीतने की बात आप करते हैं। मैं तो यह जानता हूं कि तुम्हारे स्मरण से मोह, मद, मान आदि नष्ट हो जाते हैं। पर देवर्षि नारद काम जीतने के अभिमान का परित्याग नहीं कर सके। परिणाम यह हुआ कि विश्वमोहिनी के हाथ का अवलोकन करते ही काम दमन के स्थान में कामेच्छा जागृत हो गयी। विश्व-मोहिनी को पाने का लोभ उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप पुन: ये वहीं आये जहां पर अपने काम को जीतने की बात की थी और विष्णु से अपनी इच्छा प्रकट किया। अवयोरे घोरे सन्निपात रोग अपना लक्षण दिखायी पड़ने लगा।

सन्निपात का रोगी यह सोच पाता कि उसमें मेरा हित है तथा अहित। ऐसे में नारद वैद्य राजविष्णु से उस रोग बढ़ाने की औषधि माग रहे थे क्योंकि सन्निपात का रोगी यदि मिष्ठान का सेवन करता है तो निश्चय ही सन्निपात बढ़ जायेगा पर वैद्य कुशल था। इनके मंगल के लिये उचित औषधि का प्रयोग किया और कहा भी :-

कुपथ माग रुज व्याकुल रोगी।
वैद्य न देहि सुनहु मुनि जोगी ।।[१]

वैद्य ने औषधि तो दिया पर रोगी औषधि पाने के बाद भी उससे अज्ञात रहा। परिणाम स्वरूप काम, इच्छा के लोभ से अभिभूत उनकी शारीरिक स्थिति बिगड़ गयी। लोग देखकर हंसने लगे क्योंकि इनमें अकुलाहट पैदा हुई, पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दशा हरगन मुसकाहीं ।।

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दो० सं० १६०, चौ० सं० १।

अब सन्निपात जो मानस रोग के अन्तर्गत त्रिदोषों के संयुक्त होने पर उत्पन्न होता है। वह गुणाकृत सन्निपात देवर्षि के पार्थिव बाह्य शरीर पर अपना लक्षण दिखाने लगा। यह काम है पाने की इच्छा लोभ है। परिणाम स्वरूप इन दोनों का संयोग बैठ गया जब इनके उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई तब पुनः देवर्षि में क्रोध का संचार हुआ। अब इन्हें उचित अनुचित का ज्ञान नहीं रह गया। इनके ओष्ठ फड़कने लगे। हृदय में क्रोध पैदा हो गया। फरकत अधर कोप मन माहीं और इस गुणाकृत सन्निपात के निदान में एक लक्षण और है। इस रोग का रोगी अपने वाक्य पर ध्यान नहीं देता। सदा असम्भव बात इसके मुख से निकलती रहती है :-

देहौं साप कि मरिहौं जाई।
जगत मोरि उपहास कराई ॥[1]

यह गुणाकृत सन्निपात है इसलिये इसमें मान मदकी इच्छा सदैव बनी रहती है। वह नारद में स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। क्योंकि इस रोग का श्रीगणेश मान मद से होता है। पुनः काम, क्रोध, लोभ, मद इत्यादि आता है। यह तो रोगी का निदान है और इसकी औषधि हृदय शान्ति के लिये शंकर के सत नाम का जप आवश्यक है। नारद को अपने रूप की तरफ देखने के पश्चात् वास्तविकता तो आ गयी पर हृदय में सन्तोष नहीं हुआ। पुनि जल दीख रूप निज पावा तदपि हृदय सन्तोष न आवा[2]। हृदय सन्तोषके लिये शिव जीका सतनाम जप ही श्रेयस्कर है।

जिस प्रकार गुणाकृत सन्निपात का निदान औषधि से युक्त पायी गयी है उसी प्रकार अगुणाकृत सन्निपात भी इस रोग के अन्तर्गत दूसरा स्वरूप है। इसका रूप रावण है क्योंकि मोह दशमौलि साक्षात् यह मोह है और मोह के द्वारा ही यह रोग उत्पन्न होता है। उसकी अपनी लौकिक वस्तुओं पर बहुत ~~अभिमान~~ अभिमान है। इसलिये इसको दसमुख बताया

१- रामचरितमानस : बालकाण्ड : दो० सं० १३५, चौ० सं० ३।
२- उपरिवत् : चौ० सं० १।

गया है। यदशमुख[1] सुख सम्पत्ति सुत सैन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई। इसे अपने सुख सम्पत्ति पर सुत पर सैना पर सहायक लोगों पर, विजय पाता रहा, उस पर अर्थात् जयपर अपने प्रताप पर, बल पर बुद्धि पर और बड़ाई पर जो रावण के दशमस्तक थे और यह उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे थे।

अवगुणाकृत सन्निपातका रोगी लौकिक वस्तुओं में ही सब कुछ देखता है और उसे किसी पर भरोसा नहीं होता उसमें भी क्रोध, काम, लोभ, यह तीनों प्रधान होते हैं। यह इतना लोभी था कि अपनेभाई कुबेरतक के सुख को नहीं देख पाया उन पर भी चढ़ाई कर दिया और उनका प्रधान विमान जो पुष्पक था उसे छीन लिया : एक बार कुबेर पहं धावा। पुष्पक जान छीन लै आवा। क्रोध तो इसे इतना था कि अंगद जी को क्रोधावेश में रेकपि अधम मरन अब चहहिं। छोटे बदन बात बड़ि कहहीं। कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाके बल प्रताप बुधि तेज न ताके।।

> अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनवास।
> सो दुख अरु युवती बिरह पुनिनिशिदिन मम त्रास।।
> जिन्हके बल कर गर्व तोहि, ऐसे मनुज अनेक।
> खांहि निशाचर दिवस निशि, मूढ़ समुझि तजि टेक।।[2]

यह सब वाक्य वह मानस रोग के अन्तर्गत जिसे अवगुण कृत सन्निपात कहा गय[illegible] बोल रहा था। यह सब बोलने के पहले उसकी शारीरिक [illegible] अधिक खराब हो गयी थी। वह अपने अधर को दशन द्वारा दबा[illegible] दोनों हाथ मीज रहा था और माथे को घर्षण कर रहा [illegible] पूर्णतयाकाम, क्रोध, लोभ, व्याप्त हो गये थे। सन्निपातका लक्षणप्रत्यक्ष दीखायी पड़ रहा था। उसमें अधर दशन दसि मीजत माथा, इस प्रकार का कुत्व दृष्टिगत हो रहा था।

१- रामचरितमानस :(बालकाण्ड)१ लंकाकाण्ड : दो० सं०३०, चौ०सं० ७,८।
२- उपरिवत : दो० सं० ३१।

गुणाकृत सन्निपात और अवगुणाकृत सन्निपात केवल इतना ही भेद है कि गुणाकृत सन्निपात का रोगी औषधि प्राप्त हो जाने के पश्चात् ठीक हो जाता है और अवगुणा कृत सन्निपात का रोगी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। एक लक्षण तो इस रोगी का यह है कि वह अपने माथे को मीजता है एवं दशन द्वारा ओष्ठ को काटता है और सदा अयुक्त बातों को करता है वह सबके खाने को होवात करता है उसका कहना है कि जितने भी भालुकपि हैं। इन सभोको पकड़ कर खा जाओ। दौड़ो-दौड़ो निशिचर तुम लोग कहाँ हो। इन सबों को खाकर मर्कटहोन पृथ्वी कर दो जीते ही दोनों तपस्वियों को पकड़ लो यह उसका सन्निपात का लक्षण है। यह सब अपने सिंहासन पर बैठकर जल्प रहा था। अंगद जी ने देखा इसको क्या हो गया है न तो यहाँ राम है न तो लक्ष्मण हैं, न भालु कपि ही हैं। यह सब क्या बक रहा है। यह सब कहने का कारण क्या हो सकता है। लगा कि यह अपने अवगुणों से सन्निपात का रोगी हो गया है। उन्होंने उसे रे तिय चौर कुमारग गामी। खल मलराशि मन्दमति कामी। कहकर और उसे बताया कि तुम्हें सन्निपात हो गया है और उसी सन्निपात में तू जल्प रहा है। सन्निपात जलपसि दुर्वादा मरसि काल वश खल मनुजादा।[1]

यहाँ निदान करनेवाले अंगद ने रावण का स्वयं निदान कर दिया और औषधि बतादी यह असाध्य रोग है। अब इसमें तेरी मृत्यु हो ही सकती है तू बचेगा नहीं।

> गिरिहहिं रसना संसय नाहीं।
> सिरन्हि समेत समर महि माहीं।।[2]

ममता :-

मानस रोग के अन्तर्गत ममत को गोस्वामी जी ने दाद बताया है। यह ममतादाद सुग्रीव को हो गयी थी क्योंकि बालि के द्वारा अपनी स्त्री धन बल से वह अलग कर दिया गया था। बालि के भय से भीत होकर

1- रामचरितमानस : लंकाकाण्ड : दो० सं०३२ चौ०सं० ६। 2-उपरिवत्: चौ०६

वह ऋष्यमूक पर्वत पर रहताथा । जिसके रक्षार्थ हनुमान वहां रहा करते थे । जो किष्किन्धाराज्य के सचिव थे जैसे दाद रोग बार-बार खाजयुक्त होता है । वैसे सुग्रीव अपने परिवार के विषय में बार-बार सोचताथा । उनके शरीर में व्रणके समान इस ममता ने अपना रूप बना लिया था । दाद रोग मेंखाज के समय अच्छा लगता है पर खुजली समाप्त हो जाने के पश्चात् उसमें जलपन पैदा होती है । वैसे ही सुग्रीव को जलन हो रही थी जिसे गोस्वामी जी ने लिखा है :- चिन्ता जर छाती उनकी छाती में जलन हो रही थी । वे कहते हैं यह व्यक्ति कहीं भी रहता है इसे पात्र अपात्र का ज्ञान अपने रोग के समक्ष नहीं हो पाता । यह ऐसारोग है कि अपना प्रभाव दिखा ही देता है । उसने राम के समक्षभी हरि लीन्हेसि सर्बस अरु नारी। शब्दमें अपनी ममता व्यक्त किया ।

इस रोग की औषधि राम से मैत्री भाव है । कुशल वैद्य इसमें हनुमान ने राम से सुग्रीव की मैत्रीकराया और राम से मैत्री होते ही राम के बल को जानकर राम को कृपा समझ कर वह ज्ञान को प्राप्त किया क्योंकि बालि के बल से ही सुग्रीव भयभीत था । बालि से विशेष बलवान जानकर राम को वह निर्भय हो गया । इसीलिए सुग्रीव के समक्ष पहले राम ने अपने बल का परिचय दिया और परिचय प्राप्त करते ही जो उसमें ममताथी उसके विषय में बोला :-

उपजा ज्ञान बचन तब बोला ।
नाथ कृपा मन भयउ अलोला ।।[१]

— — —

सुख सम्पति परिवार बड़ाई ।
सब परिहरि करिहउ सेवकाई ।।

अंत में सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई सब प्राप्त हो गया तो अपने इस परिहरि शब्दका उसे ज्ञान नष्ट हो गया और जब उसे राम की औषधि

१- रामचरितमानस : किष्किन्धाकाण्ड:दो० नं०६ : चौ०सं०१५।
२- उपरिवत् ।

प्राप्त हुयो उस समय वह बताया कि :-

नाथ विषय सम मदकछु नाहीं ।
मुनि मन मोह करइ छनमाहीं ।। [१]

पुन: उस रोग से मुक्त जो ममताई सुखी हो गया :- तुम प्रिय मोहि भरत सम भाई । ममता को औषधि के लिये, चिकित्सा के अन्तर्गत भय दिखाकर पुन: राम द्वारा निर्भय करना ही है ।

ईर्ष्या :-

मानस रोग में ईर्ष्या का निदान यह है कि अपने ईर्ष्यावश एक दूसरे के सुख को अटूट सम्बन्ध को भंग करना और बनते हुए कार्यको विगाड़ देना मन्थरा जो ईर्ष्या का प्रत्यक्ष रूप है उसे सतोष न हो सका वह ईर्ष्यावश कंडुरोग से ग्रसित इसने रामराज्याभिषेक केबदले राम को बनवास दिलवाया हमेशा यह ईर्ष्यां विपरीत कार्य करती है अच्छे से अच्छे लोगों की बुद्धि को उनके सुकार्यके प्रतिकूल कर देना इसका सहज कार्य है । इसे चैन नहीं प्राप्त होता । यह अपमानित होने पर भी अपनी तरफ नहीं देख सकती । कार्य बिगाड़ने के ही चक्कर मेंरहती है । यह इसका ईर्ष्या कानिदान है जिसे कंडु इरसाई लिखा गया है । इसका मानस रोग के अन्तर्गत निदान यह है कि इस रोग को प्रहार के द्वारा समाप्त किया जाय क्योंकि राम ने ताड़का का संहार किया और भरत ने अपनीमाता का शब्दों के द्वारा तिरस्कार किया और लक्ष्मण ने सुर्पणखाके नाक कान को भंग किया । यब सबके सब पात्र देखकर औषधि को दिये शत्रुघ्न ने भी यह देखा कि इसके लिये एक ही औषधि है वह इसके ईर्ष्या रूपी कूबर पर प्रहार किया - हुमकि लात तकि कूबरि मारा । परिमुंह भरी महि करत पुकारा ।[२]

इस कंडु इरसाई के लिये गोस्वामी जी प्रहार और विशेष अपमानित कर घसीटना बताया है । इसरोग की यही औषधि है यह कायिक कर्मद्वारा प्राप्त होती है जिसे शत्रुघ्न ने मन्थराको भलीभांति औषधि दिया

और मन्थराका यह रोग सदैव के लिये समाप्त हो गया ।

क्षय रोग :-

दूसरे के सुखको देखकर हृदय में जो जलन होती है उसे मानस रोग के अन्तर्गत क्षयी रोग कहा गया है । इस क्षय रोग कारोगी दूसरे को स्वस्थता प्रसन्नता और सुखको देख नहीं सकता क्योंकि वह स्वयं क्षय रोग के कारण निर्बल होता है । उसको मन: स्थिति स्वयंको देखकर स्वयं से दूसरे को तुलना करता है और यदि दूसरा व्यक्ति उससे सुन्दर सुभग, सुलक्षण युक्त, सुन्दर शरीर वाला दिखायी पड़ता है तो अपने अस्वस्थ मानस द्वारा यह क्षयी रोग का रोगी उसका भी शोषण करनाचाहता है । इसके मन में सदैव असन्तोष होता है और इसकी प्यास बहुत लम्बी होती है । यह जिस किसीका भी वर्णनकरना नि:सकोच भाव से लज्जा का त्याग कर चाहता है। इस रोग का रोगी जहांभी जाताहै, एक दूसरे को भी इस रोग के हो जाने का भय हो जाता है क्योंकि यह संक्रामक रोग है । इसलिये इसको मानव के सम्पर्क से अलग रखा जाता है । इसको सान्निध्य देनेवाला व्यक्ति स्वयं मृत्यु का भागी होता है । इस विषय में रामचरितमानस में एक पात्र प्रधान रूप से दृष्टिगोचर होता है वह क्षयी रोग की रोगी मानस रोग के अन्तर्गत दूसरे के सुख को देखकर जलना सुर्पणखा इसमें यह सबबातें जितनी हैं वे सभी दिखायी देती हैं । इसने राम को देखा राम की सुन्दरता राम के साथ रहनेवाली श्रीसीता जी एवं लक्ष्मण ये सभी के सभी लोग सुन्दर थे । राम को इसने वरण करनाचाहा और अपने को अविवाहित सिद्ध किया । राम से इसने यह भी कहा कि मन माना कछु तुम्हही निहारी, राम से उचित उत्तर प्राप्त करने के पश्चात् लक्ष्मण के पास गयी, पर इसने यह प्रकट नहीं किया कि मैं विवाह करनाचाहती हूं । मन माना कछु तुम्हहि निहारी[१]। केवल राम को तरफ उसने देखा इसका देखना भी बहुत अहितकर है । लक्ष्मण के पास जाकर ज्योंही खड़ी हुई कि परमसंयमी साधनायुक्त जीवन में रहने

१- रामचरितमानस : ~~अयोध्या~~अरण्यकाण्ड : दो० सं० १६, चौ०सं०१०।

वाले लक्ष्मण जी तत्काल उसे वहाँ से हटा दिये, क्योंकि इनका सम्पर्क इससे भाषण ठीक नहीं है। यह तो हुआ क्षयी रोग जो हृदय की जलन दूसरे के सुखको देखकर उत्पन्न होती है। मानस रोग, उसका निदान है। इसकी औषधि इसकी कुरुपता है इसमें कुरुपता आ जाने के पश्चात् यह उस रोग से मुक्त हो जाती है क्योंकि पुन: यह किसी से सम्भाषण नहीं कर सकती और यदिकुछ कहती है तो केवल अपने दु:खऔर संकट की बात।

इसको दूसरे को निहारने की क्रिया समाप्त हो जाती है। अपनी ओर देखना और अपने विषय में विचार करना यह एकमात्र इसकी कुरुपताके कारण होता है और यह औषधि परमतपस्वी श्री लक्ष्मण जी के द्वारा श्री राम के संकेत से इसे प्राप्तहोती है। इसकीएक मात्र यही औषधि है कि यह किसी प्रकार से भी अपनी तरफ अवलोकन करे। इसके नाक और कान को लक्ष्मण ने अत्यन्त शीघ्रता से नष्टकर दिया क्योंकि यह दो प्रकार का अपराध कररही थी एक तो यह कि विवाहिता होने के बाद भी अपने को अविवाहित सिद्ध किया और दूसरे राम के पास जाने के पश्चात् वहाँ से निराशा प्राप्त लक्ष्मण के पास गयी। दोनों प्रकार के महान् अपराध का दण्ड इसे दो अंगों से प्राप्त हुआ और ये दोनों स्थान मुख मंडल के सौन्दर्यता को बढ़ाने वाले हैं। क्षयी रोग घ्राणेन्द्रिय के मार्ग से शरीर में प्रवेश करता है। जैसा कि कुशल वैद्यों का कहना है इसलिये इससे बचने हेतु इसे अपने पास से हटा देना चाहिए। यह अपने कान से सुनने के बाद भी वहाँ से नहीं हटी। इसी से नासिक और कान दोनों से हाथ धो बैठी। यही थी इसकी औषधि क्योंकि ऐसाहोने पर यह सतोगुणी समाज में प्रचार प्रसार नहीं कर सकती और न तो यह संक्रामक रोग फैल सकता है और जहाँ भी यह जायेगी अपने सगे सम्बन्धियों के पास और इसके सगे संबंधी मोह अहंकार, काम, द्वेष, दंभ, क्रोध यही सब हैं और इसका प्रवेश होना यहाँ इन लोगों में सर्वथा विनाश है और वह हो गया। इसीलिये गोस्वामी जी कहते हैं पर सुख देखि जरनि सोइ छयी। अत: अपनी ही तरह इसने सबको बना लिया।

कुष्ठ रोग :-

मन की कुटिलाई और दुष्टता यही मानस रोग के अन्तर्गत कहा जाने वाला कुष्ठ रोग है। यह कुष्ठ रोग मनकी अशुद्धता के कारण उत्पन्न होता है अनायास एक दूसरे को देखकर इसके मन में दुष्टता और कुटिलता स्वाभाविक उत्पन्न होती है। स्फटिक शिला पर बैठे स्वयं पुष्प आभूषणों का निर्माण कर सीता जी को उन आभूषणों से सुसज्जित किये। अंग प्रत्यंग कोकांति श्री राम के साथ आसीन सीताराम को भक्तों के हृदय को लुभा रही थी। उसी समय एकमन की कुटिलाई और दुष्टतायुक्त जीव इस कुष्ट रोग का रोगी दुष्टता और कुटिलता के कारण अपनेको रोक न सका और इसने परम कोमल श्री सीताजी के कोमल अंग में कुटिलता भरी चंचु का प्रहारकर दिया :-

एक बार चुनि कुसुम सुहाये ।
निज कर भूषन राम बनाये ।
सीतहिं परिहाये प्रभु सादर।
बैठे फटिक सिला पर सुंदर ।।

सीताचरन चोंच हति भागा ।[1]
मूढ़ मंदमति कारन कागा ।।

बिना किसी प्रयोजन के यह दुष्टकर्मों में प्रवृत्त होता है ऐसी दुष्टता और कुटिलता का रोगी बहुत भयभीत एवं निर्बल मनका होता है इसमें मन: बल भी नहीं होता यह व्यथित थोड़े ही समय में हो जाता है। इसकाअन्तर रूप काक का होता है जिस प्रकार कौआ काष्ठ आदि मनुष्य के हाथ मेंदेखकर महाइ भय से दूर भाग जाता है अपनी दुष्टतावश यह रखे हुये शुद्ध पदार्थ दुग्धादि में अपना मल युक्त चोंच मार देताहै। ठीक यहीबात

१- रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड : दो० सं० १, चौ० सं० २,४।

इस रोग को होती है। इसी मानस रोग के अन्तर्गत मन की कुटिलता और दुष्टता से अभिहित किया गया है। इसका यह निदान है और इसकी उपयुक्त औषधि श्री राम का भयरूप तृण के समान बाणा है। जिस बाणा से ऐसा मानस का रोगी शरणापन्न होने के बाद अपने मन को कुटिलता और दुष्टता रूपी रोग से मुक्त हो जाता है। इसमें राम का भय सन्त का उपदेश और श्री रामको शरणागति परम औषधि है। इन्द्रकुमार जयंत जो कुटिल रोग का रोगी था और इस औषधि से रोग से मुक्त हुवा। गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि मन की कुटिलता दुष्टता रूपी कुष्टरोग से मुक्त करना चाहते हो तो सन्त उपदेश एवं प्रभु को शरणागति की ओर उन्मुख हों।

अहंकार :-

अत्यन्त दु:ख देनेवाला अहंकार की तुलना डमरुआ रोग से की गयी है। इसका निदान और औषधि वस्तु में अभिमान रखनेवाला राज्य आदिका लोभी एवं उसमें अभिमान करनेवाला सदैव अहंकार से जीनेवाला प्राणी जो मिथ्याभिमानी है जिसके कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय में डमरुआ रोग हो गया है अर्थात् पंगु शक्ति हीन है ऐसा प्राणी जिसके अन्दर केवल संकल्प मात्र है मिथ्याहंकार द्रव्य के न पाने के बाद भी उत्पन्न होता है जो अपने हृदय में रिस से भरा हुवा है जिसका बाह्य रंक है और अन्तरंग अहंकार के कारण राजभाव युक्त है। ऐसा प्राणी अहंकार से ग्रसित होता है, कुछ भी कर सकने में जो समर्थ नहीं है, पर अहंकारी है उसे डमरुआ रोग का रोगी समझना चाहिए। यह रोग विशेष विषयी जीवों में पाया जाता है। राजा भानुप्रताप के द्वारा पराजित राज्य विहीन राजा अपने प्राण रक्षार्थ वन प्रान्त में अपने वास्तविक रूप को छिपाकर तापस वेष में रहता था लेकिन राज्याभिमान इसमें बना हुवा था यह अहंकार मोह को भाई है।

इस अत्यन्त दु:खद अहंकार रोग की औषधि इसकी संकल्प की पूर्णता से ही उपलब्ध होती है। इसमें कपट नीति विशेष रूप से प्रभावित होती है। इसका अपना संकल्प जिसको अन्तर में रखकर जिस अभिमान रोग से ग्रसित होता है। उसका यह अत्यन्त दु:खद रोग की पूर्णता ही इसका जीवन है। यह राज्याभिमानी जिस राज्य से पदच्युत हो गया है उसकी प्राप्ति इसकी जीवन औषधि है। यह रोग विशेष लौकिक ऐश्वर्य सम्पन्न, राजा, धनाढ्य सम्पन्न लोगों को होता है जिसे रोग कहते हैं। इससे मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय है मूल अहंकार का पैठ भर जाना। तृप्तता ही इसका संयम है और संयम के द्वारा इस रोग से मुक्ति प्राप्त करना है।

मदमान :-

मानमद को चाहने वाला दम्भी और कपटी होता है। यह जिसे मानस रोग में दम्भ कपट के रूप में कहा गया है सदैव मदमान से युक्त होता है। यहरोग रामचरितमानस के अन्तर्गत कालनेमि को हुआ था। यह कालनेमि मार्ग में मिले हुए हनुमानको अपने दम्भ बल और कपट बल से हनुमान जी को अपना शिष्य बनाना चाहा इस रोग में जीव अपना मान चाहता है। और उसे अपने किये हुए कार्य मैंमद होता है। कालनेमि ने हनुमानको पानी के मांगने के पश्चात पानी के लिये सरोवर दिखा दिया था। पर इसमें गुरु बनने कामद इतना था कि बिना हनुमान के इच्छा प्रकट किये ही गुरु मंत्र देने कीबात कही और कहा कि मैंदीक्षा दूंगा जिससे तुम्हें ज्ञान प्राप्तहोगा। इस रोग का रोगी न देखने के बाद भी देखने का इसे मद होता है जैसा कि इसमें न देखने केबाद भी देखने का मद हुवा। इसने हनुमानसे कहा था कि मैं देख रहा हूं होत महा रन रावन रामहिं और यह नहीं कहा कि मैं मैंने सुना है। कालनेमि ने स्पष्ट उत्तर दिया इहां लगे मैं देखौं भाई। इसका निदान गोस्वामी जी लिखते हैं कि श्री हनुमान जी जिस समय सरोवर में प्रवेश किये अपनी जल पिपासा शान्त करने के लिये उस समय संयोग से तालाबके अन्दर

रहनेवाली शापित मकड़ी जब गन्धर्वा के रूप में प्रकट हुई उसने आकाश में जाकर यह वाणी किया कि जिसके द्वारा प्रेरितहोकर आप यहां आए हो वह मुनि नहीं बल्कि निशिचर है, यह मेरी वाणी सत्य है। मुनिके वेश में कालनेमि निशिचर और उसने मुनिके वेश मेंहनुमान को जल पीने के लिये बताया। ऐसी व्यक्ति का निदान गोस्वामी जी बताते हैं कि हनुमान जी ने उससे कहा कि पहले तुम गुरुदक्षिणा ले लो अर्थात् तुम्हारे लिये जो उपयुक्त औषधि है पहले उसे हम देदें ऐसे रोगी को औषधि जो निशिचर है दम्भी है, कपटी है, मद और मान जिसमें भरा हुआ है वहहनुमान के द्वारा मार दिया जाता है।

हनुमान एक प्रकार की औषधि हैं जो लोगों में रहने वाले मान, मद से उत्पन्न हुआ है जो दम्भ और कपटके द्वारा चाहता है जिसे यह रोग अर्थात् ज्ञान नेत्र शून्य विकारी नेत्र वाला है ऐसे निशिचर को हनुमान जी केवल एक औषधि बताते हैं जो देते हैं वह दण्ड है। श्री हनुमान जी ने वैसा ही किया और उस निशिचर को जिसके प्राण अशुद्ध थे। रामरूपी महामंत्र के द्वारा शुद्ध किया। राम राम करि छाड़ेसि प्राना।[१]

तृष्णा :-

यह तमोगुण रजोगुण सम्पन्न ताड़का जिसका उदर बड़ा ही विशाल एवं व्यापक है जो यज्ञ आदि पुनीत कर्मों को शोषण करनेवाली एवं प्रजा चर्वण करनेवाली है। यह सब रावण का परिवार है जिसका वर्णन किया जा चुका है। अनाथ ऋषि महर्षि मुनि, अपने को आक्रान्त समझते हैं क्योंकि जो विशाल उदर वाली तृष्णा हवह इन लोगोंको बहुत सताती है और वही निशिचरी ताड़का है और जब तक तृष्णाताड़का का वध नहीं हो पाता तब तक ये अनाथ मुनि सनाथ नहीं हो सकेंगे। यहतृष्णा रोग समस्त रोगोंके अन्तर्गत बड़ा भयंकर ह क्योंकि यह सत्कर्मों का ही पान करता है।

१ - रामचरितमानस : लंकाकाण्ड : दो० सं० ५७, चौ० सं०६।

तृष्णा इसी प्रकार की थी । इस रोग का निदान यह है कि ऐसी विस्तृताकार उदरवाली तृष्णा की औषधि जिस प्राणबल से यह तृष्णा शोषण करती है उस प्राण बल को ही खींच लेना क्योंकि शोषण कार्य प्राण से ही होता है । यदि प्राणका बल समाप्त हो जाय तो समस्त मुख के द्वारा ग्रहण करने वाले कार्य समाप्त हो जायेंगे इसलिये राम के द्वारा ऐसी औषधि दी गयी जिससे इसका कार्य बन्द हो जाय । यह क्रोधकर अपने मुंहको फैला कर राम को खाने के लिये अपने मुंहको बढ़ाया । उस समय इसका बल प्राण तृष्णाको बाणरूपी औषधि से श्री राम ने इसके तृष्णा जो अत्यन्त भारी उदर बना देती है उसको समाप्त कर दिया । राम बाण रूपी औषधि इसको समाप्त करने के लिये औषधि चूड़ामणि है ।

ईषना :-

यह आध्यात्मिक आधिदैविक,आधिभौतिक ईषना जो सुत, वित्त, लोक में भी होती है । शरीर को जलाने काकाम यह ईषना ही करती है । इस महारोग से सभी लोग ग्रस्त रहते हैं । यह ऋषि मुनियों को भी ईर्षा के रूप में प्राप्त होती हुई दिखायी गयी है । यह जाति को देखकर ऐश्वर्य को देखकर बुद्धि को देखकर होती है । इसका विशेष विवरण विगत अध्यायों में प्रस्तुत किया जा चुका है । गोस्वामी जीबताते हैं कि श्री राम ने जो उपदेश दिया है, खासकर ऐसे लोगों के लिये है जो त्रिताप से सन्तप्त हैं वह श्रेष्ठ उपदेश हीराम का इनके लिये औषधि है । लक्ष्मण आदि ने इस उपदेश रूपी औषधि का विधिवत सेवन किया है :-

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा ।
राम राज नहिंकाहुहि व्यापा ।।[१]

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० २०, चौ० सं०१ ।

मत्सर :-

मानस रोगों के अन्तर्गत मत्सर और अविवेक भी आता है जिसकी तुलना दो प्रकार से ज्वरों से की गयी है । यह मत्सर ज्वर बिना किसी कारण वश महत्पाद में उत्पन्न होता देखा गया है । शिव निर्मल विशुद्ध शान्त रूप पर प्रजापति ने मत्सर वश उनमें भी अपना अपमान करते हुए देखा गया यद्यपि ऐसीबात नहीं थी यह केवल अपने इस रोग वश इस बातकी समझता था । शिव अपमान क्यों करते जो सदा जीवों कामंगल करनेवाले हैं पर इसने यह मान लिया कि मेरा शिव ने अपना किया । केवल दक्ष प्रजापति ने यह माना मन के अस्वस्थ्य होने के कारण, पर वास्तविकबात यह नहीं थी । स्वयं शिव ने पार्वती जी से इस बात को बताया है । ब्रह्म सभा हमसन दुख माना, यह माना शब्द हीस्पष्ट करता है कि बात थी नहीं पर मान ली गयी । यह मत्सर बहुत क्रूर है । अर्थात् इसमेंलेशमात्र दया नहीं रहती इसीलिये महिष मत्सर क्रूर कहा गया है । अपने से बहुत प्रिय को भी जैसे भैसा क्रूर होता है जिस किसी को भी वहमार सकता है वैसे मत्सर किसीका भी अपमान कर सकता हैं । यह ज्वर तीन और चार दिन के पश्चात् नहीं आता । यह सदैव बना रहता है । इससे शरीर के अन्दर ज्वाला नहीं रहतीयह छिपा रहता है । समय आने पर इसका उद्भव और विकास होता है । योगीश्वर शिव को इन रोगों का पूर्ण ज्ञान है क्योंकि इन समस्त व्याधियोंका परमज्ञानी, शिव ने विनाश कर दिया है । यह स्वाभाविक रूप सेसमाधि में जाने वाले हैं और जो समाधि में जानेवाला व्यक्ति है । वह इन समस्त व्याधियोंका समनकरता है । तत्पश्चात् समाधि की अवस्था उसे प्राप्तहोती है । इसलिये शिव ने संकेत किया कि क्स दक्ष प्रजापति मत्सर रोगका रोगी है । वहतुम्हारा अपमान अवश्यकर देगा । यह निदान शिव का है ठीक वहीबात हुई।दक्ष ने जब अपनी कन्या सती को देखा तो उसे ज्वर बढ़ आया यह मत्सर है । पितामन्दमति निन्दति देही । दक्ष शुक्र यह सम्भव देही ।[१] क्योंकि शिव ने पहले ही समझाया था। वह मत्सर ज्वर कारोगी है । समुझि सो सतिहिं भयउ उर क्रोधा । इस मत्सर

१- रामचरितमानस :बालकाण्ड : दो० सं० ६२, चौ०सं०६ ।

ज्वर का यह निदान है कि यह अपने से अधिक से अधिक निकटतम पात्र का अपमान कर सकता है। दक्ष की सती कन्या थी और शिव दक्ष के धर्मपुत्र थे पर इन लोगों का भी उसने मत्सर ज्वर के कारण अपमान किया। इस मत्सर ज्वर को इस मानस रोग के अन्तर्गत औषधि भगवान् देवाधि देव शिव ने ही समुचित रूप से बतलाया है। वह मत्सर ज्वर से उत्पन्न होनेवाला अपमान जनित कार्य का दण्ड उसका संकल्प विध्वंस है सो अपने रुद्र गणों को भेजकर भगवान् शिव ने करा दिया। समाचार जब शंकर पाए वीरभद्र करि कोप पठाये। यज्ञ विध्वंस जाइ तिन्ह कीन्हा। भई जग विदित दक्ष गति सोई यह इतिहास सकल जग जानो। [१] अस्तु शिव की यह औषधि जो मत्सर रोग का रोगी है उसके संकल्प विध्वंस हैं और मन: संकल्प विध्वंस मत्सर रोग का सर्वथा विनाश नाश है।

अविवेक :-

विवेकी महानुभावों के अन्तर्गत भी अज्ञान का आना स्वाभाविक है। अच्छे से अच्छे मनीषी महापुरुषों में भी इसे देखा गया है। भगवान् के बल, प्रताप, ऐश्वर्य को जाने वाले हैं वह भी ज्वर से पीड़ित हुए। अविवेक ज्वर मानस रोगों के अन्तर्गत आता है जिसके विषय में मैंने पूर्व चर्चा की है। गरुड़ जी भगवत पार्षद होने के पश्चात् भी इस अविवेक ज्वर से वंचित न रह सके। इन्हें अपने अविवेक ज्वर की औषधि के लिये देवर्षि नारद ब्रह्मादि के पास जाना पड़ा और इन लोगों ने एक दूसरे को सौंपना शुरु किया। अस्तु ज्वर की बहुत अच्छी दवा भगवान् शिव के पास है। जैसे मत्सर ज्वर की औषधि प्रजापति को मिली उनकी कृपा से वैसे अविवेक ज्वर भी इन्हीं के द्वारा ठीक हो सकता है। नारद ने गरुड़ को ब्रह्मा के पास प्रेषित कर दिया और ब्रह्मा ने शिव के पास प्रेषित किया। परिणाम यह हुआ कि शिव के पास पहुंचने के पश्चात् इनका ज्वर आधार उतर गया, इस अविवेक ज्वर से पीड़ित होने के कारण यह नारद और ब्रह्मा के साथ उचित व्यवहार नहीं कर सके। उन्हें प्रणाम तक नहीं किया पर ज्वर के स्वामी शिव के

पास स्फुल पहुंचते ही इनका व्यवहार ठीकहो गया । इसको देखकर लगता है कुछ इन्हें आराम हुआ । क्योंकि - तेहि मम पद सादर सिर नावा । पुनि आपन सन्देह सुनावा ।[1] इनका अविवेक ज्वर शिव के दर्शन मात्र से बहुत कुछ ठीक हो गया कहाँ देवर्षिनारद और ब्रह्मा तक को प्रणाम नहीं किया यह इनके अविवेक ज्वरका हीकारण था और कहाँ मम पद सिर नावा । निदान इसका यह था कि अविवेक ज्वर से पीड़ित व्यक्ति अपने व्यक्तित्व और सामान्य विशेष तक कीबातों को भूल जाता है । इसकी औषधि भगवान शिव द्वारा संकेत करने पर इन्हें प्राप्त हुयी । क्योंकि शिव के सामने बड़ुवन पैदा हो गयी मिलेउ गरुड़ मारग मह मोहीं । यह रहस्य मयी बाधा सत्संग रूपी औषधि गरुड़ जी को नहीं देने दिया । उस समय भगवान शिव कुबेर के पास जा रहे थे । जात रहेउ कुबेर गृह । मार्ग में जाते समय किसी दूसरे संकल्प को लेकर सत्संग नहीं हो पाता शिव ने बताया कि तुम्हारे तरहमोह कागभुशुण्ड को भी हो गया था और वह जिस औषधि से अपने अविवेकको समाप्त किया वह उसके पास है । तुम वहाँ जाओ । इस अविवेक ज्वर की को औषधि सत्संग है ।

मानस रोग के अन्तर्गत बहुत से रोग हैं, बहुतसे कुरोग हैं कहाँ तक कहा जाय अनेक प्रकार की व्याधियाँ हैं एकएकव्याधियों से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, यह तो असाध्य व्याधियाँ हैं । संतति जीव को पीड़ा पहुंचाया करते हैं । योग मार्ग में चलनेवाला साधक अवह समाज तक इसलिये नहीपहुंच पाता कि अनेक प्रकार के रोग साधनामय जीवन में बाधक बन जाते हैं इस बात को स्पष्ट करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है जहाँ इतनी अपार व्याधियाँ हैं वहाँ व्यक्ति अध्यात्म पथका परमश्रेष्ठ स्थान समाधि कैसे प्राप्त कर सकता है । मानस रोग उस साधक के समस्त मानस को दूषित कर देते हैं । इसलिये जहाँ मानसरोग का विवरण आया हैवहाँ उनका कथन है :-

एक व्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु व्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि ।।[2]

१- रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० ६०, चौ०सं०१ ।
२- उपरिवत् : उत्तरकाण्ड : दो० सं०१२१, क०००८

अब तक मानस रोगों का जो वर्णन किया गया है वह रामचरित-मानस के अन्तर्गत आनेवाले पात्र जिन जिन रोगों से ग्रसित थे उनको आख्यायिका के माध्यम से पात्र निदान और औषधि का वर्णन किया गया। इसके अनन्तर भी योग के द्वारा भी इन रोगों का पूर्णतया समन हो सकता है क्योंकि मानव को शरीर से मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार से जितना अधिक सम्बन्ध है, उतना ही अध्यात्म योग का भी है। योग का आधिक्य शरीर से संबंध होने के कारण इन रोगों का समन बड़ी आसानी से किया जा सकता है। देही देवालय: प्रोक्त: योग उपासना का स्थान मनुष्य देह है। इसीलिये गोस्वामी जी भी अन्त में समाधि की की चर्चा करते हैं। सो किमि लहइ समाधि ' शब्द से यह स्वत: स्पष्ट होता है कि अब तक योग मार्ग में आने वाले विघ्न मानस रोग का वर्णन करते थे। अतएव भक्ति, कर्म, ज्ञान को बात इन्होंने अपने शब्दों कहा। समाधि के पश्चात् जिस दोहे में ये समाधि का वर्णन करते हैं ठीक उसके नीचे नेम धरम आचार तप ज्ञान यज्ञ जपदान। भेषज पुनि कोटिक नहीं, रोग जाहिंहरिजान।'[१] उनके मानस रोग को पूर्ण समन करने का एक मात्र उद्देश्य भक्तिपक्ष से ही है। इनको मानसरोग को चूड़ामणि औषधि श्रीराम की कृपा है।

भगवान् की भक्ति संजीवन औषधि है, उसका पान श्रद्धापूर्ण नीति से करना चाहिये। यह सब रोग नष्ट होते हैं। यदि विधि भलेहिं सो रोग नसाहों। उनका विश्वास है कि इसके अतिरिक्त कोई दूसरी युक्ति इन रोगों का विनाश करने के लिये असंभव है।

इस प्रकार से रामचरितमानस में वर्णित मानस रोगों की चिकित्सा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी की इस उपचार पद्धति को दैवव्यपाश्रय और सत्वावजय चिकित्सा के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। देवताओं की वन्दना, यम और नियम अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान तथा ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति एवं समाधि आदि उपादान इस चिकित्सा

१ - रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड : दो० सं० १२१।

मुख्य अंग है। राम की भक्ति तुलसीदास जी द्वारा वर्णित मानसोपचार को प्रधानविधा है। उन्होंने भक्तिमार्ग को ज्ञान मार्ग की अपेक्षाकृत सरल, सुगम एवं अधिक उपयोगी बताया है। योग की दृष्टि से इस विधा को भक्तियोग के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। माया द्वारा निर्मित मोह पाश को दूर करने के लिये राम की भक्ति हीमुख्य उपाय है। स्वस्थ मन में रामभक्ति का निवास होता है और जहां भक्ति का निवास है, वहां मोह, लोभ, काम, क्रोध आदि विकार स्वत: नष्ट हो जाते हैं। रामभक्ति की प्राप्ति सत्संग और सद्गुरु की सहायता से होती है। अत: सद्गुरु को मानस रोगों का चिकित्सक माना गया है।

---000---

षष्ठ अध्याय

आयुर्वेद एवं आधुनिक मानस रोग : विज्ञान के साथ रामचरितमानस में वर्णित मानसिक रोगों की तुलना :-

आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का मूल उद्देश्य विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों से पीड़ित आतुरों की चिकित्सा करना है। अत: इनशास्त्रों में विभिन्न रोगों का उनके लक्षणों एवं सम्प्राप्ति विज्ञान सहित बड़े ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। मानसिक रोगों का एक विशिष्ट शाखा के रूप में विस्तृत वर्णन आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में उपलब्ध है। इसकी तुलना में रामचरितमानस के अन्तर्गत वर्णित मानसिक रोगों का उल्लेख संक्षेप में है। इसका कारण यह है कि रामचरितमानस चिकित्सा ग्रंथ न होकर आध्यात्मिक एवं भक्तिमार्ग की ओर उन्मुख करनेवाला एक महान् एवं अलौकिक रचना है। भक्ति एवं अध्यात्म का मानव मन के साथ अत्यधिक घनिष्ठ सम्बंध होने से सूक्ष्म-मानसिक भावों एवं विकारों का उल्लेख इस ग्रंथ में स्थान- स्थान पर किया गया है। इस ग्रंथ में वर्णित मानसिक रोगों के उदाहरण स्वरूप विभिन्न चरित्रों की भी सृष्टि की गयी है। इन चरित्रों का अध्ययन- मनन करने से उक्त मानसिक रोगों को जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं भलीभाँति समझा जा सकता है।

काम :-

आयुर्वेद में वर्णित मानसिक रोगों का वर्गीकरण चार विभिन्न वर्गों में किया गया है। पहले वर्ग में जो मानसिक रोग गिनाए गए हैं वे विशेष रूप से रज एवं तम की विकृति के कारण उत्पन्न माने जाते हैं। उनमें प्रमुख हैं -- काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान, मद, शोक, चिन्ता, उद्वेग, भय एवं हर्ष। ये समस्त भाव अथवा संवेग रूप में सामान्यावस्था में भी मानव में उपस्थित होते हैं। सामान्यावस्था में इनकी उपस्थिति को विकार नहीं माना जाता। इनकी वृद्धि या क्षय को विकारावस्था के लिये उत्तरदायी माना जाता है। उदाहरण के लिये काम का पूर्ण अभाव मानव की सामान्य अवस्था नहीं मानी जाती, भले ही वह एक आदर्श कल्पना समाश्रित हो। काम का आधिक्य अनेक विकृतियों को जन्म देता है। अत: अनेक काम जन्य रोगों की उत्पत्ति इसके द्वारा सम्भव है। इसी प्रकार से विकृत काम सेवन के कारण भी अनेक मानसिक विकारों की उत्पत्ति की सम्भावना रहती है।

फ्रायड ने काम और मानव जीवनको संचालित करनेवाला एक प्रमुख तत्व माना है। इसी कारण उन्होंने अनेक मनोविकृतियों की उत्पत्ति को सम्भव माना है। उन्होंने शिशु के सम्पूर्ण विकास की व्याख्या काम के संवेग के आधारपर की है। शिशु के विकास में इस दृष्टिकोण से उत्पन्न कोई भी असामान्यता उसके भावी जीवन में उत्पन्न होने वाले मानसिक विकारों के लिये उत्तरदायी होती है।

विकृत काम सेवन के कारण उत्पन्न अनेक मानसिक रोगों का वर्णन आयुर्वेद में किया गया है और उसमें सुश्रुत द्वारा वर्णित मानस क्लैब्य रोग प्रमुख हैं। अन्य अनेक प्रकार के क्लैब्य रोग भी मानसिक एवं शारीरिक कारणों से होते हैं। काम जन्य विकारों के कारण ही इन सबकी उत्पत्ति मानी गयी है। काम का क्षेत्र हमारे जीवन में बहुत विस्तृत माना गया है। सम्पूर्ण मानव जीवन में काम का महत्व इस आधार पर भी ज्ञात होता है कि हमारे शास्त्रों ने पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में इसकी गणना की गयी है। मानव जीवन के अनेक कार्य इसके आधार पर संचालित

होते हैं। अतः विकृत काम के सेवन से अनेक मानसिक रोगों की उत्पत्ति का होना पूर्णतया सम्भावित जान पड़ता है।

रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने काम के महत्व को स्थान-स्थान पर प्रदर्शित किया है। अनेक मानसिक रोगों का कारण उन्होंने काम को माना है। इसे मानव मात्र की एक बहुत बड़ी दुर्बलता उन्होंने स्वीकार किया है। इस काम के कारण ही अनेक व्यक्ति अपने जीवन के उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। अनेक व्यक्तियों की उपलब्धियों की हानि पहुंचाने वाला यह एक प्रमुख विकार है।

अनेक ऐश्वर्यों से विभूषित एवं अपनी तपस्या के बल पर सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त करनेवाला महान् पराक्रमी रावण सीता के रूप पर मोहित होकर काम के वशीभूत हो जाता है, एवं सभी नीतियों एवं आचार तथा मर्यादाओं का परित्याग कर देता है। वह अपने स्वजनों एवं शुभाकांक्षियों के परामर्श को पूर्ण रूप से अस्वीकृत कर देता है और सीता को लौटाना स्वीकार नहीं करता।

इतर स्थान पर वर्णित दशरथ की मनोदशा एवं विवशता में काम का महत्वपूर्ण स्थान है। राम के प्रति इतना प्रगाढ़ स्नेह होते हुए भी वह राम का बन गमन नहीं रोक सके। यह जानते हुए भी कि राम के साथ सीता एवं लक्ष्मण के बन गमन के प्रति राज्य की सारी प्रजा क्षोभयुक्त है फिर भी वे कैकेयी की ~~अनुक्त~~ अनुचित मांग को अस्वीकृत करने में समर्थ नहीं हुए। गोस्वामी जी ने यहां प्रदर्शित किया है कि महाराज दशरथ यद्यपि वृद्ध हो चुके थे और चौथी अवस्था में पहुंच चुके थे। फिर भी काम से निवृत्ति नहीं प्राप्त कर सके थे। इसी के महान् दुष्परिणाम स्वरूप कैकेयी की अनुचित मांग के कारण राम को बन जाना पड़ा। परिणामस्वरूप महाराज दशरथ को महान् मानसिक कष्ट सहन करते हुए अपने प्राण गवाने पड़े।

काम से पीड़ित सूर्पणखा का भी वर्णन किया जा चुका है। उचित आयु में विवाह न हो सकने के कारण एवं सद्वृत्त का पालन न करने के परिणाम स्वरूप वह उच्छृंखल एवं कामोन्मादिनी हो गयी थी। परिणाम स्वरूप उसने खरदूषण आदि महान् बलशाली राक्षसों एवं रावण आदि अपने कुल के प्रिय जनों का विनाश कराने में प्रवृत्त हुयी। महान् योद्धा बालि का शौर्य जगत् प्रसिद्ध था और वह रावण को भी पराजित कर चुका था फिर भी उसमें सद्वृत्तों के पालन न करने का अवगुण विद्यमान था।

अपने भाई सुग्रीव को घर से बाहर निकालकर उसकी स्त्री का भी अपहरण उसने कर लिया था। यह घटना उसकी चारित्रिक दुर्बलता को प्रकट करती है। इससे प्रतीत होता है कि विकृत काम सेवन का दोष उसके चरित्र में विद्यमान था। इसी के परिणाम स्वरूप भगवान् राम के हाथों उसे अपना प्राण गंवाना पड़ा।

काम के महत्त्व का वर्णन रामचरितमानस में अनेक स्थानों पर उपलब्ध है। जिसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि काम एक ऐसा बलवान तत्त्व है जिसके वशीभूत समस्त प्राणी होते हैं। भगवान् शंकर के चरित्र की अलौकिकता कर उनके द्वारा काम को भस्म करने के आख्यान का वर्णन किया गया है, किन्तु यह भी निर्दिष्ट है कि भस्म होने के बाद भी काम की समाप्ति नहीं हुयी। भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि बिना किसी अंग के होने पर भी काम की स्थिति बनी रहेगी एवं उसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों में व्याप्त रहेगा।

सृष्टि के जितने भी प्राणी हैं सभी किसी न किसी कामना के वशीभूत होकर अपने कार्य सम्पन्न करते हैं। अतः कामना का पूर्णनाश सम्भव नहीं है। सृष्टि के कार्य संचालन के लिये आवश्यक मात्रा में काम भावना आवश्यक है। इसकी अत्यधिक वृद्धि अथवा विकृत काम का सेवन ही मानव जीवन के लिये हानिप्रद है। काम के विकार किसी प्रकार की औषधि सेवन से दूर नहीं

किये जा सकते । इनके लिये सद्वृत्तों का सेवन एवं मानसिक उपचार ही उचित चिकित्सा व्यवस्था है । संत प्रवर गोस्वामी जी ने इसके उपचार के लिये बड़ी मूल्यवान चिकित्सा का उल्लेख किया है । उनके अनुसार अनेक ज्ञानी भक्त भी कभी - कभी काम विकार से ग्रस्त हो सकते हैं । अत: ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण एवं राम की भक्ति ही केवल ऐसा अवलंबन है जो इस महान व्याधि से रक्षा कर सकती है । राम की भक्ति द्वारा ईश्वर की कृपा प्राप्त हो सकती है एवं इस कृपा से ही प्राणी इस दारुण व्याधि से छुटकारा पा सकता है ।

आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के चिकित्सक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि कामादि भावों की उग्र उपस्थिति अथवा उसका पूर्ण क्षय एक असामान्य अवस्था है । इस अवस्था की चिकित्सा केवल औषधियों द्वारा सम्भव नहीं है । इसके लिये वे सत्वावजय अथवा साइकोथिरैपी चिकित्सा प्रणाली का प्रयोग करते हैं । गोस्वामी जी ने कामादिजन्य रोगों के उपशमन के लिये रामभक्ति रूपी अपूर्व चिकित्सा का सुझाव दिया है । सत्य बुद्धि एवं सत्य ज्ञान इस व्याधि को दूर करने में सहायक हैं । आधुनिक चिकित्सा प्रणाली द्वारा सुझायी गयी साइकोथिरैपी की विधियां अत्यन्त जटिल हैं और हमारे देश के निवासियों के लिये वे उपयुक्त भी नहीं हैं । हमारे देश और हमारे देश के निवासियों के कामादि जन्य विकारों की चिकित्सा मानस में वर्णित ज्ञान, भक्ति एवं सद्वृत्तों के पालन द्वारा किया जाना उपयुक्त है । यह विधि अत्यन्त सरल है एवं गांव के अपढ़ जन भी इसे सरलतापूर्वक अपना सकते हैं । मानस में वर्णित विधि हमारे देश की संस्कृति, सभ्यता, आचार एवं रहन सहन के अनुकूल होने के कारण अधिक उपयोगी ठहरती है ।

क्रोध :-

क्रोध की उग्र अवस्था को भी एक अस्वाभाविक आवेग एवं मनोविकार माना गया है । आयुर्वेद के अनुसार क्रोध की उत्पत्ति के मूल में पित्त की वृद्धि एवं रजोगुण का आधिक्य माना गया है। क्रोध से आविष्ट व्यक्ति सामान्य तर्क

एवं ज्ञान तथा बुद्धि के अनुसार क्रियाओं को अभिव्यक्ति करने में असमर्थ होता है। क्रोध के आवेश में उसके कार्य बौद्धिक नियंत्रण से दूर हो जाते हैं। परिणामस्वरूप उचित एवं अनुचित तथा सद एवं असद के विवेक की शक्ति समाप्त हो जाती है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति द्वारा किये गये कार्य सामान्य न रहकर असामान्य हो जाते हैं एवं अनेक मानसिक विकारों के कारण बनते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान एवं मनोचिकित्सा विज्ञान अत्यधिक क्रोध को एक विकृत संवेग मानता है। आयुर्वेद ने क्रोध को एक मानसिक रोग स्वीकार किया है।

इस अवस्था की चिकित्सा के लिये साइकोथिरैपी की विधियां प्राय: अपनायी जाती हैं। क्रोध स्वयं एक मानसिक विकार होने के साथ ही अनेक मानसिक रोगों के लक्षण के रूप में भी मिलता है। मानव किसी प्रक्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में इस संवेग की अभिव्यक्ति करता है। गीता के अनुसार किसी वस्तु की कामना प्राप्ति में विफल होने पर यह संवेग उत्पन्न होता है। कामना प्राप्ति में बाधक व्यक्ति के प्रति क्रोध का भाव विशेष रूप से व्यक्त होता है। क्रोध की प्रकृति पैत्तिक होने के कारण इसे क्रोधाग्नि भी कहा गया है। उचित अनुचित का निर्णय इस क्रोधाग्नि में भस्म हो जाने के कारण व्यक्ति की क्रियायें विचार एवं तर्क से शून्य होने लगती हैं।

रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने क्रोध के स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिये परशुराम के व्यक्तित्व का चित्रण प्रस्तुत किया है। शिव के धनुष भंग के समाचार से वे अत्यन्त क्रोधितहो उठते हैं और राम की शक्ति और उनके द्वारा किये गये चमत्कारों का विवेचन करने में उनकी बुद्धि असमर्थ रहती है। इस असमर्थता का कारण उनका अत्यधिक क्रोधाभिभूत हो जाना है। परशुराम को ईश्वर के अवतारों के अन्तर्गत माना गया है। क्रोध का संवेग कितना अधिक बलवान होता है और वह बुद्धि और विवेक को कितना कुंठित कर देता है इसका उदाहरण देने के लिये गोस्वामी जी ने परशुराम के व्यक्तित्व को उपस्थापित किया है। वे स्वयं ईश्वरके अवतार होकर भी इस मानसिक विकार द्वारा नहीं बच सके। इससे यह सिद्ध होता है कि क्रोध का

संवेग कामादि संवेगों को ही भाँति बड़ा बलवान एवं प्रभावशाली होता है । यह व्यक्तित्व को कुंठित कर अनुचित कार्यों में व्यक्ति को प्रवृत्त करा सकता है ।

क्रोध का शमन एवं उसकी चिकित्सा औषधियों द्वारा संभव नहीं है । इसके लिये सतत् अभ्यास एवं सद्वृत्ति का पालन आवश्यक है । यह सद्वृत्ति पालन एवं क्रोध को दूर करने का अभ्यास रामचरितमानस में वर्णित भगवत भक्ति द्वारा सहज ही प्राप्य है । रामचरितमानस का मूल उद्देश्य ही मानव को मानसिक विकारों से रहित बनाना है । अत: आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एवं आयुर्वेद द्वारा क्रोध रूपी मनोविकार को नष्ट करना कदापि संभव नहीं है । इसके लिये रामचरितमानस द्वारा सुझाए गये सद्वृत्तों का पालन एवं अभ्यास ही एक मात्र ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा प्राणी इस व्याधि से निवृत्ति पा सकता है ।

लोभ :-

लोभ को प्रमुख मानसिक विकारों में माना गया है । काम एवं क्रोध के साथ ~~अधिक~~ प्राय: लोभ की उपस्थिति भी रहती है । इस मनोविकार के कारण व्यक्ति में उचित अनुचित का विवेक नहीं रह जाता और वह ऐसे कार्यों में प्रवृत्त होता है जो नीति, धर्म एवं मानवता के प्रतिकूल होती है । लोभ के अधिक बढ़ जाने पर व्यक्ति वास्तविक परिस्थितियों के मूल्यांकन में असमर्थ हो जाता है । लोभ के वशीभूत होकर वह काल्पनिक जगत में विचरण करने लगता है । काल्पनिक एवं इच्छित वस्तु की प्राप्ति न होने पर कभी- कभी क्रोधित होता है एवं कदाचित आत्मग्लानि की भी अवस्था में पहुंचता है । लोभ के कारण अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोग हो सकते हैं । अत्यधिक लोभ के कारण अनेक व्यक्ति पथ्य आदि का पालन नहीं करते । अत: विभिन्न रोगों द्वारा ग्रसित होते हैं । लोभ के कारण ही अनुचित साधनों का प्रयोग कर अनेक व्यक्ति धन संग्रह करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप ऐसी परिस्थितियों का

सामना करना पड़ता है जो अनेक मानसिक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनती है।

रामचरितमानस में अनेक स्थानों पर इस मनोविकार के महत्व को प्रदर्शित किया गया है। स्वर्णमृग को सृष्टि असम्भव होते हुए भी सीता ने मारीच को उस रूप में देखकर स्वर्ण मृगछाला के लोभ में राम को उसे मार कर ले आने के लिये प्रेरित किया। फलस्वरूप रावण द्वारा उनका हरण हुआ एवं इतना बड़ा युद्ध हुआ। लोभ के कारण बुद्धि की स्वाभाविक प्रक्रिया नहीं हो पाती अतः मानसिक विकार उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

लोभ की चिकित्सा औषधियों द्वारा संभव नहीं है। यह एक मानसिक संवेग है। अतः इसके लिये भी सद्वृत्तियों का सतत अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। यह अभ्यास रामचरितमानस द्वारा उपदिष्ट विधियों के द्वारा ही संभव जान पड़ता है। राम की भक्ति द्वारा लोभ रूपी इस मनोविकार को कम किया जा सकता है और अपरिग्रह की वृत्ति का अभ्यास निरन्तर सम्भाविकबनाया जा सकता है। लोभ से निवृत्ति पाने पर अपरिग्रह की वृत्ति स्वयं अपने आप उत्पन्न हो जाती है। ईश्वरमें भक्ति रखनेवाला व्यक्ति सहज रूप से लोभ से छुटकारा पा जाता है। ईश्वर विश्वास के कारण अपरिग्रह की भावना उसमें उत्पन्न हो जाती है। धन एवं अन्य वस्तुओंका संचय व्यक्ति अत्यधिक लोभ के कारण करते हैं। ईश्वर की भक्ति दृढ़ हो जाने पर एवं ईश्वर के प्रति विश्वास दृढ़ हो जाने पर लोभ एवं भौतिक धन के संचय की वृत्ति का क्षय हो जाता है। अतः लोभ से छुटकारा पाने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग रामचरितमानस द्वारा निर्दिष्ट श्री राम की भक्ति ही है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एवं आयुर्वेद की चिकित्सा विधियों द्वारा लोभ रूपी मनोविकार से त्राण पाना सम्भव नहीं है।

मोह :-

मोह एक ऐसा मानसिक रोग है जिसके कारण अनेक मनोविकार

होते हैं। मोहाविष्ट व्यक्ति की बुद्धि पर मलीनता का एक आवरण पड़ जाता है। अत: व्यक्ति की बुद्धि स्वाभाविक कार्य करने में असमर्थ होती है। चिन्तन, विचार एवं तर्क शक्ति समाप्त हो जाती है। मोहाविष्ट व्यक्ति वास्तविक क्रियाकलापों से कट जाता है एवं स्वयं के काल्पनिक संसार में विचरण करने लगता है। उचित अनुचित का विवेक और निर्णय क्षमता का ह्रास हो जाता है। मोह की अवस्था तमोगुण की वृद्धि के कारण होती है। तमोगुण की वृद्धि से बुद्धि की निर्मलता में ह्रास हो जाता है। सत्वगुण का भी क्षय हो जाता है। अत: व्यक्ति अनेक प्रकार के विभ्रमों से पीड़ितहो जाता है।

गोस्वामी जी ने मोहको समस्त मानसिक विकारों का मूलकारण बताया है। उन्होंने काम, क्रोध, लोभ इत्यादि मनोविकारों की उत्पत्ति का कारण मोह को ही माना है। उनके अनुसार मोह द्वारा बुद्धि के विकृत हो जाने के कारण उपर्युक्त विकार उत्पन्न होते हैं।

मोह से पीड़ित चरित्रों के रूप में उन्होंने सती, महर्षि, नारद, एवं रावण को प्रस्तुत किया है। मोह के कारण सती की बुद्धि में सन्देह की उत्पत्ति हुयी। परिणाम स्वरूप राम की परीक्षा लेने को वह उद्यत हुईं और भगवान् शंकर द्वारा उनका त्याग हुआ। अन्त में उनको अपने शरीर को त्यागना पड़ा। नारद को भी मोह के कारण ही माया द्वारा निर्मित राजकुमारी से ब्याह करने की कामना उत्पन्न हुयी और इस प्रक्रिया में असफल होने पर क्रोध, काम, एवं लोभ से पीड़ित हुए। इतने बड़े तपस्वी होते हुए भी मोह रूपी मनोविकार से वे अपनी रक्षा नहीं कर पाये, इसी मोहावस्था में उन्होंने भगवान् को शाप तक दिया। मोह से आविष्ट रावण अपने को सर्वाधिक महान् एवं समस्त संसार को तुच्छ समझता था। महान् पंडित होते हुए भी उचितअनुचितका विचार त्याग कर उसने सीता का हरण किया। अपने दल के महान् योद्धाओं के मारे जाने पर भी मोहाविष्ट बुद्धि के

कारण उसने श्री राम से समझौता नहीं किया । अन्ततक झूठे आत्मगौरव का अनुभवकरते हुए उसे प्राण त्यागना पड़ा । इस मोह जनित अवस्था से ग्रसित उपर्युक्त तीनों व्यक्तित्व जो उपस्थित किये गये हैं, उनमें महर्षि नारदतो चिकित्साद्वारा स्वस्थहो गये किन्तु सती एवं रावण को विवशत: अपना देह त्यागना पड़ा । संभवत: इनके रोग को अवस्था अत्यन्त गम्भीर थी । महर्षिनारदके पूर्व संस्कार अच्छे थे । अत: भगवान शंकर के केवल सावार नाम जपने से हो उन्हेंमोह से छुटकारा मिल गया ।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एवं आयुर्वेद की औषधियों द्वारा मोह रोग को चिकित्सा सम्भव नहीं है । इसके लिये रामचरितमानस में निर्दिष्ट उपाय हो उपयोगी हो सकते हैं । ईश्वर की भक्ति एवं उनकी कृपा से ही व्यक्ति मोह रूपी भयंकर व्याधि से ग्रसित होने से बच सकता है । कदाचित् उसको बुद्धि मोहाविष्टहो जाय तो उसे भी दूर करने में उपर्युक्त उपाय सफल हो सकते हैं । सन्तप्रवर गोस्वामी जी ने ईश्वर की भक्ति रूपी ऐसी सरलतम चिकित्सा पद्धति का उल्लेख रामचरित मानस में प्रस्तुत किया है जिसके द्वारा सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी लाभ उठा सकते हैं । आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की किसी भी भौतिक औषधि द्वारा इस संवेग को दूर करना संभव नहीं जान पड़ता । अतएव इस संबंध में रामचरितमानस की उपादेयता अद्भुत एवं अपूर्व है ।

ईर्ष्या :-

ईर्ष्या एक मानसिक संवेग है जो स्वाभाविक रूप से प्राय: अल्प मात्रा में सभी व्यक्तियों में होता है । अपनी अपेक्षा अन्य व्यक्तियोंकी प्राप्य ऐश्वर्य एवं अन्य सुख सुविधाओं को देखकर यह संवेग उत्पन्न होता है । सामान्य ईर्ष्या के अतिरिक्त कभी कभी असामान्य ईर्ष्या भी मिलती है ।

यह व्यक्ति मेंकभी- कभीअज्ञात कारण वश उपस्थित होती है । ईर्ष्यालु व्यक्ति अकारण हो अन्य व्यक्तियों के प्रति ईर्ष्या का भाव रखता है ।

वह ऐसे प्रयासों में लगा रहता है कि जिन व्यक्तियों के प्रति उसकी ईर्ष्या होती है उनको हानि किसी प्रकार से हो । इसके लिये वह स्वयं को क्षति पहुंचाकर भी दूसरों को हानि देखना चाहता है ।

सन्त प्रवर गोस्वामी जी ने ईर्ष्यालु व्यक्तित्व के रूप में मन्थरा के चरित्र की सृष्टि की है । उसे एक ईर्ष्यालु नारी के रूप में उन्होंने चित्रित किया है । उसका दर्शन बड़ा ही विचित्र है । राम को वनवास के षड्यंत्र में यद्यपि देवता भी सम्मिलित थे किन्तु इस प्रयास में उनका अपना कुछ स्वार्थ अवश्य था । वह चाहते थे कि वन भेजाकर श्री राम राक्षसों का संहार करें, पर मन्थरा के प्रयास में उसका स्वयं अपना कोई स्वार्थ नहीं था । कैकेयी को इस पथ पर प्रवृत्त करने में केवल उसका ईर्ष्यालु व्यक्तित्व ही था । वह स्वयं ही कहती है कि उसे चेरी छोड़कर रानी नहीं बनना है । चाहे राम राजा हों अथवा भरत । उसे कोई लाभ अथवा हानि नहीं होने वाली है । केवल ईर्ष्या वश उसने राम के राज्याभिषेक में बाधा उपस्थित करने का प्रयास किया ।

राम के राज्याभिषेक में व्यवधान किस प्रकार उपस्थित हो । उसके सामने केवल रात भर का ही समय था इसी अल्पावधि में किसी प्रकार से उसे इस मंगल कार्य में बाधा उपस्थित करनी थी । अपनी प्रबल ईर्ष्यालु व्यक्तित्व के कारण वह इस प्रयास में सफल भी हुयी । अपमान सहकर भी कैकेयी को उसने अपने वाक्जाल में फंसा लिया और अन्त में इसके लिये तैयार कर लिया कि वह महाराज दशरथ से भरत के लिये राज्याभिषेक और राम के लिये चौदह वनवास मांगे । रामको राज्याभिषेक हो अथवा उन्हें चौदह वर्षों का वनवास मिले । इससे मन्थरा को कोई विशेष हानि अथवा लाभ की प्राप्ति नहीं होनेवाली थी । फिर भी उसने अपमान सहकर भी कैकेयी को मानसिक रूपसे तैयारकरनेका पूर्ण प्रयास किया । यह ईर्ष्या का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है । ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये एवं दूसरे को क्षति पहुंचाने के लिये प्रबल प्रयास करते हैं । इस प्रयत्न में वह स्वयं मानापमान

भी सहलैता है किन्तु दसरे कोहानिही इस उद्देश्य को प्राप्ति द्वारा उसे सुख एवं सन्तोष का अनुभव होता है। यह एक प्रकार को मानसिक विकृति है। इर्ष्यालु व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की उन्नति एवं ऐश्वर्य तथा विभूति को नहीं देख सकता। अन्य व्यक्ति को उन्नति उसे सह्य नहीं होती।

इस मनोविकार को चिकित्सा औषधियों द्वारा संभव नहीं है। अत: आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एवं आयुर्वेद इस मनोविकार का उपचार करने में असंभव है। इस अवस्था को चिकित्सा केवल रामचरितमानस में वर्णित सद्वृत्तों के पालन द्वारा ही सम्भव जान पड़ता है। उनके द्वारा इर्ष्या का निरोध एवं शामक उपचार सम्भव है। केवल ईश्वर की भक्ति एवं ईश्वर की कृपा के द्वारा ही प्राणी इस मनोविकार से बच सकता है। इससे ग्रस्त हुआ व्यक्ति छुटकारा पा सकता है।

मान :-

मान का तात्पर्य यहाँ अहंकार से है। सामान्य सीमा में मान का होना आत्मसम्मान कहलाता है, किन्तु यदि यही असामान्य अवस्था में पहुंच जाय तो इसे अहंकार कहेंगे। इस मनोविकार की वृद्धि के कारण व्यक्ति अपने को सर्वगुण सम्पन्न एवं अत्यधिक उच्च व्यक्तित्व युक्त मानता है। अपने समक्ष अन्य लोगों को वह तुच्छ एवं अयोग्य समझता है। इस कारण से उसके व्यक्तित्व में एक मानसिक ग्रंथि बन जाती है। यह मानसिक ग्रंथि ही अनेक मानसिक रोगों की उत्पत्ति का कारण है। इस विकार से पीड़ित व्यक्ति झूठे गौरव की भावना में डूबा रहता है। वह चाहता है कि सभी व्यक्ति उसकी प्रशंसा करते रहें। व्यक्ति ऐसा करते हैं उनके ऊपर वह प्रसन्न रहता है किन्तु अन्य व्यक्ति जो स्पष्टवादिता के कारण सत्य को प्रकट कर देते हैं एवं उसकी झूठी प्रशंसा नहीं करते उनके प्रति वह रुष्ट हो जाता है। वह उनका अनिष्ट करने के लिये भी तत्पर हो जाता है।

मान को अभिमान अथवा अहंकार भी कहा जाता है। इस असत्य अभिमान के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुछ असामान्यताएं आ जाती हैं।

इस असामान्यता के कारण हो मानसिक विकारों को उत्पत्ति हुवा करती है। इसमें व्यक्ति अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा मानता है। इसी मान्यता के अनुरूप उसका आचार एवं व्यवहार भी परिवर्तितहो जाता है। परिणामस्वरूप उसके कार्यकलाप वास्तविकता की भूमि पर न होकर अवास्तविक हो जाते हैं।

अभिमान एवं अहंकार के चरित्र को सृष्टि गोस्वामी जी ने रावण के व्यक्तित्व में किया है। उसके स्वभाव को उन्होंने अत्यधिक अहंकारी एवं अभिमानी के रूप में चित्रित किया है। रावण चाहता है कि सभी व्यक्ति उसके गुणों की प्रसंशा करें। इसके अभाव में अपने गुणों की प्रसंशा वह स्वयं करता है। जो व्यक्ति उसकी प्रशंसा के विमुख रहते हैं उनके प्रति वह अत्यधिक क्रोध का प्रदर्शन करता है। अंगद एवं रावणका संवाद इसका प्रत्यक्ष उदाहरण माना जा सकता है।

अंगद जब उसकी आलोचना करते हैं तो उनके ऊपर वह क्रुद्ध हो उठता है। अपने गुणों को प्रसंशा वह स्वयं अपने मुख से करने लगता है। रावणका आचरण अभिमान एवं अहंकार से इतना प्रभावित है कि ईश्वर की पूजा में भी वह अपना अभिमान प्रदर्शित करता है। शिव को प्रसन्न करने के लिये अपने मस्तक को काट कर चढ़ाना एवं उन्हें लंका में ले आने के लिये पूरे कैलाशको हो उठाना इस मानसिक सबैग के उदाहरण हैं।

अहंकार भी त्रिगुणात्मक होते हैं। सात्विक अहंकार श्रेष्ठ होता है। इसे आत्म गौरव भी कहा जाता है। आत्म गौरव का होना श्रेष्ठ गुण है। शेष दो राजसिक एवं तामसिक अहंकार निकृष्टकोटिके माने जाते हैं। इन्हीं में अभिमान एवं झूठे मान का अस्तित्व होता है। राजस एवं तामस गुणों की वृद्धि के कारण अभिमान की वृद्धि होती है। अतः इस मनोविकार की चिकित्सा सामान्य एवं भौतिक औषधियों द्वारा सम्भव नहीं है। इस अभिमानका शमन एवं राजस तथातामस अहंकार का विनाश

केवल भगवान् की भक्ति एवं उनकी कृपा द्वारा ही सम्भव है । भगवान् की यह भक्ति और कृपा रामचरितमानस में निर्दिष्ट मार्ग द्वारा ही सम्भव है । रामचरितमानस का अध्ययन- मनन एवं चिन्तन इस मनोविकार से छुटकारा दिलाने में महत्वपूर्ण उपाय सिद्ध हो सकता है । इसप्रकार गोस्वामी जी का यही उद्देश्य है कि सामान्य से सामान्य प्राणी भी ईश्वर की कृपा प्राप्त कर सके और मानसिक विकार से मुक्त हो सके । ईश्वर की भक्ति प्राप्तहो जाने पर अभिमान स्वयं ही नष्टहो जाता है । अतः इस विधि द्वारा यह मनोविकार सरलतापूर्वक दूर किया जा सकता है ।

मद :-

यह भी एक प्रकार का मानसिक रोग है । सत्वरज एवं तम की मात्रा एवं स्थिति में अन्तर के आधार पर इसके लक्षण उत्पन्नहोते हैं । वात, पित्त, एवं कफ विकृत होकर जब इससे मिल जाते हैं तब यह विशिष्ट मानसिक रोग का स्वरूप ग्रहण कर लेता है । चरक संहिता में इसी आधार पर चार प्रकार के मानसिक रोगों का वर्णन किया गया है । यह चार हैं, वातिक, पैत्तिक, कफज, एवं सन्निपातिक मद । दोषों के अनुसार इनके लक्षणों में भिन्नता होती है । सुश्रुत संहिता में मद रोग को मादक वस्तुओं को ग्रहण करने के पश्चात् उत्पन्न हुआ प्रभाव बताया गया है । और,कुछ अन्य मदों का भी वर्णन किया गया है । सुश्रुत में उन्माद रोग को प्रारम्भिक अवस्था को मद रोग कहा गया है ।

मद के कारण बुद्धि स्वाभाविक कार्य करने में असमर्थ हो जाती है । चिन्तन, तर्क, शक्ति, उचित अनुचित का विवेक आदि जो सामान्य बुद्धि के कार्य हैं वे मद रोग की अवस्था में स्वाभाविक रूप से सम्पन्न नहीं हो पाते । मद रोग की अवस्था में रोगी अव्यवस्थित चित्तवाला एवं एकाग्रता से शून्य हो जाता है । प्रायः निद्रानाश एवं चिन्ता, उद्वेग, व्याकुलता आदि मानसिक विकारों के लक्षण भी इस अवस्था में उपस्थित होते हैं । कफज

मदका रोगी अत्यधिक शान्त क्रियाहीन, कम बोलनेवाला एवं शान्त पड़ा रहनेवाला होता है। पैत्तिक मद एवं वातिक मद के रोगी अधिक क्रियाशील होते हैं। एकाग्रताका उनमें पूर्ण अभाव होता है। सान्निपातिक मद के रोगी में समी दोषों के लक्षण सम्मिलित रूप में मिलते हैं। इन रोगियों में अकारण चिन्ता, व्यग्रता एवं भय आदि मनोविकार भी उत्पन्न हो जाते हैं। मद से पीड़ित रोगी में निर्णय शक्ति प्राय: समाप्त हो जाती है। अत: उचित अनुचित का निर्णय करने में रोगी प्राय: असमर्थ होता है। मद् रोग की चिकित्सा न होने पर कभी कभी यह उन्माद के रूप में भी परिणित हो सकता है।

गोस्वामी जी ने रावण एवं उनके पक्ष के बलवान राक्षस योद्धाओं के व्यक्तित्व को मद से पीड़ित माना है। स्वयं रावण मद रोग से युक्त व्यक्तित्व वाला था। उसे अपनी शक्ति और ऐश्वर्य का विशेष मद था। उसके सभी योद्धा मदिरा पान करते थे। अत: मद से पीड़ित होना स्वाभाविक था। धन एवं ऐश्वर्य तथा शारीरिक बल की श्रेष्ठता के कारण रावण के व्यक्ति में मद समाहित हो गया था। इसीसे उसके उचित अनुचित विवेक नष्ट हो गये थे। श्री राम ऐसे व्यक्तित्व की उपेक्षा कर अपनी शक्ति के मद में चूर होकर उसने उनके शत्रुता एवं युद्ध ठानने का निश्चय किया। कुंभकर्ण आदि योद्धा भी मद से ग्रस्त रहते थे। अत: कोई भी कार्य वे चिन्तन के आधार पर नहीं करते थे। परिणामस्वरूप सभी युद्ध में मारे गये।

अधिक दिनों तक मद्यपान करने से मदात्यय की अवस्था उत्पन्न होती है। यह एक प्रकार की मद्यजनित उपद्रव की अवस्था है जिसकी चिकित्सा पर्याप्त कठिन है।

मद रूपी मानसिक संवेग की चिकित्सा औषधियों द्वारा सम्भव नहीं है। आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इस क्षेत्र में अभी पर्याप्त सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं। रामचरितमानस में सुझाए गये मार्ग को अपनाने से ही मानव इस मनोविकार से त्राण पा सकता है।

शोक :-

शोक एक ऐसा मनोविकार है जो सामान्य व्यक्तियों में प्राय: मिला करता है किसी वस्तु के बिछुड़ने से सम्पत्ति अथवा वैभव के नाश अथवा प्रिय व्यक्ति पर आपत्ति आदि आने से यह आवेग उत्पन्न होता है। शोक के कारण व्यक्ति की मनोदशा असामान्य हो जाती है। विवेक शक्ति भी पंगु हो जाती है तथा व्यक्ति बुद्धि संबंधी सामान्य कार्य यथा उचित अनुचित का निर्णय आदि करने में असमर्थ हो जाता है। शोक की यह अवस्था प्राय: किसी मानसिक आघात के कारण उत्पन्न होती है। शोक के परिणाम स्वरूप विषाद उत्पन्न होता है। अत: विषाद को शोक का ही एक स्वरूप मानना चाहिये। विषाद के कारण मानसिक असंतुलन एवं असामान्यताएं उत्पन्न हो जाती हैं। उदासी, उत्साहहीनता, खिन्नता आदि अनेक लक्षण इस विकार से पीड़ित व्यक्ति में उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी में निराशा उत्पन्न हो जाती है एवं उसका दृष्टिकोण भी जीवन के प्रति निराशामूलक हो जाता है। उत्साह हानि के कारण जीवन संबंधी प्रत्येक प्रक्रिया इनकी मन्द हो जाती है। ये किसी भी कार्य को स्वाभाविक रूप से प्रारम्भ और पूर्ण नहीं कर पाते और बराबर अन्तर्द्वन्द्व में पड़े रहते हैं।

शोक एवं विषादका चित्र कई स्थानों पर रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने उपस्थित किया है। राम को बनवास देने के पश्चात महाराज दशरथ शोक से अत्यधिक ग्रस्त हुए। उनकी शोकावस्था का चित्रण गोस्वामी जी ने बड़े सजीव रूप में किया है। राम के बन गमन के परिणाम स्वरूप एवं महाराज दशरथ की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण अयोध्या के निवासी शोक सन्तप्त हो गये थे। भरत इस समाचार को सुनकर अपने ननिहाल से जब अयोध्या लौटे तो उनके शोकाकुल अवस्था का भी चित्रण गोस्वामी जी ने किया है। रावण द्वारा सीता के हरे जाने पर श्री राम ने शोकातुर होकर जो विलाप किया वह भी विषाद की ही एक अवस्था है। मेघनाद द्वारा शक्ति प्रयोग करने पर लक्ष्मण के अचेत हो जाने के कारण श्री रामको

अत्यधिक शोक हुआ । उस अवस्था में उनके द्वारा किया गया विलाप उनके अत्यधिक शोकातुर मानसिक अवस्था को प्रस्तुत करता है ।

उक्त स्थलों पर गोस्वामी जी द्वारा शोक एवं विषाद का चित्रण बड़ी सजीवतापूर्वक किया गया है । उक्त प्रसंगों को मनन करने पर पाठक भी शोक एवं विषादके भावों से अभिभूत हो जाते हैं । व्यक्ति के जीवन में जब इस प्रकार की घटनायें उपस्थित होती हैं तब शोक एवं विषाद से ग्रस्त होना स्वाभाविक होता है । इस अवस्था में बुद्धि एवं विवेक विकारग्रस्त हो जाते हैं और व्यक्ति स्वाभाविक रूप से सामान्य कार्यों को सम्पन्न करने में असमर्थ होता है । कभी- कभी यह शोक एवं विषाद अस्वाभाविक एवं अकारण भी होता है ।

शोक एवं विषाद की चिकित्सा किसी औषधि द्वारा संभव नहीं है । आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एवं आयुर्वेद के पास ऐसी कोई विधि नहीं है जो इस मानसिक विकार सम्बन्धी प्रक्रिया को उत्पन्नहोने से रोक सके । विषाद एवं शोक कोदूर करने में रामचरितमानस द्वारा निर्दिष्ट मार्ग ही कुछ सहायक हो सकता है । इसके लिये ईश्वर की भक्ति एवं उनकी कृपा का होना परम आवश्यक है ।

चिन्ता :-

चिन्ता एक प्रमुख मानसिक रोग है । इस रोग से पीड़ित व्यक्ति प्राय: अकारण चिन्ता किया करते हैं । जो समस्याएं तत्काल उपस्थित नहीं रहती उनके सम्बन्ध में भी काल्पनिक प्रतिकूलता सम्बन्धी चिन्ता करना इस रोग का मुख्य लक्षण है । किसी एक समस्या के सुलझ जाने पर दूसरी काल्पनिक कठिनाइयों की रचना कर लेना एवं उनके प्रति चिंतित रहना इस रोग का मुख्य लक्षण है । मानसिक रोगी प्राय: इस अस्वाभाविक चिंता में डूबे रहने के कारण अपने जीवन में प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर पाते । चिन्तामग्न रहने के कारण जीवन के सामान्य क्रिया कलापों को पूर्ण करने में

भी असमर्थ हो जाते हैं। यह अकारण और अस्वाभाविक चिन्ता उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर छा जाती है और चिन्ताग्रस्त रहना रोगी का स्वभाव बन जाता है।

चिन्ता के ऊपर गोस्वामी जी ने पर्याप्त विचार किया है। उनकी दृष्टि में यह एक मानसिक रोग है जिसके द्वारा अधिकांश व्यक्ति पीड़ित हुआ करते हैं। चिन्ता की निवृत्ति भी केवल राम की भक्ति एवं उनकी कृपा द्वारा सम्भव है। अतः रामचरितमानस द्वारा प्रदर्शित मार्ग ही इसकी चिकित्सा का श्रेष्ठ एवं सफल उपाय है।

उद्वेग :-

उद्वेग मानसिक आकुलता की स्थिति होती है। इससे पीड़ित व्यक्ति किसी भी समस्या पर शान्तिपूर्वक अपने विचारों को केन्द्रित नहीं कर पाता। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार यह विकृति उस अवस्था में उत्पन्न होती है जब किसी वांछित फल प्राप्ति के लिये किये गये व्यक्ति के संवेगों का उदय ऐसी परिस्थिति में होता है जब कठिनाइयों पर विजय पाना कठिन प्रतीत होने लगता है। आकुलता सम्बन्धी विकार आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार प्रौढ़ावस्था में किसी भी मूल प्रवृत्ति की विफलता के फल - स्वरूप उत्पन्न हो सकती है।

फ्रायड द्वारा प्रतिपादित काम सम्बन्धी कारणों का भी इसके विकास में योग होता है। भय, शंका, और शोक इत्यादि इस विकार को उत्पन्न करनेवाले अन्य कारण हैं। इस अवस्था में रोगी में निर्णय शक्ति का अभाव असहनशीलता, आत्महत्या की भावना, चिड़चिड़ापन आदि लक्षण पाये जाते हैं। आकुलता द्वारा पीड़ित अधिकांश रोगियों में रुचि का अभाव पाया जाता है। यह किसी विषय पर ध्यान केन्द्रित करने में अपने को असमर्थ पाता है। इन व्यक्तियों में एक प्रकार के तनाव की भावना और आशंका लक्षित होती है। ये न तो अपने विचारों का उपयोग कर सकते

हैं और न अपना ध्यान ही केन्द्रित कर पाते हैं। किसी आसन्न संकट और संभाव्य असफलताके अपमान के भय से ये सदा आशंकित रहते हैं। आकुलता के रोगी को द्वन्द्वात्मक परिस्थिति अपनी विफलता और कठिनाइयाँ आदि का केवल धुंधला सा ही ज्ञानहोता है और उसके लक्षण अधिक अवधि तक वर्तमान रहते हैं। चित्तोद्वेग के इन रोगियों को प्राय: अनिद्रा आदि लक्षण भी हो जाते हैं। रोग की अवस्था तीव्र हो जाने पर ये किसी एक स्थान पर अधिक समय तक बैठने में भी असमर्थ हो जाते हैं, कून और रैमण्ड (१५) ने आकुलता रोगियोंके, उनके लक्षणों के आधार पर, तीन उप-प्रकार निश्चित किये हैं जो क्रमश: इस प्रकार द्रष्टव्य हैं :-

(१) ऐसे अत्याकांक्षी, अध्यवसायी, क्रियाशील, उद्योगी व्यक्ति जो सुनिश्चित अभीष्टों की प्राप्ति के लिये अत्यधिक उत्तेजना पूर्वक प्रयत्नशील होते हैं और असफलता की थोड़ी-सी सम्भावना का भी अनुभव करते ही अपने प्रयत्न और तीव्र कर देते हैं। इस कारण इनके दैनिक जीवनका साधारण कार्यक्रम असंतुलितहो जाता है। खेल-कूद अथवा मनोरंजन में इनकी रुचि नहीं रह जाती। इस प्रकार निरन्तर श्रम के प्रभाव से इनमें अत्यधिक आकुलता और कष्टकर शारीरिक तथा मानसिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

(२) अनेक अनिवार्यत: अपरिपक्व, अत्यधिक परावलम्बी, असुरक्षित और अव्यावहारिक व्यक्ति जीवन की कठिनाइयों का सामना करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इस प्रकार के अधिकांश व्यक्ति अपने बचपन में बहुधा बीमार रहे होते हैं और थोड़ी-सी बीमारी को महत्व देनेवाले माता-पिता द्वारा अत्यधिक सुरक्षा के वातावरण में पले होते हैं। इस कारण ऐसे व्यक्ति आरम्भिक युवावस्था की परावलम्बी और आत्मकेन्द्री मनोवृत्ति का परित्याग कर प्रौढ़ जीवनका उत्तरदायित्व वहनकरने में सर्वथा असमर्थ हो जाते हैं। वे अपने जीवन को बहुमूल्य और शरीर को अत्यन्तकोमल समझने लगते हैं। इस कारण आगे चलकर दूसरों का ध्यान आकर्षित करने और अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा

के हेतु किये गये इनके व्यवहार रुग्ण और स्नायु विकृतहो जाते हैं ।

(३) संवेगात्मक दृष्टि से अपरिपक्व विवाहित स्त्रियाँ, जो बचपन में लाड़ प्यार के कारण भ्रष्टहो चुकी होती है विवाहोपरान्त असंवेदनशील तथा अत्यधिक परिश्रमी पति प्राप्त हो जाने के कारण अपने को उपेक्षित हीन और अमहत्वपूर्ण अनुभव करने लगती हैं । दु:खी कौटुम्बिक परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया-स्वरूप ऐसी स्त्रियों के स्वभाव में चिड़चिड़ापन, थकान और हतोत्साह की भावनाएं विकसित हो जाती है जिसका फल यहहोता है कि उनके पतियों की असहनशीलता और छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति में भी और अधिक वृद्धि हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में इस प्रकार की स्त्रियों में आगे चलकर आकुलता स्नायुविकृति विकसितहो सकती है ।

उद्वेग अथवा आकुलता की अवस्था के लिये आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने यद्यपि मानसोपचार की कई विधियां विकसित की हैं । किन्तु इनके द्वारा सभी रोगियों में सफलता प्राप्ति में पर्याप्तकठिनाई होती है । आयुर्वेद में इसके लिये सत्त्वावजय एवं दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का निर्देश किया गया है । जिसमें मन के ऊपर विजय प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य होता है । मन के ऊपर नियंत्रण एवं विजय वस्तुत: रामचरितमानस द्वारा निरूपित राम की भक्ति द्वारा ही सम्भव है । अत: इस मानसिक रोग की चिकित्सा इसी के अनुसार सफलतापूर्वक की जा सकती है ।

भय :--- सामान्य रूप से भय का संवेग सभी प्राणियों में मिलता है । किन्तु यदि यही भय असामान्य हो जाय तो वह मानसिक रोग की अवस्था प्राप्त कर लेता है । असामान्य भय अनेक प्रकार के हो सकते हैं । उदाहरण-स्वरूप ऊंचे स्थानका भय, खुले स्थान का भय, बन्दस्थानका भय, अन्धकार का भय, भीड़ का भय और जानवरों अथवा किसी विशेष जानवर का भय । आदि उक्त मानसिक रोगी यद्यपि असामान्य भय से पीड़ित होते हैं किन्तु उस समय भय की उत्पत्ति के आधार से प्राय: अनभिज्ञ होते हैं ।

भय के प्रति उनकी प्रतिक्रिया अपेक्षाकृत प्रबल तथा उसके द्वारा उन्हें असुविधा भी होती है। यह मानसिक रोगी यदि उक्त भय के मूल कारण को समझता अथवा उससे अवगत होता तो उसके भय की तीव्रता या तो अपेक्षाकृत कम होती अथवा भय ही पूर्णतया समाप्त हो जाता। असामान्य भय का संबंध अनेक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार साधारणतया किसी बाल्यकालीन अत्यन्त तीव्र भय उत्पन्न करनेवाली घटनाजन्य मानसिक आघात से होता है।

यह किसी अप्रिय अनुभव, किसी निषिद्ध अथवा लज्जास्पद व्यवहार से सम्बद्ध होता है। अतः रोगी उसके सम्बन्ध में विचार करने से बचना चाहता है और दूसरों से उसके सम्बन्ध में खुलकर चर्चा नहीं कर पाता। असामान्य भय की अवस्था वर्तमान रहने का कारण यह है कि मौलिक भयोत्पादक परिस्थिति से सम्बन्धित अपराध भावना रोगी को उक्त घटना का स्मरण करने से रोकती रहती है। जब सहज साहचर्य, स्वप्न विश्लेषण अथवा अन्य मनोवैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा दमित आघात जन्य अनुभव का रोगी को पुनः स्मरण कराया जाता है तो असामान्य भय की तीव्रता में पर्याप्त कमी आ जाती है।

भय की अवस्था में बुद्धि का कार्य सहज रूप से नहीं हो पाता। इससे मानसिक असामान्यता उत्पन्न हो जाती है। इस भय के कारण धी, धृति और स्मृति सम्बन्धी कार्य स्वाभाविक रूप से सम्पन्न नहीं हो पाते और रोगी व्यर्थ के भय से आक्रान्त रहता है।

इस अस्वाभाविक भय को दूर करने के लिये औषधियाँ उपयोगी नहीं होती। अतः इस अवस्था में सत्वावजय एवं दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का विशेष महत्व है। रामचरितमानस में निर्दिष्ट उपायों का अवलम्बन करने से अर्थात् राम की भक्ति एवं उनके प्रति पूर्ण आस्था विश्वास और समर्पण द्वारा भय का पूर्णतया विनाश सम्भव है। यह भय का विनाश श्री राम की कृपा द्वारा ही सम्भव है। अन्य भौतिक उपायों की अपेक्षा चिकित्सा की

यह विधि अधिक उपयोगी, सरल एवं व्यावहारिक है । सामान्य जन भी इस चिकित्सा विधि द्वारा लाभ उठा सकते हैं ।

हर्ष :-

हर्ष एक प्रकार का संवेग है जो विषाद के विपरीत होता है । सामान्य हर्ष तो प्रत्येक व्यक्ति को हुआ करता है किन्तु यह अत्यधिक हर्ष की अवस्था असामान्य प्रकार की हुआ करती है । यह असामान्य हर्ष प्राय: मानसिक विकार के रोगियों में दिखायी पड़ता है । उन्मादके रोगियों में यह हर्षातिरेक प्राय: मिलता है । इसके कारण रोगी में अस्वाभाविक रूप से अत्यधिक उत्साह दिखाई पड़ता है । आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में उत्साह- विषाद नामक मनोविकृत का उल्लेख किया है । इस अवस्था में कभी रोगी में उत्साह अथवा हर्षातिरेक की अवस्था होती है और कभी वह विषादकी अवस्था में रहता है । इसीलिये चिकित्सा वैज्ञानिकों ने उत्साह और विषाद की इन अवस्थाओंको एक ही रोग के दो अंश माने हैं ।

हर्षातिरेक एवं उत्साह की अवस्था में रोगी अत्यधिक सक्रिय हो जाता है और दिनरात कार्य करता रहता है । इस अवस्था में कार्य से रोकना प्राय: कठिन होता है। निद्रा उसे बहुतकम आती है । दिन रात किसी न किसी कार्य में लगा रहता है । सक्रियता के साथ ही रोगी प्रसन्न चित्त और सजीव प्रतीतहोता है । उत्साहातिरेक के कारण यह रोगी अपने विचारों को किसी एक विषय पर केन्द्रित करने में असमर्थ होते हैं । इस प्रकट प्रफुल्लता एवं प्रसन्नचित्तता के साथ रोगी के स्वभाव में चिड़चिड़ापन्न, ढिठाई और आक्रामक प्रवृत्ति भी होती है । किसी काम को करने से उसे रोकने पर वह क्रुद्ध भी हो जाता है । वैज्ञानिकों ने उत्साह अवस्था के रोगी की तुलना मदोन्मत्त व्यक्ति के साथ किया है जो एक क्षण अत्यन्त

प्रफुल्लित होकर हंसी मजाक करते हैं और दूसरे ही क्षण क्रुद्ध होकर उग्र हो जाते हैं। अतिरंजित प्रफुल्लता आशावादिता और आत्मविश्वास के कारण रोगी प्राय: गलत निर्णय कर लेता है। रोगी यह समझता है कि वह अत्यधिक प्रफुल्लित है किन्तु इस अवस्था में भी वह अपने को मनोविकृत मानने के लिये कदापि तैयार नहीं होता। आवेग की तीव्रता के अनुसार उत्साह के प्राय: चार प्रकार निश्चित किये गये हैं।

(१) मन्द उत्साह।
(२) तीव्र उत्साह।
(३) उन्मत्त उत्साह। एवं
(४) स्थायी उत्साह।

इन चारों में केवल तीन मुख्य लक्षण यथा प्रफुल्लित परन्तु स्थिर मनोदशा २- विचारों की उड़ान और ३- मनोगत्यात्मक सक्रियता ही न्युनाधिक मात्रा में प्रकट होते हैं। इन अवस्थाओं में व्यक्ति की मानसिक प्रक्रिया स्वाभाविक नहीं रहती। अत: रोगी अनेक प्रकार के असामान्य कार्यों में संलग्न एवं असामान्य भावों को प्रकट करता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इस अवस्था की चिकित्सा के लिये कई प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया जाता है। मानसोपचार की विधियां भी अपनायी जाती हैं। फिर भी सन्तोषजनक चिकित्सा अभीतक ज्ञात नहीं हो पायी है।

रामचरितमानस में निर्दिष्ट विधियोंके पालन से मानव इस मनोविकार द्वाराबच सकता है। अस्वाभाविक रूप से हर्ष एवं अतिउत्साह तथा उत्फुल्लता न उत्पन्न हो एवं मानसिक प्रक्रिया स्वाभाविक बनी रहे इसके लिये राम की भक्ति एवं उनकी कृपा सबसे बड़ी औषधि एवं चिकित्सा की विधि है।

आधुनिक मानसिक चिकित्सा विज्ञान एवं आयुर्वेद में अन्य अनेक मानसिक रोगों का भी वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ उन्माद, अपस्मार, अपतंत्रक, अतत्वाभिनिवेश, मूर्च्छा आदि मुख्य मानसिक रोग हैं।

इन समस्त रोगों के विशिष्ट लक्षण हुआ करते हैं। आयुर्वेद में शुद्ध मानसिक रोग जिनमें कि रज एवं तम का विकार मुख्य कारण होता है उन्हीं को मूल मानसिक रोग माना गया है। अन्य मानसिक रोगों की उत्पत्ति के ये ही कारण हैं। आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिये विभिन्न प्रकार के औषधि द्रव्यों का प्रयोग मुख्य रूप से होता है।

रामचरितमानस में मानसिक विकारों के उपचार में इन औषधि द्रव्यों का कोई महत्व नहीं है। यहां पर मनोविकारों को दूर करने के लिये आचार चिकित्सा का ही उपयोग करने का निर्देश किया गया है। यह आचार भगवद्भक्ति में सन्निहित है। इसके लिये आस्तिक होना एवं ईश्वर में विश्वास करना आवश्यक है। भगवान् के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण से हीनता एवं मानसिक दुर्बलता आदि विकार नष्ट हो जाते हैं। मानसिक तनाव दूर होकर मन को शान्ति प्राप्त होती है।

रामचरितमानस के अध्ययन द्वारा ईश्वर के प्रति विश्वास के अतिरिक्त विवेक एवं ज्ञान तथा सात्विक भावों की भी प्राप्ति होती है। अतः मनोविकार स्वयमेव दूर हो जाते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा निर्दिष्ट मनोविकार चिकित्सा अत्यधिक कठिन जान पड़ती है और जन सामान्य की पहुंच के बाहर है। अपने देश की सभ्यता एवं संस्कृति के अनुकूल भी नहीं है। इसके विपरीत रामचरितमानस सर्वसुलभ एक उत्कृष्ट एवं अनूठा ग्रंथ है। इससे बड़े-बड़े विद्वान एवं निरक्षर सामान्य जन दोनों ही समान रूप से लाभान्वित होते हैं। यह उत्पन्न हुए मानसिक रोगों को दूर करने के साथ ही मन को स्वस्थ बनाये रखने एवं रोग की उत्पत्ति को रोकने में भी सक्षम है। अतः मानसिक विकारों के निरोध एवं चिकित्सा में भी इस अनूठे ग्रंथ का प्रयोग किया जा सकता है।

---000---

सप्तम अध्याय

उ प सं हा र :--

रामचरितमानस रामकथा का विश्वविख्यात सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इस कृति के व्यापक फलक पर आयुर्वेद, धर्म, दर्शन, नीति, आदि विविध विषयों का विवेचन किया गया है। मानसकार की सूक्ष्मग्राही दृष्टि मानस मन के विविध प्रकार के भावों को यथार्थवादी रूप में व्यक्त करने में पूर्ण सफल हुयी है। रामचरितमानस में आयुर्वेद, दर्शन और मनोविज्ञान का जो सम्मिलन केन्द्र है, वह अन्त:करण को सूक्ष्मवृत्तियों एवं मन के विविध प्रकार के भावों से सम्बद्ध है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि मनोविज्ञान की सूक्ष्म विवेचना रामचरितमानस में यथास्थान की गयी है। मन अत्यन्त सूक्ष्म है, चंचल है, अतएव उसकी पकड़ सामान्य जन के बाहर है। गोस्वामी जी एक सिद्धहस्त मनोविज्ञानवेत्ता हैं। अत: वह चंचल मन को रामचरितमानस रूपी औषधि के द्वारा शान्त करते हैं।

मन के सूक्ष्म होने से उससे उत्पन्न होनेवाले विकार भी अत्यंत सूक्ष्म एवं कठिन होते हैं। साहित्य के रस प्रसंग के अन्तर्गत परिगणित संचारी भाव भी मनोविकार ही हैं। यही मनोविकार आयुर्वेद की शब्दावली में मानस रोग नाम से अभिहित किये गये हैं।

मानसिक रोगों में मुख्यत: काम, क्रोध, लोभ, मद आदि मनोविकार मानव मन को चंचल आवेगों की ओर ले जाते हैं। काम और लोभ ये दोनों मानव मन में नानाप्रकार की संकीर्ण भावनाओं को उत्पन्न करके मनको स्वार्थ लोलुप एवं विषयी बनाते हैं। काम का अर्थ इतना व्यापक है कि यदि उसे इच्छा अर्थ में लिया जाय तो भी वह मनोविकार के ही अन्तर्गत आता है। लोभ मनोविकारों में अतिशय प्रबल है। लोभ की माया से ग्रस्त होकर जीव ब्रह्म को भूलकर इतस्तत: भटकता रहता है। भटकने की यहीप्रक्रिया उसे आध्यात्म से न जोड़कर विषयों की ओर उन्मुख करती है और यही विषय उसे भौतिकवादी परिवेश की ओर ले जाते हैं। भौतिक आसक्ति भी एक प्रकार का मानसिक रोग मानाजाता है जिसे नैतिक पतन की संज्ञा दी जा सकती है।

चरक संहिता के अनुसार काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान, मद, शोक, चिन्ता, भय, उद्वेग और हर्ष आदि प्रमुख मानस रोग हैं। मनोविकारों में क्रोध अधिक प्रबल एवं उग्र है। क्रोधाभिभूत व्यक्ति की मुखाकृति आवेशमय हो जाती है। आंखें लाल हो जाती हैं और भौंहें टेढ़ी हो जाती हैं। माथे पर बल पड़ जाते हैं। उग्र क्रोध स्वयं एक मनोविकार और अन्य मनोविकारों का लक्षण भी है। पित्त उन्माद में यह एक प्रमुख लक्षण के रूप में भी पाया जाता है।

मानसिक रोगों को अधोलिखित चार प्रमुख वर्गों में विभक्त किया गया है :- १- रज एवं तम की विकृति के कारण उत्पन्न मानसिक रोग।

२- वात, पित्त, कफ एवं रज तथा तम के कारण उत्पन्न मानसिक रोग।

३- आधिव्याधियां अथवा मनोदैहिक रोग।

४- प्रकृति विकार जन्य मानसिक रोग।

रज एवं तम को विकृति के कारण उत्पन्न मानसिक रोग :-

रज एवं तम को मनोविकार से उत्पन्न मानसविकृतिनाम से अभिहित किया गया है। चरक के अनुसार काम, क्रोध, लोभ, मोह, इर्ष्या, मान, मद, शोक, चिन्ता उद्वेग, भय तथा हर्ष आदि मुख्य मानस रोग हैं। ये रज तथा तम की विकृति के कारण उत्पन्न होते हैं। एक काम क्रोधादि मूलत: संवेग हैं। चरक ने इन्हें मानस रोग और विभिन्न मानस रोगों का लक्षण भी माना है। वस्तुत: ये संवेग सामान्य रूप से सभी जीव धारियों में उपस्थित रहते हैं, किन्तु इनकी अतिशयता एवं क्षय को ही विकार या रोग माना जाता है। इनकी वृद्धि या क्षय का नियंत्रण रज एवं तम की वृद्धि एवं क्षय से होता है, क्योंकि ये सभी संवेग सत्व रज एवं तम से सम्बन्धित होते हैं। काम, चिन्ता आदि संवेगों की उपस्थिति सामान्य व्यावहारिक जीवन के संचालन के लिये आवश्यक है, किन्तु परिस्थितियों के प्रतिकूल और अधिक क्षय या वृद्धि विकार की अवस्था है। ये संवेग मुख्यत: मन की वृत्तियों पर आधारित होते हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध शारीरिक प्रक्रियाओं से भी बना रहता है।

ये सम्वेग हर्षात्मक तथा वेदनात्मक दो प्रकार के होते हैं। प्रेम, आह्लाद इत्यादि हर्षात्मक संवेग हैं और क्रोध शोक आदि वेदनात्मक। सुखद संवेगों में स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुकूल शारीरिक परिवर्तन होते हैं और दुखद संवेग स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद होते हैं। संवेगों की उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है। इसके लिये संवेगात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण आवश्यक है। संवेगों की उत्पत्ति में वस्तु अथवा व्यक्ति का नहीं परिस्थितिका महत्व होता है।

संवेगों को जीवनका रस माना गया है अत: सामान्य मात्रा एवं अनुकूल परिस्थितियों में इनका होना समाम व्यावहारिक जीवन के लिये आवश्यक

है । प्रतिकूल परिस्थिति एवं असामान्य मात्रा भी इनको उत्पत्ति विकार है । क्षय एवं वृद्धि असामान्य अवस्थायें हैं । तीसरा विकार मिथ्या स्वरूप का है जैसे विकृत रूप से काम सेवन एवं जिससे भय न करना चाहिये उससे भयभीत होना । अतः संवेगों को आयुर्वेद में रोग, रोग के लक्षण और रोगोत्पादक हेतु भी माना गया है । उदाहरण के लिये चिन्ता नामक संवेग पर विचार करें । यह स्वयं एक मानसिक रोग माना जाता है । चिन्ता सभी प्रमुख मानसिक रोगों में एक लक्षण के रूप में उपस्थित होती है । यह अन्य मानसिक रोगों की उत्पत्ति का कारण भी होती है । रामचरितमानस में भी आयुर्वेद की भांति इन सम्वेगों को मानस रोग कहा गया है । इनको स्वयं रोग भी माना गया है तथा विभिन्न मानस रोगों का कारण भी ।

कुछ ऐसे रोग भी होते हैं जिनको उत्पत्ति का मूल कारण मानसिक विकार होते हैं, किन्तु उनके लक्षण शारीरिक हुआ करते हैं । इनमें रज एवं तम भी विकृत होते हैं । वात, पित्त तथा कफ भी विकार ग्रस्त होते हैं । द्वितीय वर्ग के मानसिक रोगों में जहां मानसिक लक्षण मुख्य होते हैं वहीं यहां पर शारीरिक लक्षण प्रधान हुआ करते हैं । आयुर्वेद जगत में इन्हें मनोदैहिक व्याधियों के नाम से जाना जाता है । इनकी चिकित्सा में शारीरिक लक्षणों के साथ मानसिक विकृतियों का भी उपचार अनिवार्य होता है । इस वर्ग की कुछ प्रमुख व्याधियां निम्नलिखित हैं :-

(१) शोक ज्वर ।

(२) काम ज्वर ।

(३) भयज अतिसार ।

(४) तमक श्वास ।

<u>प्रकृति विकार जन्य मानसिक रोग:-</u> आयुर्वेद के अनुसार मानसिक विकृतियां जन्मजात होती हैं । इन व्यक्तियों की प्रकृति में ही कुछ विकार होते हैं जिनके कारण कुछ मानसिक असामान्यताएं अथवा व्याधियां

इनमें मिलती हैं। आयुर्वेद में सत्व मन को कहा जाता है। सत्व उत्तम मानसिक गुण भी है। अत: सत्वगुण की हीनता को ही सत्वहीनता कहते हैं। ये व्यक्ति अल्प मानसिक शक्ति वाले होते हैं और कठिन परिस्थितियों में घबरा जाते हैं। ये संघर्ष नहीं कर पाते और शीघ्र ही भयग्रस्त हो जाते हैं। इन्हें उन्माद आदि अनेक मानसिक रोग होने की संभावना अधिक होती है।

तामस प्रकृति के मन्द बुद्धि वाले व्यक्ति पढ़ लिख नहीं पाते। प्रशिक्षण द्वारा ये कुछ मोटे काम कर पाते हैं। स्वतंत्र रूप से अपना जीवन निर्वाह करने में ये असमर्थ होते हैं।

चिकित्सा को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है, यथा- दैवव्यपाश्रय, युक्ति व्यपाश्रय तथा सत्वावजय। मन्त्र, औषधि, मणि, मंगल, बलि, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपात तथा गमन दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के मुख्य अंग हैं। आहार औषधि आदि द्रव्यों के योजनाबद्ध प्रयोग को युक्ति व्यपाश्रय चिकित्सा कहते हैं। सत्वावजय चिकित्सा का अर्थ है। मन पर विजय प्राप्त करना और उसे अहित अर्थों की ओर जाने से रोकना और नियमित एवं नियन्त्रित करना। इसका मुख्य उद्देश्य है। मानस रोगों की चिकित्सा में दैव व्यपाश्रय एवं सत्वावजय चिकित्सा विधियों का विशेष महत्व है। दैव व्यपाश्रय चिकित्सा में वर्णित नियम पांच हैं, यथा- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान। ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि आदि सत्वावजय चिकित्सा के मुख्य अंग हैं।

रामचरितमानस में उपर्युक्त दैवव्यपाश्रय और सत्वावजय चिकित्सा के मुख्य उपादानों को मानस रोग चिकित्साका मुख्य तत्व स्वीकार किया गया है। यम, नियम, एवं सद्वृत्त पालनको मानसिक सुख शान्तिका मुख्य साधन माना गया है।

राम के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण, उनकी शरण में जाना तथा

उनको भक्ति को मानस रोगों की सर्वश्रेष्ठ एवं एकमेव चिकित्सा स्वीकार किया गया है। रामचरितमानस में विमल ज्ञान और विवेक के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। सत्य ज्ञान द्वारा ही मोह, क्रोध, लोभ आदि विकृत संवेगों से प्राणी त्राण पा सकता है। यह सत्यज्ञान सत्संग और गुरु की कृपा से ही संभव है। अत: मानस में सद्गुरु की तुलना योग्य मानसोपचारशास्त्री के साथ की गयी है और उसे सर्वोच्च स्थान दिया गया है। सद्गुरु के कारण ही प्राणी सत्यज्ञान का साक्षात्कार करने में समर्थ होता है और उसी के निर्देशित मार्ग पर चलकर वह ईश्वर की भक्ति प्राप्त करने में सफल होता है। राम की भक्ति प्राप्त होते ही माया स्वयं भाग जाती है। मोह, लोभ, काम, क्रोध, आदि मानसिक विकार नष्ट हो जाते हैं। मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं, जब हृदय में वैराग्य का बल बढ़ जाय, सुमति रूपी क्षुधा नित्य बढ़ती रहे और विषय रूपी दुर्बलता नष्ट हो जाय तब मन को स्वस्थ मानना चाहिये। निर्मल ज्ञान के प्राप्त हो जाने पर राम की भक्ति को प्राप्त करने में व्यक्ति समर्थ हो जाता है।

अत: गोस्वामी जी की परिभाषा के अनुसार मानसिक रूप से व्यक्ति को तभी स्वस्थ माना जा सकता है जब वह राम की भक्ति प्राप्त करने योग्य हो जाता है। इस अवस्था में उसका अविवेक नष्ट हो जाता है और उसे निर्मल ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। विषयों के प्रति उसकी आसक्ति कम हो जाती है। मोह दूर हो जाता है। माया उसे भ्रम और मोहपाश में नहीं बांध पाती।

ज्ञानयोग की प्रशंसा गोस्वामी जी ने की है किन्तु भक्तियोग को उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध किया है। उनके अनुसार जिन व्यक्तियों के अन्त:करण में राम की भक्ति का निवास हो जाता है उनमें अविद्या, अज्ञान एवं कामादि मानसविकार स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं।

अतएव रामभक्ति को गोस्वामी जी ने संजीवनी औषधि एवं

चिन्तामणि कहा है । इनके समीप मानस रोगों का अस्तित्व असंभव है । इस रामभक्ति की प्राप्त करने का मुख्य साधन सत्संग है । सत्संग द्वारा सत्यज्ञान की प्राप्ति और मानसिक वृत्तियों एवं संस्कारों का उचित निर्माणहोता है ।

इस रामभक्ति की प्राप्ति में सद्गुरु का भी बड़ा महत्व है । वह सही दिशा में बढ़ने का निर्देश व्यक्ति को देता है । उसके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर व्यक्ति राम की भक्ति एवं निर्मल ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होते हैं । इसीलिए सद्गुरु को मानस रोगों का चिकित्सक माना गया है । वह सत्य,ज्ञान प्रदान कर अविवेक, मोह, लोभ, क्रोध, काम आदि मानसिक विकारों को दूर करता है । विवेक एवं सुमति का संचार करता है । परिणाम स्वरूप व्यक्ति का मन स्वस्थ हो जाता है और वह लौकिक एवं पारलौकिक मानसिक और आध्यात्मिक सुख शान्ति प्राप्तकरने में समर्थ होता है ।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में प्रचलित मानसोपचार को साइकोथिरेपी कहते हैं । इस विधि का व्यवहार केवल विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित चिकित्सक ही कर सकते हैं । उनकी संख्या हमारे देश में अत्यल्प है । यह विधि अत्यन्त कठिन है और इसमें समय भी बहुत अधिक लगता है । इसका लाभ केवल शिक्षित और धनी व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते हैं । अत: हमारे देश के सामान्यजनों के लिए यह उपर्युक्त चिकित्सा विधि नहीं है ।

इसके विपरीत रामचरितमानस में वर्णित सत्वावजय एवं दैवव्यपाश्रय चिकित्सा हमारी संस्कृति सभ्यता एवं परम्पराओं के अनुरूप है । रामचरितमानस के प्रति सामान्य भारतीय जन अत्यन्त श्रद्धा का भाव रखते हैं । इसकी उक्तियों को वे धर्मग्रंथ के समान सम्मान प्रदान करते हैं । अत: इसका प्रयोग जन सामान्य के आचार व्यवहार को सुनियोजित एवं उनके संस्कारों के निर्माण में किया जा सकता है ।

वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य के सुधार के लिये एक नयी शाखा विकसित हुयी है। इसे मेंटल हाइजीन कहते हैं। आयुर्वेद में इसे मानसिक स्वस्थवृत्त अथवा सद्वृत्त कहते हैं। चिकित्सा के इस क्षेत्र में रामचरितमानस का उपयोग बड़ा ही मूल्यवान है। इसके नियमित सामूहिक एवं व्यक्तिगत पाठ द्वारा उचित बौद्धिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक संस्कारों का निर्माण होना संभव जान पड़ता है।

सत्यज्ञान के विकास, मानव मूल्यों के प्रति आस्था, नैतिकता का प्रसार, सामाजिक नियमों के प्रति प्रतिबद्धता और ईश्वर के प्रति विश्वास रामचरितमानस के प्रचार से सर्वदा अग्रसर होता रहा है और आगे भी होता रहेगा ऐसा विश्वास है। फलस्वरूप वर्तमान बढ़ते हुए मानसिक रोग नित्य घटते जायेंगे और उनका निवारण होता रहेगा। इस दृष्टि से रामचरितमानस द्वारा मानवता की यह एक बहुमूल्य एवं उत्कृष्ट सेवा हो सकती है।

---000---

परिशिष्ट

सहायक साहित्य

सहायक साहित्य

अभिधर्म कोश : हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, सन् १९५८ ।

अमरकोष : बंबई, सन् १९२६ ।

अष्टांग हृदय : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९७० ।

अष्टांग संग्रह : निर्णय सागर मुद्रणालय, बंबई, १९५१ ।

अथर्ववेद संहिता : द्वितीय भाग, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६२ ।

असामान्य मनोविज्ञान : डा० रामकुमार राय : चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९६४ ।

ईशावास्य उपनिषद् : शंकर भाष्य : गीता प्रेस गोरखपुर, संवत् २०१६ वि० ।

इंट्रोडक्शन टु कायचिकित्सा : सी०द्वारिकानाथ, पापुलर बुक डिपोजिट, बंबई, सन् १९५९ ।

इंट्रोडक्शन टु इंडियन फिलासफी : दत्ता एण्ड चटर्जी, कलकत्ता युनिवर्सिटी, १९६० ।

इंडियन थाट : दामोदरन के०: एशियन पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता, सन् १९६७ ।

ऐतरेय उपनिषद् : गीता प्रेस, गोरखपुर संवत् २०१२ वि० ।

कवितावली : गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०३४ वि० ।

कठोपनिषद् शंकर भाष्य : गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण ।

कारिकावली (सिद्धान्त मुक्तावली) निर्णय सागर प्रेस, बंबई ।

काश्यप संहिता : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी १९७६ ।

किरणावली (उदयनाचार्य) संपा० विन्ध्येश्वरी प्रसाद बनारस ।

केन उपनिषद् : शंकर भाष्य: गीता प्रेस, गोरखपुर ।(संवत् २०१५) ।

गीतावली : मोतीलाल जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर सं०२०२३ ।

गोस्वामी तुलसीदास : बाबू शिवनन्दन सहाय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९६१ ।

गोसाईं चरित : डा० किशोरीलाल गुप्त, वाणी वितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी संवत् २०२१ वि० ।

चरक संहिता : चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९७० ।

चारवाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा : सर्वानन्द पाठक, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५ ।

छान्दोग्यउपनिषद : शंकर भाष्य : गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०१९वि० ।

तर्कभाषा (केशव मिश्र) ओरियंटल बुक एजेंसी, सन १९६४ ।

तर्क संग्रह (अन्नमट्ट) बाम्बे संस्कृत सीरीज, पूना, १९६३ ।

तत्व वैशारदी : मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी १९६६ ।

उदयभानु सिंह : अरविन्दकुमार राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ६, १९७२ ।

तुलसी मुक्तावली : डा० उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, १९७६ ।

सन्दर्भ और दृष्टि डा० केशवप्रसाद सिंह, डा० वासुदेव सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, १९७४ ।

तैत्तिरीय उपनिषद : गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत २०१९ ।

दशोपनिषद शंकर भाष्य मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन १९६४ ।

दोहावली : गीताप्रेस गोरखपुर संवत २०३३ वि० ।

न्याय सूत्र (गौतम) ओरियंटल बुक एजेंसी, सन १९३९ ।

न्याय कंदली : श्रीधर भट्ट प्रशस्त पाद भाष्य : वाराणसी,१९६३ ।

न्याय मंजरी (जयंतभट्ट) विजयानगरम् संस्कृत सीरीज बनारस, १८९५ ।

प्रकरणपंचिका (शालिकनाथ मिश्र) बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, १९६१ ।

प्रशस्त पाद भाष्य : चौखम्भा संस्कृत सीरीज, आफिस, वाराणसी ।

प्राचीन भारतीय मनोविकार विज्ञान : डा० अयोध्याप्रसाद अवल, हिन्दी अकादमी, उत्तर प्रदेश ।

ब्रह्मसूत्र : शंकर भाष्य : मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन १९६४ ।

बृहदारण्यक उपनिषद : शंकर भाष्य : गीताप्रेस, गोरखपुर संवत २०१३ वि० ।

श्रीमद्भगवद्गीता : शंकर भाष्य : मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन १९६४ ।

भाषा परिच्छेद : गनेश महल, वाराणसी, सन् १९५८ ।
भाव प्रकाश : चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६६ ।
भैल संहिता : कलकत्ता युनिवर्सिटी, १९२१ ।
भारतीय मनोविज्ञान : प्रो० नारायण शास्त्री द्राविड़, अखिल भारतीय दर्शन परिषद ।
मनुस्मृति नवनीतम् : डा० रामजी उपाध्याय : संस्कृत परिषद विश्वविद्यालय, सागर, सं० २०२५ वि० ।
माधव निदान : चौखम्भा संस्कृत सीरीज, बनारस, सन् १९५४ ।
मानस रोग विज्ञान : डा० बालकृष्ण अमर जी पाठक, वैद्यनाथ प्रकाशन, वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, कलकत्ता, सन् १९५६ ।
मानसिक एवं तन्त्रिका रोग चिकित्सा : डा० प्रियकुमार चौबे, चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी प्रथम संस्करण १९७६ ।
मानसपीयूष : श्री अंजनी नन्दन शरण : गीताप्रेस, गोरखपुर २०१७ वि० ।
मानस दर्शन : श्रीकृष्णलाल : आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी, १९६२ ।
माण्डूक्य उपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर ।
योगसूत्र : व्यास भाष्य, बनारस, सन् १९११ ।
योग वाशिष्ठ : गीताप्रेस, गोरखपुर ।
रामचरितमानस में शिवतत्व : राम किंकर उपाध्याय, तुलसी साहित्य परिषद, कलकत्ता सन् १९५६ ।
रामचरितमानस : गीता प्रेस, गोरखपुर ।
रामचरितमानस : सं० श्यामसुन्दरदास : काशी संवत् १९८५ वि० ।
रामचंद्रिका : (केशव कौमुदी) लाला भगवानदीन, रामनारायण बेनी माधव, इलाहाबाद, सन् १९७२-७७ ।
ऋग्वेद संहिता : चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, सन् १९६५ ।
बरवै रामायण : गीताप्रेस, गोरखपुर ।
व्याख्याकारों की दृष्टि से पातंजल योगसूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन : डा० कु० विमला कर्णाटक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सन् १९७४ ।

विनय पत्रिका : गीता प्रेस, गोरखपुर ।

विवेक चूड़ामणि : अल्मोड़ा, १९२१ ।

वेदान्त परिभाषा : गीता प्रेस, गोरखपुर ।

वैशेषिक सूत्र (कणाद) मिथिला इंस्टिट्यूट, १९५७ ।

शारंगधर संहिता : चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी ।

शास्त्र दीपिका : चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९१६ ।

शिव संहिता : श्रीकृष्णदास बंबई ।

सर्वदर्शन संग्रह : लक्ष्मी व्यंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सन् १८९२ ।

सर्वसिद्धान्तसंग्रह : कलकत्ता, सन् १९२९ ।

सुश्रुत संहिता : मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी १९६८ ।

संत मत : डा० प्रताप सिंह चौहान, उदय प्रिंटिंग प्रेस, कानपुर, सन् १९७१ ।

समाज दर्शन की भूमिका : डा० जगदीश सहाय श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी सन् १९७० ।

सांख्यकारिका : ईश्वरकृष्ण ।

सूफी काव्य संग्रह : पं० परशुराम चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, शक १८८० वि० ।

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सप्तम संस्करण,

वैदिक कोश : सूर्यकान्त : बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी,१९६३ ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : काशी नागरीप्रचारिणी, सभा, वाराणसी, संवत् १९९९ वि० ।

हिन्दी साहित्य : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अतरचन्द कपूर एण्ड संस, दिल्ली । १९५२ ई० ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० नगेन्द्र : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७३ ।

हिन्दी राष्ट्र कोश : सं० श्रीवास्तव एवं चतुर्वेदी ।

गोस्वामी तुलसीदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी,
संवत् २०३३ वि० ।

तुलसी : डा० उदयभानुसिंह : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९६५ ।

सूर पंचक पद पंचशती : आचार्य सीताराम चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग, १९७८ ।

भारतीय साहित्य की रूप रेखा : डा० भोलाशंकर व्यास, चौखम्भा विद्याभवन,
वाराणसी सन् १९६३ ।

साहित्यशास्त्र के प्रमुख पक्ष : डा० राममूर्ति त्रिपाठी : वाणी वितान ब्रह्मनाल,
वाराणसी सं० २०२३ वि० ।

हिन्दी साहित्य की बीसवीं शताब्दी : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, लोक भारती
प्रकाशन, इलाहाबाद सन् १९६३ ।

हिन्दी साहित्य का अतीत : प्रथम, द्वितीय भाग : सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र,
वाणी वितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी सं० २०३३, २०३६ वि० ।

रामचरितमानस : गोस्वामी तुलसीदास : नागरीप्रचारिणी सभा, काशीराज,
वाराणसी ।

तुलसी ग्रंथावली : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी भाग १-२।

तुलसी आधुनिक वातायन से : डा० रमेश कुन्तल मेघ :

रामायण मीमांसा : स्वामी करपात्री जी महाराज ।

मानस चरितावली : श्री रामकिंकर उपाध्याय, कलकत्ता ।

तुलसी विभिन्न दृष्टियों के परिप्रेक्ष्य में : डा० गोपीनाथ तिवारी, विश्वविद्यालय,
प्रकाशन, सन् १९७२ ।

मानस प्रवचन माला : मानस भूषण : रामायण राज : स्वस्तिक प्रकाशन, २०३५ वि०

तुलसी की जीवन भूमि : डा० चन्द्रबली पाण्डेय : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
संवत् २०११ वि० ।

मानस की रामकथा : आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : किताब महल इलाहाबाद, सन् १९५३।

पत्र एवं पत्रिकाएं

प्रज्ञा : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी सन् १९६३-६४ ।
,, ,, ,, ,, सन् १९७३-७४ ।
तुलसी - स्तवन : प्रयाग नारायण मंदिर (शिवाला) कानपुर।
मानस संगम : त्रयोदश समारोह : सन् १९८१, श्री प्रयागनारायण मंदिर, शिवाला, कानपुर ।
प्रज्ञा : शोध विशेषांक : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।
कल्याण : विशेषांक : गीताप्रेस, गोरखपुर ।
सन्मार्ग : आगम विशेषांक : प्र० संपा० स्वामी श्री नन्दनन्दनानन्द सरस्वती, सन्मार्ग दैनिक गोलघर, वाराणसी ।
सन्मार्ग : करपात्र चिन्तन विशेषांक : डा० हरिहरनाथ त्रिपाठी, राजनीति विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, संवत् २०३६, तुलसीघाट, वाराणसी ।
श्री कनक भवन महिमा, स्वा० श्री जयराम देव जी महाराज, कनक भवन , अयोध्या ।
मानस मयूख : रामनवमी अंक : संपा० रामादास शास्त्री : सलकिया, हवड़ा सन् १९६६ ई०
अखण्ड ज्योति : मथुरा : सितम्बर १९७७ ।
रस वृन्दावन : ओम् प्रकाश शर्मा : कलकत्ता, सितम्बर, १९८२ ।
हिन्दी स्मारिका : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग : सन् १९६७ ।
मानस राजहंस स्मारिका : श्रीनाथ मिश्र, आनन्द कानन प्रेस, ढुंढिराजगली, वाराणसी ।
शिवोऽहम योग प्रशिक्षण शिविर स्मारिका : पंजाबी चीनी मिल रामकोला, देवरिया ।
मानस की भाषा (समन्वय के संदर्भ में) पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाणी वितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी, १९७३ ।
राम : श्री सत्संग परिवार पंचांग : प्रकाशन मंडल, सिद्धाश्रम, गढ़वासी टोला, वाराणसी । १९८१-८२ ।
मानसामृत : त्रैमासिक शोध पत्रिका : तुलसी शोधपरिषद, ब्रह्मनाल, वाराणसी ।
मुमुक्षु : काशी मुमुक्षु भवन सभा, अस्सी, वाराणसी ।